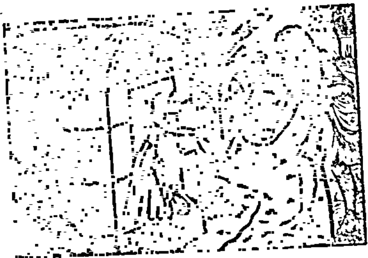
२८६

आरण्यकाण्डम्—३.





॥ दोहा—कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल ॥ शत्रुशाल सुरपालकर, वंदौं दशरथलाल ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ दोहा—कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल ॥ जिन आश्रमोंमें जगह २ कुश चीर
आत्मवान महादुर्धर्ष श्रीरामचन्द्रजीने दंडकनामक महावनमें प्रवेश करके तपस्वी लोगोंके आश्रममंडल देखे ॥ १ ॥ उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सक्ता,
जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका तेज अच्छी तरह विराजमान होरहाहै, जैसे सूर्यनारायण आकाशमें रहतेहैं और वह आश्रम सब जीवोंके आसरा लेनेके थलेहैं, उनके
बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करके तेजवान होनेसे बडी कठिनतासे देखने योग्यहैं ॥ २ ॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर
सदाही झाड बुहारकर स्वच्छ किये जाते और चारों ओर अनेक प्रकारके पशु पक्षियोंसे जो सदा पूर्ण रहते ॥ ३ ॥ होम करनेका ईंधन
नमीर नाच गाकर इनकी पूजा करते; जहां बडे विस्तारकी यज्ञशाला बनीहै, जिनमें अग्निकुंड स्रुव मृगचर्म और कुशादि धरे हैं ॥ ४ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ प्रविश्यतुमहारण्यंदंडकारण्यमात्मवान् ॥ रामोददर्शदुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ १ ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तंब्राह्म्यालक्
समावृतम् ॥ यथाप्रदीप्तंदुर्दर्शंगगनेसूर्यमंडलम् ॥ २ ॥ शरण्यंसर्वभूतानांसुसंमृष्टाजिरंसदा ॥ मृगैर्बहुभिराकीर्णंपक्षिसंघैःसमावृतम् ॥ ३
पूजितंचोपनृत्तंचनित्यमप्सरसांगणैः ॥ विशालैरग्निशरणैःस्रुग्भाण्डैरजिनैःकुशैः ॥४॥ समिद्भिस्तोयकलशैःफलमूलैश्चशोभितम् ॥ आरण्यैः
ह्मवृक्षैःपुण्यैःस्वादुफलैर्वृतम् ॥ ५ ॥ बलिहोमार्चितंपुण्यंब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ पुष्पैश्चान्यैःपरिक्षिप्तंपद्मिन्याचसपद्मया ॥ ६ ॥ फलमूल
नैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ॥ सूर्यवैश्वानराभैश्चपुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ७ ॥ पुण्यैश्चनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ तद्ब्रह्मभवनप्रख्यंब्रह्
पनिनादितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ तद्दृष्ट्वाराघवःश्रीमांस्तापसाश्रममंडलम् ॥ ९ ॥

भरे हुए कलश व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रक्खेहैं, और बडी २ जातके बनैले स्वादयुक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लग रहेहैं ॥ ५ ॥ इन सब
मोंमें नित्यही बलि और होम होताहै, प्रतिदिन पुण्यमय वेदध्वनि उठतीहै अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहे हैं, और विचित्र कमल जिनमें खिले हु
तलैयेंभी विराजमान होरही हैं ॥ ६ ॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चीर मृगचर्म वल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रका-
नियत समयपर बोलने, देखने, सुननेवाले, जितेन्द्रिय, प्राचीन चतुर वृद्ध मुनियोंके समूह वास करतेहैं ॥ ७ ॥ नियताहारी पवित्र परमर्षियोंके समूहसे शोभित
सदा वेद पढनेका शब्द प्रतिध्वनित होनेसे सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभायमानहैं ॥ ८ ॥ महातेजवान् श्रीमान् रामचन्द्रजी महाभाग ब्रह्मको पहँच

ब्राह्मणगणोंसे शोभित उन तपस्वियोंके आश्रममंडलको देखकर ॥ ९ ॥ अपने महा धनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओरको चले, दिव्यज्ञानसंपन्न महर्षियोंने रामचन्द्रजीको देखा व जाना ॥ १० ॥ इसकारण प्रसन्नहो सबही श्रीरामचन्द्र व महायशस्विनी श्रीजानकीजीके सन्मुख वे मुनिलोग चले फिर चन्द्रमाके समान धर्मका आचरण करने वाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥ ११ ॥ व लक्ष्मण जानकीजीको भी निहार सब दृढव्रत मुनियोंने मंगलके आशीर्वाद दिये, और उनका भलीभांति आदर सन्मान किया ॥ १२ ॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग विस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुन्दरता, लावण्यता, सुकुमारता, और सुवेषता देखकर विचार करनेलगे कि, ऐसे सुकुमार वनमें क्यों कर आये ॥ १३ ॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको विना पलक मारे इकटक देखने लगे ॥ १४ ॥ सर्व जीवोंके ऊपर दयाकरनेवाले बडे भाग्यशाली ऋषि लोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय टिकाया

अभ्यगच्छन्महातेजाविज्यंकृत्वामहद्धनुः ॥ दिव्यज्ञानोपपन्नास्तेरामंदृष्ट्वामहर्षयः ॥ १० ॥ अभिजग्मुस्तदाप्रीतावैदेहींचयशस्विनीम् ॥ तेतुसोममिवोद्यंतंदृष्ट्वावैधर्मचारिणम् ॥ ११ ॥ लक्ष्मणंचैवदृष्ट्वातुवैदेहींचयशस्विनीम् ॥ मंगलानिप्रयुंजानाःप्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥ १२ ॥ रूपसंहननंलक्ष्मींसौकुमार्यंसुवेषताम् ॥ ददृशुर्विस्मिताकारारामस्यवनवासिनः ॥ १३ ॥ वैदेहींलक्ष्मणंरामंनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ आश्चर्यभूतान्ददृशुःसर्वेतेवनवासिनः ॥ १४ ॥ अत्रैनंहिमहाभागाःसर्वभूतहितेरताः ॥ अतिथिंपर्णशालायांराघवंसन्न्यवेशयन् ॥ १५ ॥ ततोरामस्यसत्कृत्यविधिनापावकोपमाः ॥ आजह्रुस्तेमहाभागाःसलिलंधर्मचारिणः ॥ १६ ॥ मंगलानिप्रयुंजानामुदापरमयायुताः ॥ मूलंपुष्पंफलंसर्वमाश्रमंचमहात्मनः ॥ १७ ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञास्तेतुप्रांजलयोऽब्रुवन् ॥ धर्मपालोजनस्यास्यशरण्यश्चमहायशाः ॥ १८ ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चराजादंडधरोगुरुः ॥ इंद्रस्यैवचतुर्भागःप्रजारक्षतिराघव ॥ १९ ॥ राजातस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुंक्तेनमस्कृतः ॥ तेवयंभवतारक्ष्याभवद्विषयवासिनः ॥ २० ॥

॥ १५ ॥ पहुँचतेही प्रथम भली भाँति कुशल प्रश्नकर सत्कार कर अग्निकी समान तेजवाले धर्मात्मा ऋषि लोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय चरण इत्यादि धोनेको दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषि लोगोंने परम हर्ष युक्तहो मंगल आशीर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥ १७ ॥ फिर सब धर्मके जाननेवाले ऋषि लोग हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि, आप हम लोगोंके धर्मपाल शरण्य हैं व परम यशस्वी हैं ॥ १८ ॥ आप परम पूजनीय व मान्यभी हैं। क्योंकि, दंडधारी राजा गुरुके समान होता है राजा इन्द्रका चौथा भाग होता है इस कारण सबही प्रकार आप पूजा करनेके योग्य हैं; क्योंकि, जब आपही प्रजाकी रक्षा करते हैं तो उनके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ १९ ॥ सब लोगोंके नमस्कार

क्योंकि राजा श्रेष्ठ है और वह श्रेष्ठ रमणीय भोगोंको भी भोग करता है ! हे राघव ! हम लोग आपके राज्यमें वास करते हैं अतएव आपको हमारी रक्षा करनी
॥ २० ॥ हे राजन ! नगरमें रहो या वनमेंही रहो आपही हम लोगोंके राजा हैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहें कि, तुम लोगभी तपोवलसे
रक्षा कर सकते हो सो नहीं क्योंकि, हम लोगोंने क्रोधका त्यागकर इन्द्रियोंको जीत एकबारही दंड देना छोड दिया है ॥ २१ ॥ तपस्याके सिवाय हम ले
और कुछ धन नहीं है, अतएव गर्भके बालककी समान आपको हमारी रक्षा करनी उचितहै, यह कहकर उन सब ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके पुष्प
स्नान द्वारा लक्ष्मण व सीता सहित रामचन्द्रजीकी पूजा की ॥ २२ ॥ इसी प्रकारसे औरभी सिद्ध, तापस मुनिलोगोंने अग्निकी समान तेजस्वी उन प्रभु
रामचन्द्रजीकी यथाविधानसे पूजा की ॥ २३ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

नगरस्थोवनस्थोवात्वंनोराजाजनेश्वरः ॥ न्यस्तदंडावयंराजञ्जितक्रोधाजितेंद्रियाः ॥ २१ ॥ रक्षणीयास्त्वयाशश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः ॥ एवमु
मूलफलैःपुष्पैरन्यैश्चराघवम् ॥ वन्यैश्चविविधाहारैःसलक्ष्मणमपूजयन् ॥२२॥ तथान्येतापसाःसिद्धारामंवैश्वानरोपमाः ॥ न्यायवृत्ताय
न्यायेनपूजयामासुरीश्वरम् ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकांडे प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ कृतातिथ्योथरामस्तु
स्योदयंप्रति ॥ आमंत्र्यसमुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥ नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम् ॥ ध्वस्तवृक्षलतागुल्मंदुर्दर्शसलिला
नम् ॥ २ ॥ निष्कूजमानशकुनिझिल्लिकागणनादितम् ॥ लक्ष्मणानुचरोरामोवनमध्यंददर्शह ॥ ३ ॥ सीतयासहकाकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृग
ते ॥ ददर्शगिरिशृंगाभंपुरुषादंमहास्वनम् ॥ ४ ॥ गभीराक्षंमहावक्रंविकटंविकटोदरम् ॥ बीभत्संविषमंदीर्घंविकृतंघोरदर्शनम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार अच्छी तरहसे पाकर जब प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंसे पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥ १ ॥
वनमें अनेक भांतिके जीव जन्तु विद्यमान थे रीछ और शार्दूलभी घूम रहे थे। इस वनके पेड व बेलें सब सूख गईं थीं और सब ताल तलैयें सूखकर भय
हो गई थीं ॥ २ ॥ इस वनमें पक्षियोंका वह चहाना नहीं आता था न भौंरोंकी गुंजार होरहीथी केवल झिल्लीकी झनकार सुनाई आती थी ।
वहां रामचन्द्रजीने इस वनको दशा देखी ॥ ३ ॥ तिसके पीछे काकुत्स्थ रामचन्द्रजी सीताजीके साथ उस घोर पशुओं करके सेवित वनमें पह
शिखरकी समान मनुष्योंके खानेवाले बडे शब्द करनेवाले एक राक्षसको देखते हुये ॥ ४ ॥ इस राक्षसकी आंखें बहुतही गंभीर थीं, वदन अति विशाल
पेट भी विकटथी, उसके शरीरका गठन अति भयंकर था वह राक्षस ऐसा भयावना था कि, जिसे देखतेही मनुष्य डर जाय, कहीं टेढा, कहीं सीधा,

ऊंचा खाली, बराबर अंग कोई न था, उसकी सूरत बडी डरावनी थी ॥ ५ ॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमडा ओढे था जिस समय वह दवासी लेताया वो प्रलयकालकी समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला विदित होताथा ॥ ६ ॥ वह तीन शेर, बारह व्याघ्र, दो भेडिये, दश चीतल मृग, व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक ॥ ७ ॥ जो लोहेके शूलमें बिंधा हुआथा लियेथा औरबडाही चिल्ला रहाथा फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥ ८ ॥ महाक्रोधके वश होकर संहारके कालमें कृतान्तकी समान उनके ऊपरको दौडा व महा भयावनी गर्जना करके पृथ्वीको कँपाता हुआ ॥ ९ ॥ विदेहराजाकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्री सहित आयेहो इससे अपनेको मराहुआही समझो

वसानंचर्मवैयाघ्रंवसार्द्रंरुधिरोक्षितम् ॥ त्रासनंसर्वभूतानांव्यादितास्यमिवांतकम् ॥६॥ त्रीन्सिंहांश्चतुरोव्याघ्रान्द्वौवृकौपृषतान्दश ॥ सविषाणंवसा
दिग्धंगजस्यचशिरोमहत् ॥ ७ ॥ अवसज्यायसेशूलेविनदंतंमहास्वनम् ॥ सरामंलक्ष्मणंचैवसीतांदृष्ट्वाचमैथिलीम् ॥ ८ ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रु
द्धःप्रजाःकालइवांतकः ॥ सकृत्वाभैरवंनादंचालयन्निवमेदिनीम् ॥ ९ ॥ अंकेनादायवैदेहीमपक्रम्यतदाब्रवीत् ॥ युवांजटाचीरधरौसभार्यौक्षीण
जीवितौ ॥ १० ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंशरचापासिपाणिनौ ॥ कथंतापसयोर्वांचवासःप्रमदयासह ॥ ११ ॥ अधर्मचारिणौपापौकौयुवांमुनि
दूषकौ ॥ अहंवनमिदंदुर्गंविराधोनामराक्षसः ॥ १२ ॥ चरामिसायुधोनित्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ इयंनारीवरारोहाममभार्याभविष्यति॥१३॥
युवयोःपापयोश्चाहंपास्यामिरुधिरंमृधे ॥ तस्यैवंब्रुवतोदुष्टंविराधस्यदुरात्मनः ॥ १४ ॥ श्रुत्वासगर्वितंवाक्यंसंभ्रांताजनकात्मजा ॥ सीताप्रवे
पितोद्वेगात्प्रवातेकदलीयथा ॥ १५ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःसीतांविराधांकगतांशुभाम् ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंवाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ १६ ॥

॥ १० ॥ शर, चाप, तलवार हाथमें लेकर इस वनमें आयेहो फिर यह तो मुझसे कहो कि तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकर है? ॥ ११ ॥ तुम लोग अधर्मका आच रण करनेवाले पापस्वभावी हो, और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगाहै सो तुम लोग कौनहो? हम राक्षस हैं हमारा नाम विराध है हम दुर्गम वनमें रहते हैं ॥ १२ ॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खातेहुये हथियार बांधकर इस दुर्गम वनमें फिरा करतेहैं इस वरारोहा स्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनों महापापी हो इससे युद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधने ऐसे दुर्वचन कहे ॥ १४ ॥ ऐसे गर्वीले वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराई जिस प्रकार प्रचंड पवनके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपनेलगा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराध राक्षसकी

गोदमें गई देखकर उदास हो लक्ष्मणजीसे बोले॥ १६ ॥ हे सौम्य ! राजा जनकजीकी कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी श्री सीताजीका विराधकी गोदीमें स्थित
होना देखो॥ १७ ॥ यह यशस्विनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई सो अब यह राक्षसके वश पडीं सो वरदान मांगनेसे जो कैकेयीकी इच्छा थी वह
आज सफल हुई ॥ १८ ॥ जो कैकेयी अपने पुत्रको राज्यदिलाकरभी संतोषसे न रही उसने बडी दूरका आगम देखा कि, यदि यहां रहेंगे तो हमारे पुत्रका राज्य
अटल नहीं रहेगा इससे वनवास दिलवाया ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको वनमें भिजवाया अब उन बिचली माता कैकेयीदेवीका मनोरथ
सफल हुआ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीजीको राक्षसने छुआ भला इससे बढकर
कोई दुःखहै? ॥ २१ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब शोकसे घिरे आंसू भरे हुए, मंत्रसे बँधे सर्पकी समान ऊंचे श्वासले गर्जकर महा क्रोधयुक्तहो लक्ष्मणजी

पश्यसौम्यनरेंद्रस्यजनकस्यात्मसंभवाम् ॥ ममभार्यांशुभाचारांविराधांकेप्रवेशिताम् ॥ १७ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ यदः
भिप्रेतमस्मासुप्रियंवरवृतंचयत् ॥ १८ ॥ कैकेय्यास्तुसुसंवृत्तंक्षिप्रमद्यैवलक्ष्मण ॥ यानतुष्यतिराज्येनपुत्रार्थेदीर्घदर्शिनी ॥ १९ ॥ ययाहं
सर्वभूतानांप्रियःप्रस्थापितोवनम् ॥ अद्येदानींसकामासायामातामध्यमामम ॥ २० ॥ परस्पर्शात्तुवैदेह्यानदुःखतरमस्तिमे ॥ पितुर्विनाशा
त्सौमित्रेस्वराज्यहरणात्तथा ॥ २१ ॥ इतिब्रुवतिकाकुत्स्थेबाष्पशोकपरिप्लुतः ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धोरुद्धोनागइवश्वसन् ॥ २२ ॥ अनाथइ
वभूतानांनाथस्त्वंवासवोपमः ॥ मयाप्रेष्येणकाकुत्स्थकिमर्थंपरितप्यसे ॥ २३ ॥ शरेणनिहतस्याद्यमयाक्रुद्धेनरक्षसः ॥ विराधस्यगतासोर्हिमही
पास्यतिशोणितम् ॥ २४ ॥ राज्यकामेममक्रोधोभरतेयोबभूवह ॥ तंविराधेविमोक्ष्यामिवज्रीवज्रमिवाचले ॥ २५ ॥ ममभुजबलवेगवेगितः
पततुशरोस्यमहान्महोरसि ॥ व्यपनयतुतनोश्चजीवितंपततुततश्चमहींविघूर्णितः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

बोले ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप इन्द्रकी समान सब प्राणियोंके स्वामी होकर विशेषतः मुझ सरीखे सेवकके विद्यमान रहते इसप्रकारका विलाप क्योंकरतेहैं? ॥ २३ ॥
हम कोपित होकर इस विराध राक्षसको बाण मारतेहैं, बस बाणके लगतेही यह प्राण छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी ॥ २४ ॥ राज्यकी कामना करते हुये
भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुवाथा सो वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति मैं भी यह क्रोध विराधपर छोडताहूं ॥
॥ २५ ॥ हमारी भुजाओंके बलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर इसके हृदयमें जाकर गडेंगे, इसका जीवन नाशको प्राप्त हो जायगा, और यह घूम २
कर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

फिर वह विराध राक्षस अपने वचनकी ध्वनिसे समस्त वनको पूर्ण करता हुआ यह बोला—जो मैं पूछताहूं सो बतावो, कि तुम कौनहो और कहांको जाओगे ॥ ॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसने जब इस प्रकार पूछा तब महातेजस्वी श्रीरामचंद्रजी इक्ष्वाकुकुलमें अपना जन्म बताकर कहने लगे ॥ ॥ २ ॥ कि हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सब करते हैं इस समय हम वनमें आयेहैं इस बातको तू जान, हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करते हैं कि तू कौनहै? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करताहै ॥ ३ ॥ तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोला कि, राम! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जवनामक राक्षसका पुत्र हूं मेरी माताका नाम शतह्रदा है इस पृथ्वीके बीच सब राक्षस

अथोवाचपुनर्वाक्यंविराधःपूरयन्वनम् ॥ पृच्छतोममहिब्रूतंकौयुवांक्वगमिष्यतः ॥ १ ॥ तमुवाचततोरामोराक्षसंज्वलिताननम् ॥ पृच्छंतंसुम
हातेजाइक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥ २ ॥ क्षत्रियोवृत्तसंपन्नौविद्धिनौवनगोचरौ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छावःकस्त्वंचरसिदंडकान् ॥ ३ ॥ तमुवाचविरा
धस्तुरामंसत्यपराक्रमम् ॥ हंतवक्ष्यामितेराजन्निबोधममराघव ॥ ४ ॥ पुत्रःकिलजवस्याहंमाताममशतह्रदा ॥ विराधइतिमामाहुःपृथिव्यांस
र्वराक्षसाः ॥ ५ ॥ तपसाचाभिसंप्राप्ताब्रह्मणोहिप्रसादजा ॥ शस्त्रेणावध्यतालोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेवच ॥ ६ ॥ उत्सृज्यप्रमदामेनामनपेक्षौयथा
गतम् ॥ त्वरमाणौपलायेथांनवांजीवितमाददे ॥ ७ ॥ तंरामःप्रत्युवाचेदंकोपसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसंविकृताकारंविराधंपापचेतसम् ॥ ८ ॥
क्षुद्रधिक्त्वांतुहीनार्थंमृत्युमन्वेषसेध्रुवम् ॥ रणेप्राप्स्यसिसंतिष्ठनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥ ९ ॥ ततःसज्यंधनुःकृत्वारामःसुनिशिताञ्शरान् ॥
सुशीघ्रमभिसंधायराक्षसंनिजघानह ॥ १० ॥

हमको विराध नामसे पुकारा करतेहैं ॥ ५ ॥ मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जांय न हमारे अंगही कट टूटसकें न हम मारे जांय ऐसा वरदान पायाहै ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानमे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—रे अधम! तुझको धिक्कार है तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरीहै तू निश्चयही मृत्युको खोजताहै सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो, जबतक तू जीता रहेगा तबतक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने अतिशीघ्र धनुषपर बाण चढाकर बहुत सारे तेज बाण उस राक्षसको लक्ष्य करके छोडे ॥ १० ॥

उन्होंने धनुषपर रोदा चढाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेगवान् गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये॥ ११ ॥वह सातों वाण मोरकी पूंछकी समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अग्निकी समान चमकते हुए पृथ्वी पर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस वाणसे बिंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपर डालकर शूल उठा क्रोधमें भर रामचन्द्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥ १३ ॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारणकर मुख फैलाये यमराजकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥ उस राक्षसको आता देख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराधराक्षसपर दीप्तिमान वाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ १५ ॥ तब उस अतिभयानक राक्षसने हँस कर खडे हो जँभाई ली, जब कि; उसने जँभाई ली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी

तेशरीरंविराधस्यभित्त्वाबर्हिणवाससः ॥ नि ॥ ११ ॥ धनुपाज्यागुणवतासप्तवाणान्मुमोचह ॥ रुक्मपुंखान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥ ११ ॥ तेशरीरंविराधस्यभित्त्वाबर्हिणवाससः ॥ नि पेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांपावकोपमाः ॥ १२ ॥ सविद्धोन्यस्यवैदेहींशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदारामंसलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ सविनद्यमहानादंशूलंशक्रध्वजोपमम् ॥ प्रगृह्याशोभततदाव्यात्ताननइवांतकः ॥ १४ ॥ अथतौभ्रातरौदीप्तंशरवर्षववर्षतुः ॥ विराधेराक्षसेत स्मिन्कालांतकयमोपमे ॥१५॥ सप्रहस्यमहारौद्रःस्थित्वाऽजृंभतराक्षसः ॥ जृंभमाणस्यतेवाणाःकायान्निष्पेतुराशुगाः ॥ १६ ॥ स्पर्शात्तुवरदानेन प्राणान्संरोध्यराक्षसः ॥ विराधःशूलमुद्यम्यराघवावभ्यधावत ॥१७॥ तच्छूलंवज्रसंकाशंगगनेज्वलनोपमम् ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदरामःश स्त्रभृतांवरः ॥१८॥ तद्रामविशिखैश्छिन्नंशूलंतस्यापतद्भुवि ॥ पपाताशनिनाच्छिन्नंमेरोरिवशिलातलम् ॥ १९ ॥ तौखड्गौक्षिप्रमुद्यम्यकृष्णसर्पा विवोद्यतौ ॥ तूर्णमापेततुस्तस्यतदाप्रहरतांबलात ॥ २० ॥

वाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्तहोकरभी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठाकर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ । तब शस्त्र धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने दो वाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर मेरु पर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरे तैसेही श्रीरामचन्द्रजीके वाणसे टुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेको तैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामने को दौडे और उसके समीप जा बल वीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने

ग्गो ॥२०॥ तब यह राक्षस उन दोनों नरश्रेष्ठों करके अधमरासा हो कर अपने दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड यह सोचने लगा कि इनको कहीं दूर ले जाकर पटक २ कर मारडालूं ॥ २१ ॥ तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोले कि, भला होगा यह राक्षस अपने कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥ २२ ॥ हे सुमित्रानन्दन ! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकी इच्छा करताहै वहां ले जावे। क्योंकि यह जिस रास्तेपर हमें लिये जाताहै वही हमारे जानेका मार्गहै ॥ २३ ॥ उस अतिबलवान् विराधराक्षसने अपने बलद्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंकी समान अपने दोनों कंधोंपर उठा लिया ॥ २४ ॥ फिर उन दोनों जनोंको कन्धोंपर बैठाल कर भयानक वनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा ॥ २५ ॥ फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और

नवध्यमानःसुभृशंभुजाभ्यांपरिगृह्यतौ॥अप्रकंप्यौनरव्याघ्रौरौद्रःप्रस्थातुमैच्छत ॥२१॥ तस्याभिप्रायमाज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ वहत्वयमलंतावत्पथानेनतुराक्षसः ॥२२॥ यथाचेच्छतिसौमित्रेतथावहतुराक्षसः ॥ अयमेवहिनःपंथायेनयातिनिशाचरः॥२३॥ सतुस्वबलवीर्येणसमुत्क्षिप्यनिशाचरः ॥ बालाविवस्कंधगतौचकारातिबलोद्धतः ॥२४॥ तावारोप्यततःस्कंधंराघवौरजनीचरः ॥ विराधोविनदन्घोरंजगामाभिमुखोवनम्॥२५॥वनंमहामेघनिभंप्रविष्टोद्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैःपक्षिकुलैर्विचित्रंशिवायुतंव्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे तृतीयःसर्गः ॥३॥ ह्रियमाणौतुकाकुत्स्थौदृष्ट्वासीतारघूत्तमौ ॥ उच्चैःस्वरेणचुक्रोशप्रगृह्यसुमहाभुजौ ॥ ॥ १ ॥ एषदाशरथीरामःसत्यवाञ्छीलवाञ्शुचिः ॥ रक्षसारौद्ररूपेणह्रियतेसहलक्ष्मणः ॥ २ ॥ मामृक्षाभक्षयिष्यंतिशार्दूलद्वीपिनस्तथा ॥ मांहरोत्सृजकाकुत्स्थौनमस्तेराक्षसोत्तम ॥३॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वावैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ वेगंप्रचक्रतुर्वीरौवधेतस्यदुरात्मनः ॥ ४ ॥

महा मेघकी समान निविड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ जब विराध रघुनंदन रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बडी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलाप करने लगीं ॥ १ ॥ और बोलीं कि हा ! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाता है ॥ ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्र भेडिया इकली पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करती हैं कि, तुम इन दोनोंको छोड दो हमें खालो ॥ ३ ॥ बलवीर्यवाले रामचन्द्र और लक्ष्मणजीने जानकीजीके ऐसे दीनवचन सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेमें बडी शीघ्रता की ॥ ४ ॥

गार्ते ॥ ३ ॥ ... श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीने ... निरन्तर ...

मुमित्रानंदन लक्ष्मणजीने उस भयानक राक्षसका बांया हाथ और श्रीरामचन्द्रजीने शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड डाला ॥५॥ जब दोनों हाथ टूट गये तब मेघवर्ण
...गिरा भग्नचित्त मूर्च्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीमें गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानों कोई पर्वत वज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर
गया तब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने लात मुक्की घूसोंसे उसको खूब मारा और वारंवार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकने लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥
॥ ७ ॥ वह विराध पहलेभी रामचंद्रजीके बहुत बाणोंसे विंधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआथा और इस समय वार २ पृथ्वीपर पटकाभी गया
परन्तु तोभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदानथा ॥ ८ ॥ दीनको शरणदेने वाले श्रीरामचन्द्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देख
लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस राक्षसने ऐसी तपस्या कीहै कि शस्त्रकी सहायतासे वींधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता
...सभग्नबाहुःसंविग्नःपपाताशुविमूर्छितः ॥ धरण्यांमेघसं
नम्बर्गद्रस्यसौमित्रिःसव्यंबाहुंबभंजह ॥ रामस्तुदक्षिणंबाहुंतरसातस्यरक्षसः ॥ ५ ॥ सभग्नबाहुःसंविग्नःपपाताशुविमूर्छितः ॥ धरण्यांमेघसं
...काशोवज्रभिन्नइवाचलः ॥ ६ ॥ मुष्टिभिर्बाहुभिःपद्भिःसूदयंतौतुराक्षसम् ॥ उद्यम्योद्यम्यचाप्येनंस्थंडिलेनिष्पिपेषतुः ॥ ७ ॥ सविद्धोबहुभि
र्बाणैःखड्गाभ्यांचपरिक्षतः ॥ निष्पिष्टोबहुधाभूमौनममारसराक्षसः ॥ ८ ॥ तंप्रेक्ष्यरामःसुभृशमवध्यमचलोपमम् ॥ भयेष्वभयदःश्रीमानिदं
वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ तपसापुरुषव्याघ्रराक्षसोयंनशक्यते ॥ शस्त्रेणयुधिनिर्जेतुंराक्षसंनिखनावहे ॥१०॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्म
ण ॥ वनेऽस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रंखन्यतांरौद्रवर्चसः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान्॥१२॥
...ततःश्रुत्वाराघवेणोक्तंराक्षसःप्रश्रितंवचः ॥ इदंप्रोवाचकाकुत्स्थंविराधःपुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ हतोहंपुरुषव्याघ्रशक्रतुल्यबलेनवै ॥ मयातुपूर्वंत्वंमो
हान्नज्ञातःपुरुषर्षभ ॥ १४ ॥ कौसल्यासुप्रजास्तातरामस्त्वंविदितोमया ॥ वैदेहीचमहाभागालक्ष्मणश्चमहायशाः ॥ १५ ॥
... इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा
खुदाही पृथ्वीमें गाडकर दाबे देते हैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचण्ड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा
खोदो ॥ ११ ॥ वीर्यवान् लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेकी आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजी अपने चरणसे इस राक्षसका गला दाबकर खडे रहे ॥ १२ ॥
इस समय निशाचर विराध पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुषसिंह! मैं आपके इंद्रतुल्य पराक्रमसेही
मरण्ग हो गयाहूं, हे नरश्रेष्ठ ! मैंने अवतक अज्ञानसे आपको नहीं पहचाना ॥ १४ ॥ हे तात! इस समय जाना कि, आप श्रीरामचंद्रजी हैं सती कौशल्याजी
...पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुई हैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीकोभी मैंने भली भांति पहचान लिया ॥ १५ ॥

मैं पहले तुम्बुरुनाम गंधर्वथा; विश्रवाके पुत्र कुवेरजीने हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम इस पापी निशाचरयोनिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब उन्होंने हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीने हमसे कहा कि, जब दशरथजीके पुत्र रामचन्द्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गंधर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दियाथा कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआथा तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेका यह कारणथा कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहाथा तब राजा वैश्रवणने मुझको यह शापदिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप! अब मैं अपने स्थानको जाताहूं आपका भला हो कि हमको इस शापसे छुडाया अब ऐसा कीजिये कि, यहांसे कुछ दूर शरभंगका आश्रम है ॥ २० ॥ यहांसे छः कोसकी दूरीपर महाप्रतापी

अभिशापादहंघोरांप्रविष्टोराक्षसींतनुम् ॥ तुंबुरुर्नामगंधर्वःशप्तोवैश्रवणेनहि ॥ १६ ॥ प्रसाद्यमानश्चमयासोऽब्रवीन्मांमहायशाः ॥ यदादाशरथी रामस्त्वांवधिष्यतिसंयुगे ॥ १७ ॥ तदाप्रकृतिमापन्नोभवान्स्वर्गंगमिष्यति ॥ अनुपस्थीयमानोमांसक्रुद्धोव्याजहारह ॥ १८ ॥ इतिवैश्रवणोराजारंभासक्तमुवाचह ॥ तवप्रसादान्मुक्तोहमभिशापात्सुदारुणात् ॥ १९ ॥ भवनंस्वंगमिष्यामिस्वस्तिवोस्तुपरंतप ॥ इतोवसतिधर्मात्माशरभंगःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अध्यर्धयोजनेतातमहर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ तंक्षिप्रमभिगच्छत्वंसतेश्रेयोभिधास्यति ॥ २१ ॥ अवटेचापिमांरामनिक्षिप्य कुशलीव्रज ॥ रक्षसांगतसत्त्वानामेषधर्मःसनातनः ॥ २२ ॥ अवटेयेनिधीयंतेतेषांलोकाःसनातनाः ॥ एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थंविराधःशरपीडितः ॥ २३ ॥ बभूवस्वर्गसंप्राप्तोन्यस्तदेहोमहाबलः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंलक्ष्मणंव्यादिदेशह ॥ २४ ॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेस्मिन्सुमहाञ्छ्वभ्रःखन्यतांरौद्रकर्मणः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥ तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥ २६ ॥

शरभंग नाम महात्मा रहतेहैं उन महर्षिका तेज सूर्यके समानहै आप उनके पास शीघ्रही जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करेंगे ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्रजी! अब हमें गढेमें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गढेमें दवनाही मरनेके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो कि राक्षस मरनेके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित महाबलवान् विराध रामचंद्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त होनेको हुआ, श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञादी ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्म करने वाले राक्षसके दाबनेको एक बहुत बडा गडहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीको गडहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान् रामचंद्रजी स्वयंभी अपने पैरसे विराधका

गला दबाकर खडे रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीने खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गडहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचन्द्रजीने गधेकेसे कान
जिनमें लगे हुएहैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गडहेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लाने लगा ॥
॥ २८ ॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बडे राक्षसका संग्राममें पराजय करा, और अपनी
भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गडहेमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका
संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गढहेमें उसके मरनेके उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार

ततःखनित्रमादायलक्ष्मणःश्वभ्रमुत्तमम् ॥ अखनत्पार्श्वतस्तस्यविराधस्यमहात्मनः ॥ २७॥ तंमुक्तकंठमुत्क्षिप्यशंकुकर्णंमहास्वनम् ॥ विराधंप्रा
क्षिपच्छ्वभ्रेनदंतंभैरवस्वनम् ॥ २८॥ तमाहवेदारुणमाशुविक्रमौस्थिरावुभौसंयतिरामलक्ष्मणौ ॥ मुदान्वितौचिक्षिपतुर्भयावहंनदंतमुत्क्षिप्यबले
नराक्षसम् ॥ २९॥ अवध्यतांप्रेक्ष्यमहासुरस्यतौशितेनशस्त्रेणतदानरर्षभौ ॥ समर्थ्यचात्यर्थविशारदावुभौबिलेविराधस्यवधंप्रचक्रतुः ॥ ३०॥
स्वयंविराधेनहिमृत्युमात्मनःप्रसह्यरामेणयथार्थमीप्सितः ॥ निवेदितःकाननचारिणास्वयंनमेवधःशस्त्रकृतोभवेदिति॥ ३१॥ तदेवरामेणनिशम्य
भाषितंकृतामतिस्तस्यबिलप्रवेशने ॥ बिलंचतेनातिबलेनरक्षसाप्रवेश्यमानेनवनंविनादितम् ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टरूपाविवरामलक्ष्मणौविराधमुर्व्यां
प्रदरेनिपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयौमहावनेदिविस्थितौचंद्रदिवाकराविव ॥३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे
चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अपने प्रयोजनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधनेभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेकी कामनासे स्वयं रामचन्द्रजीसे कहा
था कि तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गडहेमें दाबनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गडेमें डाल
नेके समय विराध ऐसा घोर चिल्लाया कि उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथही भर गया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी उस विराध
राक्षसको पृथ्वीमें पाटपूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुए सूर्य चंद्रमाकी समान दीप्ति
मान होने लगे ॥ ३३ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीने भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेमसहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥ १ ॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि; यह वन स्वभावसेही दुर्गम और कष्टका देनेवाला है। इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंने नहीं देखा ॥ २ ॥ तिससे शीघ्रही तपोधन शरभंगजीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीराम चन्द्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओरको चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँचकर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंकासा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शर भंगजीके निकट एक बडे अचरजकी-बात रामचन्द्रजीने देखी ॥ ४ ॥ कि; सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ रथपर चढे हैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडा होकर आकाश मार्गमेंही टिका है उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरनेके वस्त्र बहुतही उजले थे ॥ ६ ॥ वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा

हत्वातुतंभीमबलंविराधंराक्षसंवने ॥ ततःसीतांपरिष्वज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥१॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ कष्टंवनमिदंदुर्गंन चस्मोवनगोचराः ॥२॥ अभिगच्छामहेशीघ्रंशरभंगंतपोधनम् ॥ आश्रमंशरभंगस्यराघवोभिजगामह ॥३॥ तस्यदेवप्रभावस्यतपसाभावितात्म नः ॥ समीपेशरभंगस्यददर्शमहदद्भुतम् ॥ ४ ॥ विभ्राजमानंवपुषासूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ रथप्रवरमारूढमाकाशेविबुधानुगम् ॥ ५ ॥ असंस्पृशंतं वसुधांददर्शविबुधेश्वरम् ॥ संप्रभाभरणंदेवंविरजोंबरधारिणम् ॥६॥ तद्विधैरेवबहुभिःपूज्यमानंमहात्मभिः ॥ हरितैर्वाजिभिर्युक्तमंतरिक्षगतंरथम् ॥ ॥७॥ ददर्शादूरतस्तस्यतरुणादित्यसन्निभम् ॥ पांडुराभ्रघनप्रख्यंचंद्रमंडलसन्निभम् ॥८॥ अपश्यद्विमलंछत्रंचित्रमाल्योपशोभितम् ॥ चामरव्य जनेचाग्र्येरुक्मदंडेमहाधने ॥ ९ ॥ गृहीतेवरनारीभ्यांधूयमानेचमूर्धनि ॥ गंधर्वामरसिद्धाश्चबहवःपरमर्षयः ॥ १० ॥ अंतरिक्षगतंदेवंगीर्भिरग्र्याभि रेडयन् ॥ सहसंभाषमाणेतुशरभंगेनवासवे ॥ ११ ॥ दृष्ट्वाशतक्रतुंतत्ररामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ रामोथरथमुद्दिश्यभ्रातुर्दर्शयताद्भुतम् ॥ १२ ॥

उनकी पूजा कर रहे हैं रामचन्द्रजीने दूरसे देखा कि, इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरितवर्ण व श्यामवर्णके घोडे जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडाहै ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यकी समान पाण्डुवर्णके बादलकी समानहै उज्ज्वल चन्द्रमंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्ज्वल है उस पर चित्र विचित्र मालायें लटक रही हैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रहीथी जो बडे मोलके और बडे श्रेष्ठ थे ॥ ९ ॥ दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमाती थीं बहुत सारे गंधर्व; देवता, सिद्ध, और परमर्षिगण एक साथ मिलकर ॥ १० ॥ श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहे थे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीके साथ वार्तालाप करनेमें लगे हुये थे ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजी

उन्हें देख उनके रथको बता भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित यह दिखाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया ! देखो परम दीप्तिमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिकाहुआ शोभा पा रहाहै ॥ १३ ॥ हमने पहले शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनी थी, सो यह अन्तरिक्षमें टिकेहुवे, निश्चय वही घोडे होंगे ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह ! इस रथके चारों ओर जो सैकडों खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडे हैं ॥ १५ ॥ जिन सबकी ही छाती बडी चौडी है, बाहें परिघकी समान विशाल हैं, पहरनेके कपडे जिनके लाल हैं, जो लोग कि, व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्ष हैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंके ही गलेमें जलती हुई अग्निकी समान हार शोभा पारहेहैं और पचीस २ वर्षकीहीसी उमर जान पडती है ॥ १७ ॥ यह सब पुरुषश्रेष्ठ

अर्चिष्मंतंश्रियाजुष्टमद्भुतंपश्यलक्ष्मण ॥ प्रतपंतमिवादित्यमंतरिक्षगतंरथम् ॥ १२ ॥ येहयाःपुरुहूतस्यपुराशक्रस्यनःश्रुताः ॥ अंतरिक्षगता दिव्यास्तइमेहरयोध्रुवम् ॥ १४ ॥ इमेचपुरुषव्याघ्रयेतिष्ठंत्यभितोदिशम् ॥ शतंशतंकुंडलिनोयुवानःखड्गपाणयः ॥ १५ ॥ विस्तीर्णविपुलोरस्काःपरिघायतबाहवः ॥ शोणांशुवसनाःसर्वेव्याघ्राइवदुरासदाः ॥ १६ ॥ उरोदेशेषुसर्वेषांहाराज्वलनसंनिभाः ॥ रूपंबिभ्रतिसौमित्रेपंचविंशतिवार्षिकम् ॥ १७ ॥ एतद्धिकिलदेवानांवयोभवतिनित्यदा ॥ यथेमेपुरुषव्याघ्राद्दश्यंतेप्रियदर्शनाः ॥ १८ ॥ इहैवसहवैदेह्यामुहूर्तंतिष्ठलक्ष्मण ॥ यावज्जानाम्यहंव्यक्तंकएषद्युतिमान्रथे ॥ १९ ॥ तमेवमुक्त्वासौमित्रिमिहैवस्थीयतामिति ॥ अभिचक्रामकाकुत्स्थःशरभंगाश्रमंप्रति ॥ २० ॥ ततःसमभिगच्छंतंप्रेक्ष्यरामंशचीपतिः ॥ शरभंगमनुज्ञाप्यविबुधानिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ इहोपयात्यसौरामोयावन्मांनाभिभाषते ॥ निष्ठांनयततावत्तुततोमाद्रष्टुमर्हति ॥ २२ ॥ जितवंतंकृतार्थंहितदाहमचिरादिमम् ॥ कर्मह्यनेनकर्तव्यंमहदन्यैःसुदुष्करम् ॥ २३ ॥

जिस प्रकार कि, प्रिय दर्शन जान पडते हैं, वैसेही सब देवतागण ऐसे रूप व उमरवाले जान पडा करतेहैं व इनका शरीर सदा ऐसाही रहता है कि, मानों पचीस वर्षहीकी अवस्थाहै ॥ १८ ॥ तिससे हे लक्ष्मण! वैदेहीजीके सहित यहांपर एक मुहूर्त्त भरतक तुम टिके रहो जबतक कि हम स्पष्ट २ यह न जान आवें कि रथवाले द्युतिमान् यह तेजस्वी पुरुष कौनहैं ? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कह कि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीको आते हुए देखकर शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे बिदाले अनुचर देवताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आतेहैं, सो जब तक कि यह हमसे कुछ बोलनेकें तिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिससे यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोगोंके न करने

योग्य बडा कठिन विशेष भारी कार्य करना पडेगा। जबकि यह राक्षसको जीतकर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करूंगे जो अभी दर्शन करूं तो न जाने रावण यह वृत्तान्त जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीसे आज्ञा ले और उनका विशेष सन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकर स्वर्ग चले गये ॥ २४ ॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चलेगये तब रामचंद्रजी भ्राता और भार्या सीताजीके सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये ॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरण पकडे तब शरभंगजीने उनको टिकनेके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिके लिये निमंत्रणभी करदिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचंद्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहां पर बैठे ॥ २६ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन रामचंद्रजीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभंगजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव! यह वर

अथवज्रीतमामंत्र्यमानयित्वाचतापसम् ॥ रथेनहययुक्तेनययौदिवमरिंदमः ॥ २४ ॥ प्रयातेतुसहस्राक्षेराघवःसपरिच्छदः ॥ अग्निहोत्रमुपासीनंशरभंगमुपागमत् ॥ २५ ॥ तस्यपादौचसंगृह्यरामःसीताचलक्ष्मणः ॥ निषेदुस्तदनुज्ञातालब्धवासानिमंत्रिताः ॥ २६ ॥ ततःशक्रोपयानंतुपर्यपृच्छतराघवः ॥ शरभंगश्चतत्सर्वंराघवायन्यवेदयत् ॥ २७ ॥ मामेपवरदोरामब्रह्मलोकंनिनीषति ॥ जितमुग्रेणतपसादुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥ २८ ॥ अहंज्ञात्वानरव्याघ्रवर्तमानमदूरतः ॥ ब्रह्मलोकंनगच्छामित्वामदृष्ट्वाप्रियातिथिम् ॥२९॥ त्वयाहंपुरुषव्याघ्रधार्मिकेणमहात्मना ॥ समागम्यगमिष्यामित्रिदिवंचावरंपरम् ॥ ३० ॥ अक्षयानरशार्दूलजितालोकामयाशुभाः ॥ ब्राह्म्याश्चनाकपृष्ठ्याश्चप्रतिगृह्णीष्वमामकान् ॥ ॥ ३१ ॥ एवमुक्तोनरव्याघ्रःसर्वशास्त्रविशारदः ॥ ऋषिणाशरभंगेनराघवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

दाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें ले जानेकी इच्छासे यहां आयेथे हमने उग्र तप करके उस लोकको जीत लियाहै कि, जिसका जीतना विना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ विना मिले ब्रह्मलोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं सो हमारे मनमें यहहै कि, आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितने भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जय कर लियाहै सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीने जब इस प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके

जानेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहैं तो जो लोक आपने जीतेहैं हम उन सबको यहां बुलाद परन्तु इस
वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम बसना चाहतेहैं सो बताइये कि, कौनसे स्थानमें वासकरें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी समान बलवान् रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीने जब
इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्णनामक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि
वास करतेहैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थानभी बतावेंगे ॥ ३५ ॥ और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओरको बह रही है सो
इसके किनारे २ ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥ ३६ ॥ हे पुरुषशार्दूल ! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आता है हे तात ! सर्प जिस प्रकार
पुरानी कैंचलीको छोडकर चला जाता है वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोडेंगे आप एक मुहूर्ततक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खडे रहिये ॥ ३७ ॥
अहमेवाहरिष्यामिसर्वांल्लोकान्महामुने॥आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने॥३३॥राघवेणैवमुक्तस्तुशक्रतुल्यबलेनवै॥ शरभंगोमहाप्राज्ञःपुन
रेवाब्रवीद्वचः ॥३४॥ इहराममहातेजाःसुतीक्ष्णोनामधार्मिकः ॥ वसत्यरण्येनियतःसतेश्रेयोविधास्यति ॥३५॥ इमांमंदाकिनींरामप्रतिस्रोतामनु
व्रज ॥ नदींपुष्पोडुपवहांततस्तत्रगमिष्यसि ॥ ३६ ॥ एषपंथानरव्याघ्रमुहूर्तंपश्यतातमाम् ॥ यावज्जहामिगात्राणिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥ ३७ ॥
ततोग्निंसमाधायहुत्वाचाज्येनमंत्रवत् ॥ शरभंगोमहातेजाःप्रविवेशहुताशनम् ॥ ३८ ॥ तस्यरोमाणिकेशांश्चतदावह्निर्महात्मनः ॥ जीर्णांत्वचं
तदस्थीनियच्चमांसंचशोणितम् ॥ ३९ ॥ सचपावकसंकाशःकुमारःसमपद्यत ॥ उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगोव्यरोचत ॥ ४० ॥ सलो
कानाहिताग्नीनामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ देवानांचव्यतिक्रम्यब्रह्मलोकंव्यरोहत ॥ ४१ ॥ सपुण्यकर्माभुवनेद्विजर्षभःपितामहंसानुचरंददर्शह ॥
पितामहश्चापिसमीक्ष्यतंद्विजंननंदसुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे पंचमःसर्गः ॥५॥
यह कहकर परम तेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए॥ ३८ ॥ भगवान् अग्निजीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा
शरभंगजीके समस्त रोवें, केश, हड्डी, मांस, रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी साक्षात् अग्निकी समान मूर्तिमान् कुमारका रूप धारण
कर अग्निके ढेरमे निकल कर शोभा पाने लगे और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके
सब लोकोंको लांघकर ब्रह्मलोकको चले गये॥ ४१ ॥ वहां जाकर पुण्यकर्म करनेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठ शरभंगजी अनुचरवेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करते हुये ब्रह्माजीने
भी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शन कर उनको अपने धोरे बिठाय कुशलप्रश्नकर सब वृत्तांत पूछा॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचमःसर्गः॥५॥

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचन्द्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैखानस जो कि, प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुए थे, बालखिल्य जो रोमसे उत्पन्न हुए हैं कुछ सम्प्रक्षाल थे जो परमात्माके चरणोंके धोनेसे हुये थे कुछ मरीचिप थे जो सूर्य या चन्द्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्मकुट्ट थे, जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापस थे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखली थे जिनके दांतही ओखलीकी समान थे अर्थात् कच्चा अन्न दांतोंसेही चबा जाते थे, कुछ उन्मज्जक थे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते, बहुत सारे गात्र शय्य थे जो विना बिछाये पृथ्वी परही सोते, बहुत अशय्य थे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं, वैसेही पृथ्वीपर पडे रहते थे, बहुत अनवकाशक थे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जलाहारी थे जो जलही पीकर रहते कुछ वायुभोजी थे जो केवल हवाही खाकर जीते, जो

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंघाःसमागताः ॥ अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंरामंज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥ वैखानसावालखिल्याःसंप्रक्षालामरीचिपाः ॥ अश्म कुट्टाश्चबहवःपत्राहाराश्चतापसाः ॥ २ ॥ दंतोलूखलिनश्चैवतथैवोन्मज्जकाःपरे ॥ गात्रशय्याअशय्याश्चतथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥ मुनयःसलिला हारावायुभक्षास्तथापरे ॥ आकाशनिलयाश्चैवतथास्थंडिलशायिनः ॥ ४ ॥ तथोर्ध्ववासिनोदांतास्तथार्द्रपटवाससः ॥ सजपाश्चतपोनिष्ठास्त थापंचतपोन्विताः ॥ ५ ॥ सर्वेब्राह्म्याश्रियायुक्तादृढयोगसमाहिताः ॥ शरभंगाश्रमेराममभिजग्मुश्चतापसाः ॥ ६ ॥ अभिगम्यचधर्मज्ञारामंधर्म भृतांवरम् ॥ ऊचुःपरमधर्मज्ञमृषिसंघाःसमागताः ॥ ७ ॥ त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्यपृथिव्याश्चमहारथः ॥ प्रधानश्चापिनाथश्चदेवानांमघवानिव ॥ ८ ॥

आकाशनिलय थे जो विना ऊपर कुछ छायेछुये खुले मैदानमें पडे रहते कुछ स्थण्डिलशायी जो पृथ्वीपर पडे रहते ॥ ४ ॥ कुछ ऊर्ध्ववाहु जो कि सदा ऊपरहीको हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तथे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय परही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसे थे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठ थे जो सदा तपही करके भगवान्‌का ध्यान किया करते । कुछ पंचतपानुष्ठाई थे जो गरमियोंमें पंचाग्नि तापा करते थे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोग थे सबपर ब्राह्मी श्री विराजमान थी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहे थे, यह सब तपस्वीगण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषिलोग सब वहां आकर धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परमधर्मज्ञ ! तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो, इक्ष्वाकुकुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तुमभी सब

निगने हे शरण्य ! हम आश्रय लेनेके लिये आपके निकट आयेहैं हे श्रीरामचंद्रजी ! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये । क्योंकि निशाचरगण हम लोगोंका नाश किये देतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजकुमार ! इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहींहै हे रघुकुलचूडामणि ! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनन्दन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले ❀ ॥२१॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको कुछ आवश्यकता नहीं है, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवाले हैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेको हमें चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥२२॥ जबकि हम इस वनमें आयेहैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसेहै उसहीको मिटानेके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आयेहैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेहीके लिये आयेहैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन

ततस्त्वांशरणार्थंचशरण्यंसमुपस्थिताः॥ परिपालयनोरामवध्यमानान्निशाचरैः ॥१९॥ परात्वत्तोगतिर्वीरपृथिव्यांनोपपद्यते ॥ परिपालयनःसर्वा
न्राक्षसेभ्योनृपात्मज ॥ २० ॥ एतच्छ्रुत्वातुकाकुत्स्थस्तापसानांतपस्विनाम् ॥ इदंप्रोवाचधर्मात्मासर्वानेवतपस्विनः ॥ २१ ॥ नैवमर्हथमांवक्तुमाज्ञा
प्योहंतपस्विनाम् ॥ केवलंनस्वकार्येणप्रवेष्टव्यंवनंमया ॥२२॥ विप्रकारमपाक्रष्टुंराक्षसैर्भवतामिमम्॥ पितुस्तुनिर्देशकरःप्रविष्टोहमिदंवनम् ॥२३॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोहंयदृच्छया ॥ तस्यमेयंवनेवासोभविष्यतिमहाफलः ॥ २४ ॥ तपस्विनांरणेशत्रून्हंतुमिच्छामिराक्षसान् ॥ पश्यंतुवीर्यं
मृषयःसभ्रातुर्मेतपोधनाः ॥ २५ ॥ दत्त्वावरंचापितपोधनानांधर्मेधृतात्मासहलक्ष्मणेन ॥ तपोधनैश्चापिसहार्यदत्तःसुतीक्ष्णमेवाभिजगामवीरः ॥
॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥ रामस्तुसहितोभ्रात्रासीतयाचपरंतपः ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंजगामसहतैर्द्विजैः ॥ १ ॥

करनी होती तो किसी और ही ओरको चले जाते, अब हमारा वनवास सफल हो जायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैगा ॥ २४ ॥ हमने वनमें तपस्वीलोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प कियाहै तपोवलसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देखें ॥ २५ ॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदानदे उन लोगोंकी पूजा मानकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णऋषिके आश्रमकी ओर चले + ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ

❀ चौपाई–आरत वचन सुनत रघुनायक । बोले वचन धरे धनुसायक ॥ + दोहा–निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन, जायजायसुखदीन ॥

सीताजीके सहित जो कि, हमने तपस्यासे पाये हैं उन सब देवर्षियों करके सेवित लोकोंमें आनन्दसे वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥ पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ब्रह्माजीसे बोलते हैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्यमान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ महामुने ! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि, इस समय इस वनमें हमारे रहनेको आप स्थान बतादीजिये ॥ १४ ॥ गौतमवंशीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि, आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियोंका हितसाधन करनेमें रत हैं ॥ १५ ॥ जगत्मसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है इसमें अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रममें सर्व समय बहुत सारे मिला करते हैं, अतएव तुम इस स्थानमेंही वसकर

तमुग्रतपसंदीप्तंमहर्षिसत्यवादिनम् ॥ प्रत्युवाचात्मवान्रामोब्रह्माणमिववासवः ॥ १३ ॥ अहमेवाहरिष्यामिस्वयंलोकान्महामुने ॥ आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥ १४ ॥ भवान्सर्वत्रकुशलःसर्वभूतहितेरतः ॥ आख्यातंशरभंगेनगौतमेनमहात्मना ॥ १५ ॥ एममुक्तस्तुरामेणमहर्षिलोकविश्रुतः ॥ अब्रवीन्मधुरंवाक्यंहर्षेणमहतायुतः ॥ १६ ॥ अयमेवाश्रमोरामगुणवान्रम्यतामिति ॥ ऋषिसंघानुचरितःसदामूलफलैर्युतः ॥ १७ ॥ इममाश्रममागम्यमृगसंघामहीयसः ॥ अहत्वाप्रतिगच्छंतिलोभयित्वाकुतोभयाः ॥ १८ ॥ नान्योदोषोभवेदत्रमृगेभ्योन्यत्रविद्धिवै ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमहर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥ १९ ॥ उवाचवचनंधीरोविगृह्यसशरंधनुः ॥ तानहंसुमहाभागमृगसंघान्समागतान् ॥२०॥ हन्यांनिशितधारेणशरेणानतपर्वणा ॥ भवांस्तत्राभिषज्येतकिंस्यात्कृच्छ्रतरंततः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नाश्रमेवासंचिरंतुनसमर्थये ॥ तमेवमुक्त्वोपरमंरामःसंध्यामुपागमत् ॥ २२ ॥

विहार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बडे २ शरीरवाले मृगगण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर भी लौट जाते हैं ॥ १८ ॥ अतएव आप जानलें कि, कुछ थोडा बहुत डर है भी वह केवल पशुगणोंकाही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी ॥ १९ ॥ धनुष और शरग्रहण करके उनसे बोले कि, हे महानुभाव ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इससे हमें बडा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीने जाना कि, मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि, इस मृगबाधित आश्रमपर बहुत दिनोंतक रहनेकी

सायंकालकी सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहाँ सुतीक्ष्णजीके आश्रमपर लक्ष्मण
हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्रजी सन्ध्या करनेको गये ॥ २२ ॥
और जानकीजीके सहित रहे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि हो आई तब महात्मा सुतीक्ष्णजीने, आपही तपस्वियोंके भोजनकरने योग्य
अन्न उन दो पुरुषश्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुए ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰वाल्मी॰आदि॰आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥
श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करके प्रभात होतेही जागे ॥ १ ॥ और सीताजीके सहित
यथा कालमें उठकर श्रीरामचन्द्रजीने उस जलमें स्नान करा व हाथ पैर धो जो कि कमलोंकी सुवाससे युक्त था ॥ २ ॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके

सुतीक्ष्णस्याश्रमेरम्येसीतयालक्ष्मणेनच ॥ २३ ॥ ततःशुभंतापसयोग्यमन्नंस्वयंसुतीक्ष्णःपुरुष
व्याघ्राभ्याम् ॥ ताभ्यांसुसत्कृत्यददौमहात्मासंध्यानिवृत्तोरजनींसमीक्ष्य ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य आर
ण्यकांडे सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ रामस्तुसहसौमित्रिःसुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्यनिशांतत्रप्रभातेप्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥ उत्थायचयथा
कालंराघवःसहसीतया ॥ उपस्पृश्यसुशीतेनतोयेनोत्पलगंधिना ॥ २ ॥ अथतेऽग्निंसुरांश्चैववैदेहीरामलक्ष्मणौ ॥ काल्यंविधिवदभ्यर्च्यतपस्वि
शरणेवने ॥ ३ ॥ उदयंतंदिनकरंदृष्ट्वाविगतकल्मषाः ॥ सुतीक्ष्णमभिगम्येदंश्लक्ष्णंवचनमब्रुवन् ॥ ४ ॥ सुखोषिताःस्मभगवंस्त्वयापूज्येन
पूजिताः ॥ आपृच्छामःप्रयास्यामोमुनयस्त्वरयंतिनः ॥ ५ ॥ त्वरामहेवयंद्रष्टुंकृत्स्नमाश्रममंडलम् ॥ ऋषीणांपुण्यशीलानांदंडकारण्यवासि
नाम् ॥ ६ ॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामःसहैभिर्मुनिपुंगवैः ॥ धर्मनित्यैस्तपोदांतैर्विशिखैरिवपावकैः ॥ ७ ॥ अविषह्यातपोयावत्सूर्योनातिविरा
जते ॥ अमार्गेणागतांलक्ष्मींप्राप्येवान्ववर्जितः ॥ ८ ॥

कालोचित विधानानुसार अग्नि आदि देवताओंकी पूजा उस तपस्वीसेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवान्के दर्शन कर निष्पाप वे कुमार सुती
क्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आपके निकट पहुंचकर पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें
जांयगे इस कारण आपकी अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं ॥ ५ ॥ दण्डकारण्यवासी पवित्रस्वभाववाले ऋषि
लोगोंके समस्त आश्रममण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे ॥ ६ ॥ अब इच्छाहै कि आप आज्ञा दे दें तो हम इन सब बिना
धुंएवाली अग्निके समान प्रभायुक्त सत्यनिष्ठ तप करके जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको जीत लियाहै ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जांय ॥ ७ ॥ अन्याय करके प्राप्तहुई लक्ष्मीको पाकर

जिस प्रकार पुरुषार्थ पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥ ८ ॥ हम यहांसे चलनेकी वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीने यह कहकर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दना की ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीने चरणवन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! लक्ष्मणजी और छायाके समान साथ चलनेवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुए हैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भले २ श्रेष्ठ मृगगण रहते हैं और पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड भरे हैं ॥ १३ ॥ जहां स्वच्छ जल

तावदिच्छामहेगंतुमित्युक्त्वाचरणौमुनेः ॥ ववंदेसहसौमित्रिःसीतयासहराघवः ॥ ९ ॥ तौसंस्पृशंतौचरणावुत्थाप्यमुनिपुंगवः ॥ गाढमाश्लिष्यसस्नेहमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ अरिष्टंगच्छपंथानंरामसौमित्रिणासह ॥ सीतयाचानयासार्धंछाययेवानुवृत्तया ॥ ११ ॥ पश्याश्रमपदंरम्यं दंडकारण्यवासिनाम् ॥ एषांतपस्विनांवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥ १२ ॥ सुप्राज्यफलमूलानिपुष्पितानिवनानिच ॥ प्रशस्तमृगयूथानिशांतपक्षिगणानिच ॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कारंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥ १४ ॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ रमणीयान्यरण्यानिमयूराभिरुतानिच ॥ १५ गम्यतांवत्ससौमित्रेभवानपिचगच्छतु ॥ आगंतव्यंचतेदृष्ट्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततःशुभतरेतूणीधनुषीचायतेक्षणा ॥ ददौसीता तयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥ १८ ॥ आबध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने ॥ निष्क्रांतावाश्रमाद्गंतुमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

वाली वाल तलैयोंमें कमल फूल रहे हैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराजरहे हैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अतिमनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौटकर आवें ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीकी परिकमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीने दोनों भाइयोंको श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीने खोलकर धर दिये थे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनों [illegible] डाल यात्रा

करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण और असि धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ रघुनंदन रामचन्द्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्मा हैं परन्तु परमसूक्ष्मरूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करते हैं, इस समय कामजव्यसनसे निवृत्त होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इससे भी परम भारी और दो पाप हैं ॥ ३ ॥ परस्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना)और विना वैरकेही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारी हैं हे रघुनन्दन !

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥ प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥ २० ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्य आरण्यकांडेऽष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥ सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम् ॥ हृद्ययास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अधर्मंतुसुसूक्ष्मेणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥ निवृत्तेनचशक्योयंव्यसनात्कामजादिह ॥ २ ॥ त्रीण्येवव्यसनान्यत्रकामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥ ३ ॥ परदाराभिगमनंविनावैरंचरौद्रता ॥ मिथ्यावाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोभिलषणंस्त्रीणांपरेषांधर्मनाशनम् ॥ तवनास्तिमनुष्येंद्रनचाभूत्तेकदाचन ॥ ५ ॥ मनस्यपितथारामनचैतद्विद्यतेक्वचित् ॥ स्वदारनिरतश्चैवनित्यमेवनृपात्मज ॥ ६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्चपितुर्निर्देशकारकः ॥ त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ तच्चसर्वंमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येंद्रियत्वंचजानातिशुभदर्शन ॥ ८ ॥ तृतीयंयदिदंरौद्रंपरप्राणाभिहिंसनम् ॥ निर्वैरंक्रियतेमोहात्तच्चतेसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥

आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहेंगे ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! और आप धर्मका नाश करनेवाला परस्त्रीगमन नहीं करते सो हे नरनाथ ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की। हे राजकुमार ! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहते हैं ॥ ६ ॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले हैं पिताजीकी आज्ञा पालन कर रहे हैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुये हैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! जो लोग जितेन्द्रिय हैं वह लोगही इन सब बातोंका पालन कर सकते हैं । हे शुभदर्शन ! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानतेहैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसन है इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥

हेवीर! आपने प्रतिज्ञा की है कि, दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे ॥ १०॥ इसी कारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यात है उसमें यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूपव्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता होरही है ॥ १२ ॥ हे वीर! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी कहती हैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जायँगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करेंगे ॥ १४ ॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अग्निके तेजको बढाता है वैसे ही यह धनुष जिसके पास रहता है

प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणांरक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वं सहभ्रात्राधृतबाणशरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वांप्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ तद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥ नहिमेरोचते वीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥१३॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रासहवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समीपतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥ पुराकिलमहाबाहोतपस्वी सत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥ १६ ॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रःशचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक् ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥

वहभी किसी न किसी पर चलायाही चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति खड्ग रखकर चले गये ॥ १८ ॥ मुनिजी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमने लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षा करनेमें इतना यत्न करते कि जब क

वीर! आपने प्रतिज्ञा की है कि, दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे ॥ १० ॥ इसी कारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यात है उसमें यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूपव्रत जानकर आपके पारलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता होरही है ॥ १२ ॥ हे वीर! दंडकारण्यका जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी कहती हैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जायँगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करेंगे ॥ १४ ॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अग्निके तेजको बढाता है वैसे ही यह धनुष जिसके पास रहता है

प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणांरक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ १० ॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वं सहभ्रात्राधृतबाणशरासनः ॥ ११ ॥ ततस्त्वांप्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ तद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥ नहिमेरोचते वीरगमनंदंडकान्प्रति ॥ कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याःश्रूयतांमम ॥१३॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रासहवनंगतः ॥ दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥ १४ ॥ क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समीपतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥ १५ ॥ पुराकिलमहाबाहोतपस्वी सत्यवाञ्छुचिः ॥ कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥ १६ ॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रःशचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक् ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥ १८ ॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः ॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥२०॥

उसको किसी न किसी पर चलायाही चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति खड्ग रखकर चले गये ॥ १८ ॥ मुनिजी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमने लगे ॥ १९ ॥ यह धरोहर वस्तुकी रक्षा करनेमें इतना यत्न

योद्धाका वेष धनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आगे ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें [illegible]
गये ॥ १८ ॥ [illegible]

[illegible] ॥ २१ ॥ तिसके पीछे यह
नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेसे सहज २ में मुनिका विश्वास तप करनेसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे यह
उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे चिर शस्त्र साथ रखनेसे अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेसे पहले ऐसा
हुआया इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्रसंयोगको अग्निसंयोगकी समान विकारका हेतु कहा करते हैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ ! हम आपसे बहुत स्नेह करती हैं इस
कारण आपको स्मरण दिलाती हैं कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करतीं ! हे वीर ! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये ॥ २४ ॥ निरपराध दंडकवासी
राक्षसोंको मारनेका विचार मत कीजिये. हे वीर ! विना अपराध किसीको भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष
धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं वरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लिये है ॥ २६ ॥ वनवासीको क्या शस्त्र धारण करना उचितहै तपस्वि

नित्यंशस्त्रंपरिवहन्क्रमेणसतपोधनः ॥ चकाररौद्रींस्वांबुद्धिंत्यक्त्वातपसिनिश्चयम् ॥२१॥ ततःसरौद्राभिरतःप्रमत्तोधर्मकर्षितः ॥ तस्यशस्त्रस्यसं
वासाज्जगामनरकंमुनिः ॥ २२ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तंशस्त्रसंयोगकारणम् ॥ अग्निसंयोगवद्धेतुःशस्त्रसंयोगउच्यते ॥ २३ ॥ स्नेहाच्चबहुमानाच्चस्मारये
त्वांनशिक्षये ॥ नकथंचनसाकार्यागृहीतधनुषात्वया ॥ २४ ॥ बुद्धिर्वैरंविनाहंतुंराक्षसान्दंडकाश्रितान् ॥ अपराधंविनाहंतुंलोकोवीरनमंस्यते॥२५॥
क्षत्रियाणांतुवीराणांवनेषुनियतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥२६॥ क्वचशस्त्रंक्वचवनंक्वचक्षात्रंतपःक्वच ॥ व्याविद्धमिदमस्मा
भिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥ २७ ॥ कदर्यकलुषाबुद्धिर्जायतेशस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वात्वयोध्यायांक्षत्रधर्मंचरिष्यसि ॥ २८ ॥ अक्षयातुभवेत्प्रीतिःश्वश्रू
श्वशुरयोर्मम ॥ यदिराज्यंहिसंन्यस्यभवेस्त्वंनिरतोमुनिः ॥ २९ ॥ धर्मादर्थःप्रभवतिधर्मात्प्रभवतेसुखम् ॥ धर्मेणलभतेसर्वंधर्मसारमिदंजगत् ॥
॥ ३० ॥ आत्मानंनियमैस्तैस्तैःकर्षयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्राप्यतेनिपुणैर्धर्मोनसुखाल्लभतेसुखम् ॥ ३१ ॥

योंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै ? कहां शस्त्र ? कहां वन ? कहां क्षत्रियधर्म ? कहां तप ? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर
करना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलिन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर क्षत्रियोंके धर्मका आचरण
कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्यपरित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे सास और श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिक
होगी। क्योंकि उन्होंनेभी यही आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥२९॥ धर्मसेही अर्थका लाभ होताहै धर्मसेही सुख उत्पन्न होताहै. वरन् धर्मसे ही सब कुछ
प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्मही संसारमें एक मात्र सार वस्तु है अतएव, आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल

करके धर्मका लाभ करतेहैं, क्योंकि शारीरिक सुखजनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता . ॥ ३१ ॥ हे प्रियदर्शन ! तुम सदा शुद्धचित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्मविषयमें आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलम्ब न लगाकर उसको कीजिये ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

पतिकी भक्ति करनेवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेपर परम धर्मनिष्ठ रामचन्द्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समादृत जान उत्तर देतेहुए ॥ ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञे देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रियकुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई

नित्यंशुचिमतिःसौम्यचरधर्मंतपोवने ॥ सर्वंतुविदितंतुभ्यंत्रैलोक्यमपितत्त्वतः ॥३२॥ स्त्रीचापलादेतदुदाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकःसमर्थः ॥ विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥ श्रुत्वाधर्मेस्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥ हितमुक्तंत्वयादेविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचधर्मज्ञेजनकात्मजे ॥ २ ॥ किंतुवक्ष्याम्यहंदेवित्वमेवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्यतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥ ३ ॥ तेचार्तादंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसीतेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥ ४ ॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफलाशनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणामुनयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥ अस्मानभ्यवपद्यैतेमामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषामेवंमुखाच्युतम् ॥ ७ ॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेह्रीरेषातुममातुला ॥ ८ ॥

दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रियलोग धनुष धारण करते हैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करतेहैं, परन्तु क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नरमांसभोजी तो होतेही हैं सो वैसे नरमांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गये हैं ॥६॥ उनसे बचेहुये दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तांत कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी [illegible] उनसे

बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्य हैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमने उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीने एकत्रहो मिल कर कहा राम! दंडकारण्यमें बहुसंख्याक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय कष्ट देना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये । हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आय २ कर हठसहित यज्ञविध्वंस करते और हमको सताते हैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महातपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपकी शरण लेतेहैं ।

यदीदृशैरहंविप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ किंकरोमीतिचमयाव्याहृतंद्विजसंनिधौ ॥९॥ सर्वैरेवंसमागम्यवागियंसमुदाहृता ॥ राक्षसैर्दंडकारण्येबहुभिः कामरूपिभिः ॥ १० ॥ अर्दिताःस्मभृशंरामभवान्नस्तत्ररक्षतु ॥ होमकालेतुसंप्राप्तेपर्वकालेषुचानघ ॥ ११ ॥ धर्षयंतिस्मदुर्धर्षाराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ राक्षसैर्धर्षितानांचतापसानांतपस्विनाम् ॥१२॥ गतिंमृगयमाणानांभवान्नःपरमागतिः ॥ कामंतपःप्रभावेणशक्ताहंतुंनिशाचरान् ॥१३॥ चिरार्जितंनचेच्छामस्तपःखंडयितुंवयम् ॥ बहुविघ्नंतपोनित्यंदुश्चरंचैवराघव ॥१४॥ तेनशापंनमुंचामोभक्ष्यमाणाश्चराक्षसैः ॥ तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दंडकारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ रक्षकस्त्वंसंचभ्रात्रात्वन्नाथाहिवयंवने ॥ मयाचैतद्वचःश्रुत्वाकात्स्न्र्येनपरिपालनम् ॥१६॥ ऋषीणांदंडकारण्येसंश्रुतंजनकात्मजे ॥ संश्रुत्यचनशक्ष्यामिजीवमानःप्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥

आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकते हैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता । हे रघुनन्दन ! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥ इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते, क्योंकि तपका फल शाप देनेसे नहीं रहता तिससे दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करैं क्योंकि आपही हमारे रक्षाकर्ता हैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि, आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करैंगे ॥ १६ ॥ हे जानकी ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की

है, सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एक तो ऋषिगणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम अभीष्ट है । फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकते हैं ? हे सीते ! तुम्हें, लक्ष्मणको और अपने प्राणको भी हम त्याग कर सकते हैं ॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिससे ऋषिलोगोंका पालन करना हमारा परम कार्य है ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहने पर भी जब कि, सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्य है, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यमे विमुखहों जो हो हे सीते ! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥ २० ॥ इससे हम बहुत सन्तुष्ट हैं, क्योंकि कोई भी कुप्यारे मनुष्यसे हित

मुनीनामन्यथाकर्तुंसत्यमिष्टंहिमेसदा ॥ अप्यहंजीवितंजह्यांत्वांवासीतेसलक्ष्मणाम् ॥ १८ ॥ नतुप्रतिज्ञांसंश्रुत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः ॥ तदव श्यंमयाकार्यमृषीणांपरिपालनम् ॥ १९ ॥ अनुक्तेनापिवैदेहिप्रतिज्ञायकथंपुनः ॥ ममस्नेहाच्चसौहार्दादिदमुक्तंत्वयावचः ॥ २० ॥ परितुष्टो स्म्यहंसीतेनह्यनिष्टोनुशास्यते ॥ सदृशंचानुरूपंचकुलस्यतवशोभने ॥ सधर्मचारिणीमेत्वंप्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ २१ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनं महात्मासीतांप्रियांमैथिलराजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनजगामरम्याणितपोवनानि ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ अग्रतःप्रययौरामःसीतामध्येसुशोभना ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्लक्ष्मणोनुजगामह ॥ १ ॥ तौपश्यमानौविविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानिच ॥ नदीश्चविविधारम्याजग्मतुःसहसीतया ॥ २ ॥ सारसांश्चक्रवाकांश्चनदीपुलिनचारिणः ॥ सरांसि चसपद्मानियुतानिजलजैःखगैः ॥ ३ ॥

कारी वचन नहीं कहता । हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके योग्य उचित वचनही कहे हैं तुम हमारी धर्मचारिणी हो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझते हैं ॥ २१ ॥ धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंने जानकीजीके सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाब आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और कमल [illegible] जल मरगारी

आदिकों करके युक्त सरोवर देखे ॥ ३ ॥ चीता, बाघ आदिकोंके झुण्डके झुण्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे उन्मद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥
देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचलसम्मुखीन हुए तब रामचन्द्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक
तालाब देखा ॥ ५ ॥ उस तालाबमें हाथियोंके झुण्डके झुण्ड नहा रहे, बहुत सारे लाल और श्वेत कमलफूल खिल रहे जलपक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥
और उसका जल अतिनिर्मल था श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण व जानकीजीने उस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना, परन्तु कोई गाने बजानेवाला दिखाई न
दिया ॥ ७ ॥ महारथी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्मभृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम

यूथबंधांश्चपृपतांमदोन्मत्तान्विपाणिनः ॥ महिषांश्चवराहांश्चगजांश्चद्रुमवैरिणः ॥ ४ ॥ तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥ ददृशुःसहिता
रम्यंतटाकंयोजनायतम् ॥ ५ ॥ पद्मपुष्करसंबाधंगजयूथैरलंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादंबैःसंकुलंजलजातिभिः ॥ ६ ॥ प्रसन्नसलिलेरम्येतस्मि
न्सरसिशुश्रुवे ॥ गीतवादित्रनिर्घोषोनतुकश्चनदृश्यते ॥ ७ ॥ ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ८ ॥
इदमत्यद्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥ ९ ॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसः
क्षिप्रमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसारामसुनिनामांडकर्णिना ॥ ११ ॥ सहितेपेतपस्ती
व्रंमांडकर्णिर्महामुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥ १२ ॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परस
मागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥ १४ ॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वेदेवैर्नियो
जिताः ॥ प्रधानाप्सरसःपंचविद्युच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥

सबकोही बडा कौतूहल हुआहै ! अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरो
वरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं । महर्षि माण्डक
र्णिने तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दशहजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे ॥ १२ ॥ इस तपस्यासे
इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहने लगे ॥ १३ ॥ यह ऋषि हममेंसे किसीका पद पानेके लिये तप कर
रहे हैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महाउद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंने मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाष.से, बिज

कीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयके जाननेवाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥ १६ ॥ ऋपिजीने उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके उनके लिये इस सरोवरमें न दीखने वाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथासुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋपिका मन मुदित करनेको उनके संग विहार करने लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महायशस्वी श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्पिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥

अप्सरोभिस्ततस्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥ १६ ॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाके निर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥ तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८ ॥ तासां संक्रीडमानानामेपवादित्रनिःस्वनः ॥ श्रूयतेभूपणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः ॥ १९ ॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभावितात्मनः ॥ राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥ २१ ॥ प्रविश्य सहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्याश्रममंडले ॥ २२ ॥ उपित्वासुसुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेपांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ येपामुपितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥ २४ ॥ क्वचिच्चतुरोमासान्पंचपट्चपरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥ त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्र संवसतस्तस्यमुनीनामाश्रमेपुवै ॥ २६ ॥

॥ २० ॥ और कैसे अचरजकी बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मीशोभासमन्वित आश्रममंडलको श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्राता लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वनशोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋपियोंने कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचन्द्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी २ से रामचन्द्रजी सबही ऋपियोंके आश्रमोंपर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्रवित् श्रीरामचन्द्रजी पहले जिनके आश्रममें बसेथे, उस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए । वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्षभर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं [illegible]

॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुखसहित रहे; उन आठ महीनेतक रहे कहीं इसमें न्यूनाधिक रहे ऐसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचन्द्रजी बसे ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी सीताके आश्रमोंमें बसते हुए ऋषिलोगोंकी अनुकूलतासे सीतासहित दश वर्ष श्रीरामचन्द्रजीने बितादिये ॥ २८ ॥ वहां पर शत्रुओंके मारनेवाले साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनिगणोंने उनकी बडी पूजाकी ॥२९॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए कि, हे भगवन्! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कुछकदिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमने बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अवतक न जानपाया कि उन महातपस्वीजीके रहनेका कौन वनहै ? ॥

रमन्धानुकूल्येनययुःसंवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्य मुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः ॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥ २९ ॥ उपासीनःस काकुत्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥३०॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशं वनस्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुजःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयमभि वादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेपहृदिसंपरिवर्तते ॥ ३३ ॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिःश्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेतिसीतयासहराघ व ॥ दिष्ट्यात्विदानीमर्थेस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्योमहामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिचत्वारि वैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥

॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजीका उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजी धर्मात्मा रामचन्द्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह कहनेवालेही थे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये सो बडे भाग्यकी बातहै कि, आपनेही अपने मुखसे यह वार्ता पूंछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी। महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बताते हैं,—हे तात। इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश

॥ १७ ॥

मार्ग चलें जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवेगा ॥ ३७ ॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समानहै यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहाहै और नाना भाँतिके पक्षी शब्द करतेहैं । ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहांपर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भाँतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥ ४१ ॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे,

स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्रसन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥ दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशेबहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशोबहुपादपसंयुतः ॥ ४२ ॥ यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेःश्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्य ॥ प्रतस्थेगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥ ४४ ॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥ ४७ ॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते ! यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाषहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करते हुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेके समय बहुतसारे विचित्र वन, बादलोंकी समान ऊँचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचन्द्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले हात्मा अगस्त्यऋषिके भ्राताका यह आश्र [illegible]

से मुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमने देखे हैं ॥ ४८ ॥ यह देखो पके हुए पिप्पलीके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान २ में इक ट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैडूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां देख पडते हैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा, कृष्णमेघयुक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥ ५१ ॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुए फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे सौम्य ! महर्षिसुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण किया था उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि, यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै ॥ ५३ ॥ जिन महर्षिअगस्त्यजीने सब लोकोंको हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस

पिप्पलीनांचपक्वानांवनादस्मादुपागतः ॥ गंधोयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥४९॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्चपरिदृश्यंतेदर्भावैदूर्यवर्चसः ॥ ५० ॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥ विविक्तेषुचतीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुष्पोपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥ ५२ ॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रातुर्नूनमेषभविष्यति ॥ ५३ ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्शरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ५४ ॥ इहैकदाकिलक्रूरोवातापिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥ ५५ ॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमुद्दिश्यनिर्घृणः ॥ ॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७ ॥ ततोभुक्तवतांतेषांविप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥ ५८ ॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणिब्राह्मणानांविनिष्पतत् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

दक्षिण दिशाकोभी सबके बसने योग्य कियाहै ॥ ५४ ॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन दोनोंमेंसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करे ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे 'रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८ ॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फाड २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले मांस

भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने देवताओंकी प्रार्थनाके वश हो श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया, ऐसी बात प्रसिद्ध है ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेके लिये जल दे "वातापि! बाहर निकल आओ" यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥ ६२ ॥ जब इल्वलने बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥ ६३ ॥ हमने तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला; वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसे बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्ता सुन करके क्रोधयुक्तहो महर्षिअगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ ॥ ६५ ॥ जैसेही यह मारनेको दौडा कि महर्षिजीने प्रज्वलित अग्निके समान दृष्टिसे एक बार देख दिया, बस देखने मात्रसेही वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥ ६६ ॥

अगस्त्येनतदादेवैःप्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥६१॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वाहस्तेवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिइल्वलःसमभाषत ॥ ६२ ॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६३ ॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्ययमसादनम् ॥ ६४ ॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥६५॥ सोभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुपानलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्तटाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोभ्यवर्तत ॥ ॥ ६८ ॥ उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तुमुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥ ७० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यआमंत्रयतराघवः ॥ ७१ ॥

जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रम है ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहे कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या होआई ॥ ६८ ॥ श्रीरामचंद्रजीने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया ॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥ ॥ ७० ॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये त

अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बड़े भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन कर
कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करते हैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि विताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन कर
नेको हमारी अभिलाषा हुई है॥७२॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्णमुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥७३॥ जानेके
समय वनके मध्यमें नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरविल्व (नक्तमाल) मधूक, वेल ॥ ७४ ॥ तिन्दुक इत्यादि परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित
सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीने देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानर
गणोंके निकट रहनेसे वहां अतिशय शोभा होरही, और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट रहीथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीवलोचन

अभिवादयेत्वाभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम् ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥
यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥ ७३ ॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिविल्वान्मधूकांश्चविल्वानथचतिंदु
कान् ॥ ७४ ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५ ॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरु
पशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोऽब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिव
र्धनम् ॥ ७७ ॥ स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥ ७८ ॥ अगस्त्यइतिविख्यातोलोके
स्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिना
दितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिक्कृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यरा
क्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥

श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देते हैं और मृगगण जैसे
शान्तचित्त दृष्टि आते हैं सो इन सब बातोंसे ज्ञात होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहीं है ॥ ७८ ॥ जिन्होंने अनेक कर्म
द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्यनाम पाया है, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुआँ वनमें छाय
रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूमरहे हैं । अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनु
ष्योंका हित करनेकी कामनासे बलसहित मृत्यु और असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥ ८१ ॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोक

त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाकी ओर केवल देखते और आते तो हैं परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्यकर्म करनेवाले महर्षि
आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीने जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचरलोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवा-
अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिकनामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगई है और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेसे यह दिश
मुनिलोगोंके वास करने योग्य होगई है ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रतिपालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरंत-
नहीं बढता ॥ ८५ ॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै ॥ ८६ ॥ जब ि

यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथिता
त्रिपुलोकेपुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥ अयंदीर्घायु
पस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसाधुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतः
नेपश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसग-
धर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनियताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेष
तथाविधः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥

हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधुलोगोंका हित चाहनेवाले साधु चारित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जायँगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥
॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८ ॥ इस आश्रममें देवता
गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए, महर्षि लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि
इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ, दुष्ट, निर्लज्ज, पापपरायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रहसकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग, और

❀ एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचलपर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि, आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देख कर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ ? अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तबतक तुम योंहीं पडे रहो, विन्ध्यने तथास्तु कहा, तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहने लगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरुआज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

ऋषीगण धर्मकी आराधना करनेके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ११ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन देह धा...
कर सूर्यतुल्य देदीप्यमान विमानमें सवार हो स्वर्गको गये हैं ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहते हैं वह देवताओंकी उपा...
करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥१३॥ हे सुमित्राकुमार! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचे हैं। तुम पहले प्रवेश क...
उन मुनिसे यह निवेदन करदो कि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आये हैं॥१४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकादशः सर्गः॥ ११ ॥
ऐसा जब रामचन्द्रजीने कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दश...
जीके यह पुत्र महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आये हैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उ...

अत्रसिद्धामहात्मानोविमानैःसूर्यसंनिभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः॥१२॥यक्षत्वममरत्वंचराज्यानि विविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्र...
च्छंतिभूतेराराधिताःशुभैः ॥१३॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया॥१४॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आ०
अर० एकादशःसर्गः॥११॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्य
सुतोबली ॥ रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया ॥ २ ॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥
तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वा...
शरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥ सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्यो...
गस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥८॥

हितकारी,परमभक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाईहैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आ...
अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाषा हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥ ४ ॥
वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्र...
करता हुआ ॥ ५ ॥ और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शि...
लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुत...

त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाकी ओर केवल देखते और आते तो हैं परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्यकर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह
श्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीने जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचरलोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान
स्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा आगस्त्यादिकनामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगई है और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेसे यह दिशा
गोंके वास करने योग्य होगई है ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रतिपालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरंत-
बढता ॥ ८५ ॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै ॥ ८६ ॥ जब वि

...दाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥ नाम्नाचयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथिता
त्रिपुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥ अयंदीर्घायु
स्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसाधुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगता
नेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्साम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगं
...द्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनियताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसःपापवृत्तोवामुनिरेष
...०॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥

...लोकोंका हित चाहनेवाले साधु चारित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जायँगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥
...र्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८ ॥ इस आश्रममें देवता
...जीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि
...हुआ नहीं रहसकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग, और

...गस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि, आप अपने शिष्यको
...कीजिये कैसे आगमन हुआ ? अगस्त्यजी
...रहाहै ॥

महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन

वास करते है ॥ ११ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन ... उपासना

…षीगण धर्मकी आराधना करनेके लिये नियताहारी होकर वास करते है ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहते हैं वह देवताओंकी उपासना

…र सूर्यतुल्य देदीप्यमान विमानमें सवार हो स्वर्गको गये हैं ॥ १२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहते हैं वह … तुम पहले प्रवेश करके

…रके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥१३॥ हे सुमित्राकुमार! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचे हैं। तुम पहले प्रवेश करके

…न मुनिसे यह निवेदन करदो कि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आये हैं॥१४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकादशः सर्गः॥ ११॥

…सा जब रामचन्द्रजीने कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथ

…जीके बडे पुत्र महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आये हैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके

अत्रसिद्धामहात्मानोविमानैःसूर्यसंनिभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः॥१२॥यक्षत्वममरत्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्रदेवाःप्रय

…च्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥१३॥ आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया॥१४॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी आ०

अर० एकादशःसर्गः॥११॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥१॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्य

सुतोबली ॥ रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया ॥ २ ॥ लक्ष्मणोनामतस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥

तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्नि

शरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥ सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योऽ

गस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥८॥

…हितकारी परमभक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाईहैं सो कदाचित् आपने हमारी वार्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे

…भयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाषा हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥ ४ ॥

… लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कह कर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश

… ॥ ५ ॥ और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य

… कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन

आपकी सेवा करने व देखनेके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन
सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकोभी आगमनकी वार्त्ता सुन करके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचन्द्रजी हमा
दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समागमकी आकांक्षा कीथी तिससे आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री
सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अबतक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीने इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥
तो शिष्य कर जोड कर जो आज्ञा अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १३ ॥ आपमें राम

वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्या
यद्यानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्या
द्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥१०॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति ॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ११ ॥ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयं
नप्रवेशितः॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना॥१२॥अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥ तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवी
त्॥१३॥कोसौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम्॥ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः॥१४॥दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम् ॥ तंशि
ष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन् ॥१५॥ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम्॥प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः ॥१६॥ प्रशांतहरिणा
कीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन् ॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच ॥१७॥ विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥सोमस्थानंभगस्थानंस्थानं
कौबेरमेवच ॥१८॥ धातुर्विधातुःस्थानंचवायोःस्थानंतथैवच॥स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥१९॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थान
मेवच॥स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच॥२०॥कार्त्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति॥ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत् ॥२१॥

कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करैं अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे ॥ १४ ॥ उन्हें
उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखादिया, उस शिष्यने बड़ी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचन्द्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा
नियम भलीभांति आदर सत्कार करके श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीराम
चन्द्रजीने देखा कि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥ १७ ॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त
महात्मा वरुण ॥ १९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी आदि सर्प, गरुड ॥ ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान देखे

हुए एक २ करके श्रीरामचन्द्रजीने देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलते हैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तपःप्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी कुटीसे बाहर आयेहुए सूर्यके समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने आदरसहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मँगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमति दी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीने अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके

तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसम् ॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ वहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥२४॥ अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः ॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोब्रवीत् ॥२६॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥२७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्मकोविदम् ॥२८॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥२९॥ राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥३०॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैःपुष्पैश्चान्यैश्चराघवम्॥ पूजयित्वायथाकामंततोगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

अनुसार आहार करनेकी सामग्री दी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठेहुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करै तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहै ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिसपर आपने प्रिय अतिथिकी भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहै । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचन्द्रजीकी पूजा करके फिर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और

वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यके समान प्रभावसम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दी हैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निबडते हमको दिये हैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निके समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोशबद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दिये हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुषकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदान कीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद! वज्रधर इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र धारण करते हैं, तुमभी तैसेही पवित्रयश प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महातेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापण्डित प्रवीण रामचन्द्रजीको

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममममहेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥३३॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिवपावकैः ॥ महाराजतकोशो यमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥ अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान् ॥ आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५ ॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरं खड्गंचमानदः ॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा ॥३६॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्त्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थः सहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥ यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्री णामासृष्टेरघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥

वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीतासहित हमको प्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि, मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको महाकष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं, इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको [illegible]

...टीका मन जिनके समान रहे वही मनुष्य ... जाहिये, क्योंकि ...

...भी दृष्टि से स्त्रियें ... धनवान् पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता,
...भूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रियोंका स्वभावही ऐसा है कि, धनवान् पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥ यह देवताओंके
शस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥६॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमेंसे कोई भी दोष नहीं है। यह देवताओंके
बीचमें अरुन्धतीकी समान प्रशंसनीय और कीर्तिमती हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश
शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे
कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥
जिसमें आज्ञा कीजिये कि, ऐसा कोई स्थान है जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त होजाया करे और वहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दता

शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांयथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याच
व्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यसित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनि
नारामः संयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नः
परितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्य
भाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततोवाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥ इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्यभिविश्रु
तः ॥ १३ ॥ तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥ विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥
तपसश्चप्रभावेणस्नेहाद्दशरथस्यच ॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेछंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥

से वास करें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा मुनिवर मुहूर्तभरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ हे वत्स ! इस स्थानसे
आठ कोसके अन्तरपर पंचवटी नामक विख्यात एक अतिसुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां
वास करते हैं ॥ १३ ॥ तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जाओ और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो ॥ १४ ॥ हे पापरहित !
हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तांत जानतेहैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त
जाननेकी क्या आवश्यकताथी ॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि, आपके मनमें क्याहै जो कि यह प्रतिज्ञा करके हमारे निकट आप वसें

यत्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यके समान प्रभावसम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दी हैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दिये हैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निके समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोशवद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दिये हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुषकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदान कीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद! वज्रधर इन्द्रजी जिसप्रकार वज्र धारण करते हैं, तुमभी तैसेही पवित्रयश प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ महा तेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापण्डित प्रवीण रामचन्द्रजीको

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोममहेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥३३॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिवपावकैः ॥ महाराजतकोशोयमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥ अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान् ॥ आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५ ॥ तद्धनुस्तौचतूणीचशरंखड्गंचमानदः ॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा ॥३६॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्त्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आं० अरण्यकांडे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥ अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥ एषाचसुकुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥ यथैषारमतेरामइहसीतातथाकुरु ॥ दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वामभिगच्छती ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टेरघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥

यह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! तुम जो सीतासहित हमको प्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि, मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको महाकष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं, इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस बडे कष्ट देनेवाले वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंने बडा दुष्कर कार्य [illegible]

करती है ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता,
स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रियोंका स्वभावही ऐसा है कि, धनवान् पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्रको त्याग करती है ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता,
अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥६॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमेंसे कोई भी दोष नहीं है । यह देवताओंके
बीचमें अरुन्धतीकी समान प्रशंसनीय और कीर्तिमती हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश
शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे
कहा ॥९॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥
जिसमें आज्ञा कीजिये कि, ऐसा कोई स्थान है जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त होजाया करे और वहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दता

शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांयथा ॥ गरुडानिलयोःशैघ्र्यमनुगच्छंतियोषितः ॥ ६ ॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता ॥ श्लाघ्याच
व्यपदेश्याचयथादेवेष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह ॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यसित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनि
नारामःसंयतांजलिः ॥ उवाचप्रश्रितंवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नः
परितुष्यति ॥ १० ॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वारामस्य
भाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततोवाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥ इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्यभिविश्रु
तः ॥ १३ ॥ तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह ॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥ १४ ॥ विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥
तपसश्चप्रभावेणस्नेहाद्दशरथस्यच ॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेछंदोविज्ञातंतपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥ १६ ॥

से वास करें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा मुनिवर मुहूर्तभरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ हे वत्स ! इस स्थानसे
आठ कोशके अन्तरपर पंचवटी नामक विख्यात एक अतिसुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां
वास करते हैं ॥ १३ ॥ तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जाओ और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो ॥ १४ ॥ हे पापरहित !
हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तांत जानतेहैं कारण, दशरथजीका हमसे बडा स्नेहथा नहीं तो ऐसे वृत्तान्त
जाननेकी क्या आवश्यकताथी ॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि, आपके मनमें क्याहै जो कि यह प्रतिज्ञा करके हमारे निकट आप बसेंगे

और फिर आप रामस्थान की बातें क्यों पूछतेहैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आ सकते आप उनको मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥ १६ ॥ इसी कारण हम कहते हैं कि, तुम पंचवटीको चले जाओ, वह वनैला देश अति रमणीय है वहां सीताके मनकोभी सन्तोप होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेके योग्य है, और बहुत दूरभी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेशदुलारी वहांपर प्रसन्न होकर रहेंगी ॥ ॥ १८ ॥ हे महाबाहो! वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीयहै ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षा कार्य करनेमें समर्थहो उस स्थानमें वास करके तपस्वी लोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥ हे वीर ! यह जो जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध वृक्षोंका वन प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ तिसके पीछे विशेप स्थानपर पहुँच

अतश्चत्वामहंब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोदेशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १७ ॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥ गोदावर्याः समीपेनमैथिलीतत्ररंस्यते ॥ १८ ॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारःशक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्रामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥ एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यगंतव्यंन्यग्रोधमपिगच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृपिंसत्यवादिनम् ॥२३॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीतया ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविपक्ततूणीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्पिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

तेने तुमको एकपर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूरही विख्यात पंचवटीका वन है वह सदाही फूला फला रहता है ॥ २२ ॥ श्री अगस्त्यजीके ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित सत्यवादी ऋपिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगतेहुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करके सीताजीके साथ पंचवटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुप धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीने जो मार्ग बता दियाथा अतिसावधानीसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान् महाशरीरवाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझकर उससे पूछने लगे कि, तुम कौनहो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे उनको प्रसन्न करके बोला, कि—हे वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए प्रेमभावसे उसका कुल और नाम पूँछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्तिके वर्णनका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहने लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो! हे राघव! पूर्वकालमें जो कि, प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्दम उन सबमें बडेथे उनके पीछे विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान्, बहुपुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरीचि, अत्रि, महाबलवान् क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्षप्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुईं ॥ १० ॥ उनमें अतिसुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु व अनला; विवाह होजाने पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्षकन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि, तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण पोषण करनेवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥ १३ ॥

अथपंचवटींगच्छन्नंतराराघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति॥२॥ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः ॥३॥ सतंपितृसखंमत्वापूजयामासराघवः॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मानमेवच ॥ आचचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम्॥५॥पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोऽभवन् ॥ तान्मेनिगदतःसर्वानादितःशृणुराघव॥६॥कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम् ॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान्॥७॥ स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥ ८ ॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्चराघव ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः॥९॥प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः ॥ षष्टिर्दुहितरोरामयशस्विन्योमहायशः ॥१०॥ कश्यपःप्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः ॥ अदितिंचदितिंचैवदनूमपिचकालकाम् ॥ ११ ॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंचाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततःप्रीतःकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेके लिये अभिलाषिनी हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनीकुमार उपजे । और दितिने भी वडे यशस्वी दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्रसहित यह पृथ्वी उनहीकी थी । हे अरिन्दम ! दनुने अश्वग्रीवनामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकाने नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौंची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोकविख्यात पांच कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्रीसे सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीने उत्पन्न किया, शुकीके

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥१४॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्वजनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकंचैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौंचींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौंचीभासीभासान्व्यजायत ॥१८॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥१९॥ चक्रवाकांश्चभद्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभद्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥ अपत्यंतुमृगाःसर्वेमृग्यानरवरोत्तम ॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा ॥ २३ ॥ ततस्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम् ॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः ॥ २४ ॥ हर्यांश्चहरयोपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥ २५ ॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजांस्तुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान् ॥ २६ ॥

नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥२०॥ हे राम ! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यहहैं यथा—मृगी, मृगमंदा, हरी, भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं ॥ २२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! समस्त मृग मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृगमन्दाके जन्मे ॥ २३ ॥ भद्रमदाने इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महागज ऐरावत हुआ ॥ २४ ॥ सिंह वानर और गोपुच्छगण हरीके उत्पन्न हुए, शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया ॥ २५ ॥ हे पुरुषवर श्रीरामचंद्रजी ! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए । श्वेताने

दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ सुरभीके दो कन्या हुई, यशस्विनी–रोहिणी और गन्धर्वी ॥ २७ ॥ रोहिणीने
उत्पन्न किया. हे राम ! सुरसाने नागोंको उत्पन्न किया, और कद्रूके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र
यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आती है कि, मुखसे ब्राह्मण वक्षःस्थलसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥
अनलाने सब श्रेष्ठ फलयुक्त वृक्ष जने, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रू सुरसाकी कन्या बहन हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रूने सहस्रों नागपुत्र उत्पन्न किये यही सब
पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनहीं गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे भाई हैं ! हे अरिनाशक !

तनोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत ॥ रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वींचयशस्विनीम् ॥ २७ ॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान् ॥ सुरसाजन
यन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान् ॥ २८ ॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥ २९ ॥ मुख
तोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्रियास्तथा ॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः ॥ ३० ॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनता
चशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा ॥ ३१ ॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२ ॥ तस्माज्जातोह
मरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम ॥ ३३ ॥ सोहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचतातरक्षिष्येत्व
यियातेसलक्ष्मणे ॥३४॥ जटायुषंतुप्रतिपूज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोभवत् ॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवाञ्जटायुषासंकथितंपुनःपुनः ॥
॥ ३५ ॥ सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपालयन् ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे
श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ ततःपंचवटींगत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात ! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी वनमें वसनेके समय सहायता करें और जब तुम
लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसका
पूजाकर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उसे जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥ फिर वह बलवान् जटायुके
हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथ ले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्वा० रा० आ० आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेज

प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको बताया था अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगये हैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम भलीभाँति चतुरहो तिससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि, कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बन सकताहै ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रह सकें और जलभी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोडकर सीताजीके सामने रामचन्द्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब ! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहीं हैं न कुछ विचारही सकतेहैं और हमारा विचार ठीक भी नहीं है तिससे अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको यहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये

आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतरस्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥ वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसंयताञ्जलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशःसमःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्या पद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥ हंसकारंडवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ महाद्युतिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचारकरके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था यहां श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न है भूमि यहांकी बराबर है और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआ है तिससे तुम इस स्थानमें योग्य पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यके समान उज्ज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही हैं ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरही है ॥ ११ ॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिसप्रकार कहा था यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥ १२ ॥ यहां हंस और कारंडव [illegible]

यह नदी न यहांसे बडी दूर है न बहुत निकटही है मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहे हैं ॥ १३ ॥ खिले हुये वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कररहे हैं
गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देते हैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडोंके स्थान २ सुवर्ण चांदी और
वर्णकी विचित्र रचनासे मंजेहुए हाथियोंके समान शोभा पा रहे हैं ॥ १५ ॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार तिनिश, पुन्नागसे शोभित ॥ १६
आम, अशोक, तिलक, केतकी और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभायमान ॥ १७ ॥ स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लकुच, धव, अश्वकर्ण,
शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसे भी घिरे हुए हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग, और पक्षियोंसे

मयूरनादितारम्याःप्रांशवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥ गवाक्षिताः
शाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैवपुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥ १६ ॥ चूतैरशोकैः
स्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥ १७ ॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमी
किंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृगद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपर
रहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातुश्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभनाम् ॥
॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥ समीकृततलांरम्यांचकारसुमहा
बलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमान्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥२४॥

पूर्ण है, सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीराम चन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके
परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर खंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥
उन खिरके बांसोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, काश, और शरपत्रसे
भांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बत्तियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके
रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥२४॥

। लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगये आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम भलीभाँति चतुरहो तिससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि, कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बन है ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रह सकें और जलभी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥ ४ ॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोडकर सीताजीके सामने रामचन्द्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब ! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्षतकभी स्वाधीन नहीं हैं न कुछ विचारही सकतेहैं और हमारा विचार ठीक भी नहीं है तिससे अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये

आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥ २ ॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतरस्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशोदृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥ वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥ ५ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसंयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥ ७ ॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशःसमःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्या पद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥ हंसकारंडवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ महाद्युतिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचारकरके सर्व गुणों करके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था वहां श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न है भूमि यहांकी बराबर है और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआ है तिससे तुम इस स्थानमें योग्य पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यके समान उज्ज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही हैं ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरही है ॥ ११ ॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिसप्रकार कहा था यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥ १२ ॥ यहां हंस और कारंडव बोल रहे हैं [illegible]

यह नदी न यहांसे बडी दूर है न बहुत निकटही है मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहे हैं ॥ १३ ॥ खिले हुये वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कररहे हैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देते हैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडोंके स्थान २ सुवर्ण चांदी और ताम्र वर्णकी विचित्र रचनासे सजेहुए हाथियोंके समान शोभा पा रहे हैं ॥ १५ ॥ साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, निवार तिनिश, पुन्नागसे शोभित ॥ १६ ॥ आम, अशोक, तिलक, केतकी और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभायमान ॥ १७ ॥ स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसे भी घिरे हुए हैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग, और पक्षियोंसे परि

मयूरनादितारम्याःप्रांशवोबहुकंदराः ॥ दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥ १४ ॥ सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः ॥ गवाक्षिताइवाभांतिगजाःपरमभक्तिभिः ॥ १५ ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः ॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैवपुन्नागैश्चोपशोभिताः ॥ १६ ॥ चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥ १७ ॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८ ॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृगद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातुश्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभनाम् ॥ ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥ २२ ॥ समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सगत्वालक्ष्मणःश्रीमान्नदींगोदावरींतदा ॥ स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥२४॥

पूर्ण है, सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीराम चन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर खंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे बांसोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, काश, और शरपत्रसे भली भांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर शमीकी डालियोंकी बत्तियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥२४॥

फिर लक्ष्मणजीने फूलोंसे यथाविधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई यह शुभदर्शन कुटी देखकर परमप्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाँहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्यकरनेमें चतुर ! हम तुम पर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमने यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको पुरस्कार देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमने तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननेवाले, उपकार माननेवाले, और धर्मके जाननेवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुख भोगमय बहुत

ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥ दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥२५॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमाहारयत्परम् ॥ २६ ॥ सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥ प्रीतोस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥२८॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञेनचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्देशेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥ ३०॥ कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वःकलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥ पृष्ठतोनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥

फल युक्त उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥ ३० ॥ वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आर०भाषाटीकायां पंचदशः सर्गः ॥१५॥ महात्मा रामचन्द्रजीके वहां सुखसे वास करते २ शरत्काल बीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥१॥ एक समय रात्रि बीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥२॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रतासे बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्याराहै, यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ संवत्सर मानो सजकरही मनोहर हुआहै ॥ ४ ॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके

शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनु
गण नये अनाजसे देवता और पितरोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवसस्य निमित्त यज्ञ करते हुए निष्पाप हुए हैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु, दही,
गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै, इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेके लिये यात्रा करते हैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवान्‌का अ
अनुराग होनेसे उत्तर दिशा तिलकहीन स्त्रीकी नाई शोभारहित होगईहै ॥ ८ ॥ एक तो हिमालयपर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उ
बहुत दूर होगये हैं; तिससे हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे
होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेवाले, और छाया तथा जल एकबारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहलासा तेज नह

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥ ६ ॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिमहीप
लायात्रार्थंविजिगीषवः ॥७॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥८॥ प्रकृत्याहिमकोशाढ्योदूरसूर्यः
श्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामासुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥९॥ अत्यंतसुखसंचारामध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छायासलिल
भगाः ॥१०॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमाहिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥११॥ निवृत्ताकाशशयनाःपुष्यनीता
मारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥ १२ ॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्शश्चंद्रमानप्रकाशते ।
॥१३॥ ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥१४॥ प्रकृत्याशीतलस्पर्शोहिमविद्धश्चसांप्रतम् ।
प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सबही वन सूनेसे जान पडते हैं प्रभातक
हिमग्रस्त होकर प्रकाशित होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्यमासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंकी रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सो
जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडता है ॥ १२ ॥ जिसप्रकार श्वासकी वाफ लगनेसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य
समय सूर्यसे दबजाने और बर्फके द्वारा किरणोंके ढक जाने और धूसरवर्ण होजानेसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाश नहीं है ॥ १३ ॥ तुषार करके मलीन होनेसे
दनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै, जैसे सीताजी धूमके लगनेसे श्याम होगई हैं और शोभित नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता

पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चलरहा है ॥ १५ ॥ यव और गेहुँओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडीहुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालिसमूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरीहुई बालोंके लगनेसे कुछएक झुकेहुए विराजरहे हैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाके समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं क्योंकि इधर उधर फैलीहुई उनकी किरणें पालेसे ढक रही हैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होताहै और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूँदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहैं उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वनभूमिकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूँड खैंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आ

वाष्पछन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमप्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥१८॥ आग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्ने मध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तःकिंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥ २० ॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृपितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः ॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥ २२ ॥ अवश्यायतमोनद्धानीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥ वाष्पसंछन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैःसरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥ २५ ॥ जराजर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः ॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥

दमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठ रहकरभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वन श्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढकजाने, और प्रभातको कुहरके अँधेरेसे छिप जानेपर ऐसी लगतीहै मानों सोय रहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी गई हैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेसे गीला होरहाहै, और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुई हैं ॥ २४ ॥ बर्फके [illegible]रने और सूर्यका तेज मंद होनेसे, शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ठ होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेसे पत्तोंके गिर जाने [illegible]र पँखुडियोंके टूट जाने व हिमग्रस्त होजानेसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गई है अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते होंगे ॥२७॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रतिदिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमार हैं और परमसुखसे पलकर इतने बडे हुए हैं। सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे? ॥ ३० ॥ आर्य ! वह कमलनेत्र, श्यामवर्ण, बडाई करके युक्त शोभावान्, सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, श्रीमान, परस्त्रीविमुख, जितेन्द्रिय ॥ ३१ ॥ प्रियवचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील

अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८ ॥ सोपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥ २९ ॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥ प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः ॥ ३२ ॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रात्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्ततेमातृकंद्विपदाइति ॥ ख्यातोलोकप्रवादोयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशीक्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्ब्रुवतिधार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥

श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन्! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आती है कि, मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन् माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीने इस कहावतके विरुद्ध कर दिखाया, क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहीं है ॥ ॥ ३४ ॥ परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर बुद्धिवाली हुई? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीने जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहतेहुए कहने लगे ॥ ३६ ॥

ादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चलरहा है ॥ १५ ॥ यव और गेहुँओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडीहुई ऐसे समस्त वन सूर्यके
य होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करते हैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालिसमूह खजूरके फूलकी समान
ूल भरीहुई बालोंके लगनेसे कुछएक झुकेहुए विराजरहे हैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाके समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं
कि इधर उधर फैलीहुई उनकी किरणें पालेसे ढक रही हैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होताहै
ी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूँदोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरहीहैं उस घासपर सूर्यकी
ाभमिकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूँड खेंच लेताहै ॥ २१ ॥ डरपोक आ

गोधूमवंतिच ॥ शोभंतेभ्युदितेसूर्येनदद्भिःक्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिं
॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमप्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥१८॥ आग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णे
ाप:शोभतेक्षितौ ॥ १९ ॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ॥ वनानांशोभतेभूमिर्नि
॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥ २१ ॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाज
ीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥
॥ नपारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच ॥
॥ २८ ॥

वार्ता कहनेमें लगेहुये हैं कि, इतनेहीमें कोई राक्षसी अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहन थी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसने देखा कि, रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तिमान है, बाँहें घुटनोंतक आती हैं, दोनों नेत्र कमलदलकी समान बडे हैं, चाल हाथीकी समान है, शिरपर जटा धारण किये हुये हैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अतिकोमल हैं, बल विक्रम अपार है, शरीर राज लक्षणों करके युक्त है, वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लियेहुये है, कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीराम चन्द्रजीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदनमण्डल श्रेष्ठ था, राक्षसीका मुख खराब था. रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसीकी आंखे अति बुरी थीं. रामचन्द्रके अतिश्रेष्ठ घूँघरवाले बाल थे

सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः ॥ भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥ ६ ॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनं जटामंडलधारिणम् ॥ ७ ॥ सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम् ॥ राममिंदीवरश्यामंकंदर्पसदृशप्रभम् ॥ ८ ॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता ॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥ ९ ॥ विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा ॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥ १० ॥ तरुणं दारुणावृद्धादक्षिणंवामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना ॥ ११ ॥ शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत् ॥ जटीतापसवेषेणसभार्यः शरचापधृक् ॥ १२ ॥ आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम् ॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ १४ ॥ आसीद्दशरथोनामराजात्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ १५ ॥

और राक्षसीके केश ताम्रवर्ण थे. श्रीरामचन्द्रजी प्रिय रूपवान् और राक्षसी महाभयानक रूपथी. श्रीरामचन्द्रजीका अतिमधुर स्वर था और राक्षसीका स्वर नितान्तकर्कश भीषण और भयंकर था ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी युवा थे, व राक्षसी महावृद्धा थी. श्रीरामचन्द्रजी अतिमधुर वचन बोलनेवाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी. श्रीरामचन्द्रजी न्यायवृत्त और राक्षसी दुर्वृत्ता थी. श्रीरामचन्द्रजी देखनेमें जैसे प्यारे थे, वह राक्षसी देखनेमें वैसीही कुप्यारी थी ॥ ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोली कि, तुम जटा रखाये तपस्वीका वेश धारे धनुष वाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे सेवित दिशामें आयेहो तुम्हारे यहांपर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपातेहुए सब वर्णन करनेलगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि, देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक

हे भइया ! मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो, तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका वखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुईहै, तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगई है ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नाईं सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता बार २ हमारे मनमें स्मरण हो रही है ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि, कितने दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्न जीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ॥ ४० ॥ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुँचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबने गोदावरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥

नतेऽम्बामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥ ३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढव्रता॥ भरतस्नेहसंतप्तावालिशीक्रियतेपुनः ॥३८॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥३९॥ कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४०॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरींनदीम्॥चक्रेभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया ॥४१॥ तर्पयित्वाथसलिलैस्तैःपितॄन्देवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथानघाः ॥४२॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम्॥१॥ आश्रमंतदुपागम्यराघवःसहलक्ष्मणः॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत्॥ २ ॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥३॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव॥लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकारविविधाःकथाः ॥४॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥५॥

भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दीके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीने भी वैसेही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि०,आर० भा.टी. षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनोंजन स्नान करके गोदावरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममें पहुँचकर लक्ष्मणजीके साथ प्रथमकालकी सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगोंसे पूजे जाकर वहां सुखसे वास करने लगे, उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी, चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमाकी समान शोभा पाने लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा

हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती कराला और नतोदरी सीताको भक्षण करजाँयगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोगमें तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृंगोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥२९॥इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकाण्डेभाषाटीकायां सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी ! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्री हैं । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥२॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सचारित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रिय दर्शनहैं। इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके

इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सह मयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥२९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽरण्यकांडे सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥ अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थीतरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥७॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः॥ततःशूर्पनखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥८॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥

निकट स्त्री नहीं है अथवा इन्होंने स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिससे यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिसप्रकार सुमेरुकी भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौतरहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहने लगी ॥ ६ ॥ मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उससे यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णिनि ! हम दासहैं फिर किस

राजा थे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मण है, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भाताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेके कारण वनमें वास करनेके लिये हम इस स्थानमें आये हैं ॥ १७ ॥ इससमय यह हमारी इच्छा तुमको जाननेकी हुई है, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो? हमें तो ऐसा जान पडता है कि, तुम राक्षसोंका मन मोहने वाली राक्षसी हो ॥ १८ ॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य कहो? यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥ २० ॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करती हैं, हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने इसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा ॥ २१ ॥ हमारे और दो

भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः ॥ इयंभार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता ॥१६॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षी चवनंवस्तुमिहागतः ॥ १७ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे ॥ १८ ॥ इहवाकिंनिमित्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥ १९ ॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम ॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसी कामरूपिणी ॥ २० ॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा ॥ रावणोनाममेभ्रातायदितेश्रोत्रमागतः ॥ २१ ॥ प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः ॥ विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः ॥ २२ ॥ प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ ॥ २३ ॥ तानहंसमतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात् ॥ समुपेतास्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिरायभवभर्तामेसीतयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताचविरूपाचनचेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥

भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै, कुम्भकर्ण अति बलवान्है और सदा सोताही रहता है, और विभीषण परमधार्मिक है राक्षसोंके चारित्र उसमें नहीं हैं ॥ २२ ॥ खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान् और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी! तुमको प्रथम देखतेही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेके लिये यहां आई हैं ॥ २४ ॥ हममें बडा पराक्रमहै, और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं। सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी होना। इस सीताको लेकर क्या करोगे ॥ २५ ॥ यह सीता विरूपाकार और कुरूपाहै, किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहीं है हमको देखो, हमहीं रूपके हेतु तुम्हारी भार्या बननेके योग्य हैं ॥ २६ ॥

हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती कराला और नतोदरी सीताको भक्षण करजाँयगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोगमें तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृंगोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले॥२९॥इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकाण्डेभाषाटीकायां सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी ! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्री हैं । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥२॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सचारित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रिय दर्शनहैं। इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतदार इनके

इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सह मयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥२९ ॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येऽरण्यकांडे सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥ अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थीतरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥७॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः॥ततःशूर्पनखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥८॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥

निकट स्त्री नहीं हैं अथवा इन्होंने स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥३॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिससे यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली ! सूर्यकी प्रभा जिसप्रकार सुमेरुकी भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौतरहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहने लगी ॥ ६ ॥ मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उससे यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णिनि ! हम दासहैं फिर किस

कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेकी अभिलाषिणी हुईहो ? हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली ! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता होकर सर्वभावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी स्त्री बनो. क्योंकि उनसे विवाह करनेमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी । उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलताहुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती, (वा जिनके सामने और कोई सती नहीं) भय उपजानेवाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥ ११ ॥ अयि वरवर्णिनि ! अयि वरारोहे ! कौन चतुर पुरुष है जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तौ बडे पेटवाली सब लोकोंको डरावनेवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीता

समृद्धार्थस्यसिद्धार्थामुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥ १० ॥ एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यां वृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥ ११ ॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्यज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः ॥ १२ ॥ इतिसाल क्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी ॥ मन्यतेतद्वचःसत्यंपरिहासाविचक्षणा ॥ १३ ॥ सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सीतयासहदुर्धर्षमब्रवी त्काममोहिता ॥ १४ ॥ इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥ १५ ॥ अद्येमांभक्षयिष्यामिपश्य तस्तवमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्का रोहिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामःकुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥ क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासः कथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥

जीके साथ बैठेहुये. शत्रुओंके तपानेवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामने ही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करैंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करैंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महाक्रोधमें भरकर हरिणके बचोंकी समान नेत्रवाली सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूरस्वभाववाले दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति

होनेमेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआ है ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २० ॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामचंद्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधित हो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥ २१ ॥ नाक कान कटाये हुवे घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आई थी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी ॥ २२ ॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगायेहुये वर्षाकालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वह बांहें उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती गर्जती हुई महावनमें प्रवेश करगई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षस

इमांविरूपामसतीमतिमत्तांमहोदरीम् ॥ राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याःक्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥ उद्धृत्य खड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥ २१ ॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्य च ॥ तथागतंप्रदुद्रावघोराशूर्पणखावनम् ॥ २२ ॥ साविरूपा महाघोराराक्षसीशोणितोक्षिता ॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृपितोयदः ॥ २३ ॥ साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना ॥ प्रगृह्यबाहूगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजनस्थानगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाशनिः ॥ २५ ॥ ततःसभार्यंभयमोहमूर्च्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडेऽष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ तांयथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥ भगिनींक्रोधसं ततःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्रमोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥

गणोंसे घेरेहुए जनस्थानवासी उग्रतेजवान् अपने भाई खरके निकट जाकर आकाशसे वज्रपातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥ २५ ॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकाने नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखाने खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्रजीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्य० भाषाटीकायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ राक्षस खर अपनी बहनको कुरूपा शरीरमें रुधिर लगाएहुई और पृथ्वीमें पडीहुई देखकर क्रोधसे संतापित हो बूझने लगा ॥ १ ॥ खरने कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्तकी चपलताको छोडो, स्पष्ट २ कहो कि, किसने तुमको ऐसा विरूप किया ? ॥ २ ॥ किसने सामने बैठे हुए, कुण्डली

वांधे हुए निरपराध स्थिर कालै सांपको ठोकरसेही उंगलीके पोरुएसे छेडकर जगायाहै ? ॥ ३ ॥ उसने तेरेसाथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सो यह अज्ञानी इस बातको जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलने वाली कामरूपिणी यथवमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसने तुम्हारी यह दशा की है ? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाकशासन सहस्रलोचन इन्द्रके सिवाय ब्राह्माण्डमें हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलमें मिलेहुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राणहरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग

कालपाशंममासज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपीतवान्विषमुत्तमम् ॥ ४ ॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामव स्थांनीताकेनांतकसमागता ॥ ५ ॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥ ६ ॥ नहिपश्याम्यहं लोकेयःकुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥७॥ अद्याहंमार्गणैःप्राणानादास्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिब न्निवसारसः ॥ ८ ॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनंरुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥ ९ ॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांसमुत्कृत्य संगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहतस्यमयारणे ॥ १० ॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मयापकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥ ११ ॥ उपलभ्यशनैःसंज्ञांतंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥१२॥ इतिभ्रातुर्वचःश्रुत्वाक्रुद्धस्यचविशेषतः ॥ ततःशूर्पणखावा क्यंसबाष्पमिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकविशालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥१४॥ फलमूलाशनौदांतौ तापसौब्रह्मचारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥

करेंगे कि, जिसने तुमको विरूप कियाहै ॥ ८ ॥ समरमें युद्ध करके शरजालद्वारा छिन्नमर्म किस मरेहुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीने पीनेकी इच्छाकीहै ? ॥ ९ ॥ लडाईमें युद्ध करके मारेहुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खायँगे ॥ १० ॥ हम संग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हत भाग्यको क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या पिशाच, क्या राक्षस, कोईभी उद्धार करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ११ ॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि, किस दुष्टने वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजित किया है ? ॥ ॥ १२ ॥ महाक्रोधित हुए अपने भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू रोवती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबलवान, कमलनयन चीर व मृगचर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले, जितेन्द्रिय,

तपस्वी, ब्रह्मचारी, राजा दशरथके दो पुत्र राम लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेमें गन्धर्वराजकी समान और राजलक्षणोंकरके युक्त जान पडतेहैं । वह दोनों देव हैं, अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि, वहांपर उन दोनों जनोंके साथ एक रूपवती सब भूषण धारण किये हुई स्त्री है ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंने मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे; जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारी अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनोंजनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करती ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो, हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनोंका खून पियेंगी ॥२०॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब कोपित होकर महाबलवान् यमकी समान १४ राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ ॥ २१ ॥ शस्त्रलगाए हुए चीर व मृगचर्म पहरे हुए दो मनुष्य घोर दण्डकारण्यमें स्त्रीसहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ, क्योंकि हमारी बहन उनका रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसो ! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनों जनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा करो ॥ २४ ॥ युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देखकर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकी समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे, उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० आरण्य० भाषाटीकायामेकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्षसों...

गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवौवेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥ १६ ॥ तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ दृष्टातत्रमयानारी तयोर्मध्येसुमध्यमा॥१७॥ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रमदामधिकृत्यताम् ॥ इमामवस्थांनीताहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥१८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम् ॥ सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥ १९ ॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत् ॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबेयमहमाहवे ॥ २० ॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान् ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान् ॥२१॥ मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ॥ इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति ॥ २३ ॥ मनोरथोयमिष्टोस्याभगिन्याममराक्षसाः ॥ शीघ्रंसंपाद्यतांगत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा ॥ २४ ॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे ॥ इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति ॥ २५ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० आ० अर० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता ॥ राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥

जीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंने पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे त देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आयाहुआ देखकर दीप्तिसे तेजवान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक घडीभर तुम सीताजीके निकट रहो । इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके "तथास्तु" कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥५॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीतासहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल

तेराममपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥२॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरं रामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वा रामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्यंधर्मात्मातानिर क्षांसिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौ ब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥८॥ युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥९॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपावर्तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसुसंक्रु द्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥ ११ ॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम् ॥ परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥ १२ ॥

खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीतेहुएहैं तपस्वी और ब्रह्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं, सो, तुम किसकारण हमारे ऊपर चढाई करते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुष क्यों धारण किये हो तो इसका उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारणकर यहां आये हैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट होकर इसी स्थानमें खडे रहो, आगे न बढो, हे निशाचरगण ! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तो यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके महाकोपित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे

हमसे दर्पयुक्त हो, मधुर वचन बोलनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धमें ह...
आपने मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर है हमारे सामने भी ...
गई नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल और पट्टासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पडेगा ॥
॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महा क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सम्मुख दौडे ॥ १६ ॥ और यह ...
दुर्जय अस्त्र शस्त्रादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानेलगे । उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचन्द्रजीने ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्णभू...

क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः ॥ त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योस्माभिर्हतोयुधि ॥ १३ ॥ काहितेशक्तिरेकस्यबहूनांरणमूर्धनि ॥ अस्मा...
ममतःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४ ॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्यक्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥१५॥ इत्येवमुक्त्वा...
...राक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशाराममेवाभिदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थः
समस्तानिचतुर्दश ॥ १७ ॥ तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्चन्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥ १८ ॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्चतुर्दश
शिलाशितान् ॥ गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान् ॥ १९ ॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः ॥ तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधि...
...प्लुताः ॥२०॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः ॥ तैर्भग्नहृदयाभूमौछिन्नमूलाइवद्रुमाः ॥२१॥ निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः ॥
तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्छिता ॥ २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता ॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी ॥ २३ ॥

बाणोंसे काटकर फेंक दिये । तत्पश्चात् महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने सूर्यके समान प्रभाववाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान् हो च...
राक्षसोंको ताककर शिला पर पैनाये बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिसप्रकार इन्द्र वज्र छोडते हैं । यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियोंमें प्रवेश ...
रुधिरमें सने ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमेंसे सांप निकला करते हैं, राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वीमें गिरे जैसे जड कटे ...
वृक्ष भूमिमें गिर पडते हैं ॥ २१ ॥ यह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहे थे, प्राण जाते रहेथे उनकी सूरतें बिगड गई थीं ...
उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीर होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी. उस समय उ...

जीके महित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंने पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे
ता ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आयाहुआ देखकर दीप्तिसे तेजवान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक
सीताजीके निकट रहो । इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके
के "तथास्तु" कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥५॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे
दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीतासहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल

यामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुःसीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥२॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रातरं
मितेजसम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततःश्रुत्वा
रमनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥ ५ ॥ राघवोपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्यंधर्मात्मातानिर
६ ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥ ७ ॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौ
दंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥८॥ युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥९॥
नमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचुर्वाचंसुसंक्रु
॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम् ॥ परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥ १२ ॥

और ब्रह्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं, सो, तुम किसकारण हमारे ऊपर चढाई करते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो
का उत्तर यह है कि तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके
सी स्थानमें खडे रहो, आगे न बढो; हे निशाचरगण ! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन
॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके
प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे

ममज्ञाया पुत्राया तव ... [top lines cut off]

चन्द्रको मारडालनेके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने मर्मभेदी बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्ष
सोंको युद्धमें मारडाला ॥ ९ ॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षणभरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचन्द्रका यह भारी कार्य देख मुझको महाभय लगताहै ॥
॥ १० ॥ मैं डरी हुईहूं,उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते
हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरंग उठते हुए गंभीर शोकसागरमें डूब रही हैं ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजेथे उन सबको
रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति

तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥९॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्क
र्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीतासमुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्यु
षितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाः
पिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्ष
सकंटकम् ॥ यदिरामममित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥ १५ ॥ तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा ॥ बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयु
गे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥ अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः ॥
जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन ॥ १८ ॥ मानुषौतौनशक्नोपिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९ ॥

और तेज तुममें हो ॥ १४ ॥ तब तौ राक्षसकुलके कण्टकरूप दंडकारण्यवासी रामचन्द्रको आजही मारडालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको तुम आज
संहार न कर डालोगे ॥ १५ ॥ तौ हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेही प्राण त्याग करैंगी, क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥
रामचन्द्रके सामने खडे न हो सकोगे, यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं
हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तमेंही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ
... राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहीं है तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकार

शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आती थी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीडितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको माराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडी हुई देखकर क्रोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा ॥ १ ॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रोरही हो ? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी

भ्रातुःसमीपेशोकार्तासससर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा॥२४॥निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थार्थमागताम् ॥१॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेनकुर्युर्वचोमम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः ॥ हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥ ५॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७ ॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥

भक्त और सदाही हित करनेवाले हैं वह किसीके मारेसे मरनेवाले नहीं हैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हा नाथ २ कह वार २ चिल्लाकर सर्पके समान लोट रहीहो, सो इसका क्या कारण है? उसको मैं जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हमेसा रक्षक होनेपरभी तुम किस कारण अनाथके समान विलाप करती हो ? उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आँसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि, हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खूनसे भीज गई हूं इस अवस्थामें पहलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक राम

चन्द्रको मारडालनेके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने मर्मभेदी बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला ॥ ९ ॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षणभरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचन्द्रका यह भारी कार्य देख मुझको महाभय लगताहै ॥ ॥ १० ॥ मैं डरी हुईहूं,उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरंग उठते हुए गंभीर शोकसागरमें डूब रही हैं ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजेथे उन सबको रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति

तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥९॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोभवन्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीतासमुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्युषितेपरित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राताराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम् ॥ यदिरामममित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥ १५ ॥ तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा ॥ बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥ अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः ॥ जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन ॥ १८ ॥ मानुषौतौनशक्नोपिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९ ॥

और तेज तुममें हो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षसकुलके कण्टकरूप दंडकारण्यवासी रामचन्द्रको आजही मारडालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको तुम आज संहार न कर डालोगे ॥ १५ ॥ तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेही प्राण त्याग करेंगी, क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥ रामचन्द्रके सामने खडे न हो सकोगे, यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तमेंही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ नहीं तो राम और लक्ष्मणको संग्राममें संहार करो ॥१८॥ राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहीं है तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रक-

शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आती थी ॥ २३ ॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीडितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको माराहुआ देख वेगसे दौडआकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ अनर्थके निमित्त आईहुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडी हुई देखकर क्रोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा ॥ १ ॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रोरही हो ? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी

भ्रातुःसमीपेशोकार्ताससर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा॥२४॥निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थार्थमागताम् ॥१॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥ भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेननुकुर्युर्वचोमम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः ॥ हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥ ४ ॥ अनाथवद्विलपसिकिंनुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति ॥ ५॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहतश्रवणनासिका ॥ शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥ ७ ॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥ ८ ॥

भक्त और सदाही हित करनेवाले हैं वह किसीके मारेसे मरनेवाले नहीं हैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहते हैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हा नाथ २ कह बार २ चिल्लाकर सर्पके समान लोट रहीहो, सो इसका क्या कारण है? उसको मैं जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हमेसा रक्षक होनेपरभी तुम किस कारण अनाथके समान विलाप करती हो ? उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आँसूभरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि, हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खूनसे भीज गई हूं इस अवस्थामें पहलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक राम

[illegible] लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजे थे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रने मर्मभेदी बाणोंको छोडकर शूल, पत्ता आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्ष
[illegible] मारडाला ॥ ९ ॥ [illegible] तेजस्वी राक्षसोंको क्षणभरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचन्द्रका यह भारी कार्य देख मुझको महाभय लगताहै ॥
॥ १० ॥ मैं डरी हुई [illegible] और [illegible] होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते
[illegible] और [illegible] भरे हुए [illegible] गंभीर शोकसागरमें डूब रही हैं ॥ १२ ॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजेथे उन सबको
रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति

[illegible]शूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहतान्सर्वेनाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥९॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान् ॥ रामस्यचमहत्क
र्मदृष्ट्वात्रासोमहान्मम ॥ १० ॥ सास्मिभीतासमुद्विग्नाविषण्णाचनिशाचर ॥ शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥ ११ ॥ विषादनक्राध्यु
[illegible]स्मिन्निमज्जामि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेपदवींप्राप्ताराक्षसाः
[illegible]नाः ॥ १३ ॥ मयित्वयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर ॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्ष
[illegible]कम ॥ यदिरामंममित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥ १५ ॥ तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा ॥ बुद्ध्याहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयु
गे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोपिमहारणे ॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥ अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः ॥
[illegible]समरंप्राप्यगन्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ मानुषौतौनशक्नोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९ ॥

[illegible] हो ॥ १४ ॥ तब तो राक्षसकुलके कण्टकरूप दंडकारण्यवासी रामचन्द्रको आजही मारडालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको तुम आजही
[illegible] न मारडालोगे ॥ १५ ॥ तो हम [illegible] तुम्हारे सामनेही प्राण त्याग करेंगी, क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥
[illegible] के सामने नहीं ठहर सकोगे, यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं
हो और तुम्हारा [illegible] मिथ्या [illegible] ॥ १७ ॥ हे मूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्तमेंही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ
[illegible] और लक्ष्मणको संग्राममें [illegible] ॥१८॥ राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहीं है तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रका

रा .ो रह सकोगे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचन्द्र स्वभावसेही अतिशय तेजस्वी हैं॥२०॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं, कि जिन्होंने हमारे नाक कान काट डाले हैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी बहु भाँतिसे विलाप कर ॥ २१ ॥ भाई भाग खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेत होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीट २ कर रोने लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० ल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामेकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ शूर्पणखाने जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका तिरस्कार किया तब तेजस्व भारवाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥ १ ॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहीं है घावमें छोडे हुए नमकीन जलके समान इस क्रोधको धारण करनेकी हममें शक्ति नहीं है ॥ २ ॥ रामचन्द्र और लक्ष्मण तौ मनुष्यहैं हममें जो पराक्रमहै उससे हम

रामतेजोभिभूतोहित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥ सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ २० ॥ भ्राताचास्यमहावीर्योयेनचास्मिविरूपिता ॥ एवं विलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥ २१ ॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥ कराभ्यामुदरंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्री० रा० आ० अर० एकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥ एवमाधर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥ उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १ ॥ तवापमानप्रभवः क्रोधोयमतुलोमम ॥ नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम् ॥ २ ॥ नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम् ॥ आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतोयोद्यविमोक्ष्यते ॥ ३ ॥ बाष्पःसंधार्यतामेषसंभ्रमश्वविमुच्यताम् ॥ अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम् ॥ ४ ॥ परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥ ५ ॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्यवदनाच्युतम् ॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥ ६ ॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः ॥ अब्रवीद्दूषणंनामखरःसेनापतिंतदा ॥ ७ ॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम् ॥ रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

रामको कुछ नहीं गिनते उस रामने जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इस कारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचन्द्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जांयगे तब तुम उनका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मूढतासे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षस श्रेष्ठ खरकी बडाई करने लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखाने प्रथम निन्दा की और फिर प्रशंसा की तब तत्क्षण खर, दूषणनामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि हे सेनापति ! जो सब भाँतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अतिवेगवान् [illegible]

जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करते हैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरके समानहै ऐसे राक्षसोंको सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामने लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेवाला रथ, धनुष, विचित्र बाणसमूह तेजधारवाली अनेक भांतिकी शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रणपंडित महानुभव ! राक्षसोंके प्रथमही महात्मा पुलस्त्यवंशसे उत्पन्न हम, जो रामचन्द्र राक्षसोंको मारनेके लिये आये हैं उन दुर्विनीत रामचन्द्रके वधार्थ संग्राममें आगे जानेकी इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥ खरने जब इस प्रकार कहा तौ दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुतेहुए सूर्यके समान चमकते हुए रथको खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु पर्वतकी समान सब गहने इसमें तपाये हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों

नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥ ९ ॥ उपस्थापयमेक्षिप्रंरथंसौम्यधनूंषिच ॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानांमहात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविद ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम् ॥ सदश्वैःशबलैर्युक्तमाचचक्षेथदूषणः ॥ १२ ॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूषणम् ॥ हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥१३॥ मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः ॥ मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम् ॥ १४ ॥ ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम् ॥ सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥१७॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥ शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रैर्गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥

गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, यह चन्द्रकांत मणि व सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षी और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटियां इसमें लगी हुईथीं, खर क्रोधमें भराहुआ कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवारहुआ देखकर दूषणने रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये पयान करनेकी आज्ञादी. उसने जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महावेगसे महाकुलाहल मचाती हुई जनस्थानसे चली ॥ ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेज शूल, फरसे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमानथे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महाभयंकर धनुष,

गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महावेगसे धावमान हुये तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथीने खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहने पहने घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥ २२ ॥ उस समय रिपुघाती खरका चलता हुआ रथ अपने शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥ २३ ॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रु संहार करनेमें विशेष शीघ्रता युक्त हो ओले वर्षाने वाले महामेघकी समान गर्जता हुआ सारथीसे बोला कि, रथ जलदी जलदी चलाओ ॥ २४ ॥

राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ २० ॥ तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥२१॥ ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान् ॥ खरस्यमतमाज्ञायसारथिःपर्यचोदयत् ॥२२॥ संचोदितोरथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः ॥ शब्देनापूरयामासदिशःसप्रदिशस्तथा ॥२३॥ प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखरस्वरोरिपोर्वधार्थंत्वरितोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितोदकम् ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥ निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः ॥ समेपुष्पचितेदेशेराजमार्गेयदृच्छया ॥२॥ श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम् ॥ अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यदिवाकरम् ॥३॥ ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम् ॥ समाक्रम्यमहाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेचसमाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेके लिये चली, तब गर्दभकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहेथे, वह राजमार्गमें चलनेके समय सहसा फूल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमेंभी गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्यमंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया, इस घेरेका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगारचक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडी ऊंची सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खानेवाले पशुपक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥

भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगलदायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलकी समान रुधिर बरसा करके वहांके सब आकाशको एकबारही ढालते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करनेवाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उदय होगई, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ सन्ध्या रुधिरसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोंने खरके सन्मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरम्भ किया ॥ ९ ॥ श्वेत चील सियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊँचे स्वरसे शब्द करने लगे, और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजानेवालाहै, ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुई ॥ ॥ १० ॥ सेनाके सामने मुखसे अग्नि निकालतीहुई घोर शोर करने लगीं सूर्यके

प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशं व्याजघ्नुर्भिदीतायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥ अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः ॥ ६ ॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः ॥ आकाशं तदनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥ ७॥ बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम् ॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे ॥ ८॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्याकालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदाघोरामृगाःखगाः॥ ९ ॥ कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः ॥ नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥१०॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः ॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥११॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः ॥ प्रवातिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोभूद्दिवाकरः ॥ १२ ॥ उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥ १३ ॥ तस्मिन्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः ॥ उद्भूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः॥१४॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनिर्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥

निकट परिघाकार कबंध दिखाई देनेलगा ॥ ११ ॥ महाग्रह राहुने विना अमावस्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलने लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥ १२ ॥ और रात्रि न होनेपरभी तारागण पटबीजनेकी समान चमककर उदय हुए, तालाओंके कमल सूखगये मछलीभी सागर सरोवरमें ही लीन होगये और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलनेपरभी महा धूरि उडने लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैना पक्षी सिखाये हुये शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करने लगे, घोर भयावनी उल्कायें बडे शब्दसे शोर करके पृथ्वीपर गिरने लगीं ॥ १५ ॥ और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपने लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करने लगा ॥ १६ ॥

लगी बाईं भुजा बहुतही काँपने लगी, स्वर बिगड गया, इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होने लगी, तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेसे नहीं लौटा, इन सब रोमहर्षण महाउत्पातोंको उपस्थित हुवा देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि, यह जो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहे हैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि, बलवान् जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रम इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाशमंडलसे तारागणोंको भी पृथ्वीपर गिरादें ॥ २० ॥ हम कोपित हों तो यमराजकोभी मृत्यु शोध लावें; इससे हम बलसे दर्पित रामचन्द्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना

प्रास्फुरद्भुजःसव्यःस्वरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥ १७ ॥ ललाटेचरुजोजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥ तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ॥ १८ ॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा ॥ महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥ १९ ॥ नचिंतयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव ॥ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलोत्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे ॥ यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः ॥ २२ ॥ सकामाभगिनीमेस्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः ॥ नक्वचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः ॥२३॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तैरावतगामिनम् ॥ २४ ॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्यगर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥ २५ ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः ॥ २६ ॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेऽन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २७ ॥

मार डाले हुए नहीं लौटेंगे । जिसके लिये रामचन्द्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंने उसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे । और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं, क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारे हैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको मालूमही है इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध हो जावें तो मत्त ऐरावत हाथीपर सवार इन्द्रको ॥ २४ ॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेमें क्या बडी बात है? वह तो मनुष्य हैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडी भारी सेना ॥ २५ ॥ अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदेमें फँसीथी । इस ओर युद्धके देखनेकी कामनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण देवगण गन्धर्वगण

॥

लोग सबही आये। वह पुण्य कर्म करनेवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ २७ ॥ कि गौ, ब्राह्मण, सुखसे रहैं इनके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीने समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीताथा। परमर्षिगण ऐसे, व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ विमानोंमें बैठे हुए देवतालोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी निकट आईहै ऐसे राक्षसोंकी बडी सेनाको देखने लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, ॥ ३१ ॥ दुर्जय, परवीराक्ष, पुरुप, कलिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य, और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको

स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्यस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥२९॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदेवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेपांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥ रथेन तुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥३१॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपुरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामाली सर्पास्योरुधिराशनः ॥ ३२ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणं पृष्ठतोन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणीसुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेतामालाग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिका न्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वात्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहा बाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥

घेरे हुए जाते थे ॥ ३२ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे २ चले जाते थे ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ग्रहजाल चन्द्र और सूर्यको प्राप्त होता है, वैसेही भीमवेग सुदारुण महाबलवान् राक्षसगण संग्रामकी अभिलाषा किये हुये सहसा राजपुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुँचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०आरण्यकांडे भाषाटीकायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ इस भाँति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचन्द्रजीके आश्रमकी ओर चला, तब श्रीरामचन्द्रजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जो कि खरके चलनेके समय हुये थे सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनेवाले यह बडे भारी उत्पात राक्षसकुलका

संहार करनेके लिये हो रहे हैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्णवाले बादलोंका समूह इस आकारमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज २ रुधिर बर्षाता है ॥ ४ ॥ हे चतुर ! हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलताहै, सो यह युद्ध होनेका आनंद मना रहे हैं; और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआ है ऐसे धनुषभी विच लित हो रहे हैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करते हैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआ है ॥ ६ ॥ अब शीघ्रही महायुद्ध होगा इसमें कुछभी संदेह नहीं है। परन्तु हे वीर ! हमारा यह दहना हाथ बार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करता है ॥ ७ ॥ हे शूर ! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुँची है, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडता है ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! युद्ध करनेके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका

अमीकशिरगागस्तुविसृजंतेखरस्वनाः ॥ व्योम्निमेघाविवर्ततेपरुषागर्दभारुणाः ॥ ४ ॥ सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः ॥ रुक्मपृष्ठानि चापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणोवनचारिणः ॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहा न्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्यातिमेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७ ॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्य ते ॥ ८ ॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोरःश्रूयतेयंमहाध्वनिः ॥ आहता नांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ १० ॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंकमानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥ ११ ॥ तस्माद्गृही त्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम् ॥ १२ ॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादा भ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥ १३ ॥ त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥

मुख मलीन होजाता है, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होता है ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और गंभीर गर्जनका यह शब्द भी अब सुनाई आता है। व उन क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आती है॥ १० ॥ इस कारण कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करते हैं कि, जिससे वह विपत्ति निकट न आवे ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षों करके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना । वत्स ! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्द देते हैं कि, तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें चले जाओ ॥ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान हो, निश्चय इन राक्षसोंका वध कर सकतेहो

[illegible] मार डालनेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीत
इसमें सन्देह नहीं है परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेकी इच्छा करते हैं ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये तब श्री
सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ अग्निवर्णवाले कवचके धारण करनेसे श्रीरामचन्द्रजी अन्धकारमध्यमेंसे
द्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीने ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्निवर्णवाले कवचके धारण करनेसे श्रीरामचन्द्रजी धनुषको उठाय, वाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे
महाअग्निके समान जान पडने लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे
दिशाओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढहो वहां खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण, गन्धर्वगण, सिद्धगण, और चारणगण संग्राम दे
अभिलाषासे वहां आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्ध हैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्यकर्म करनेवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहने

हंतनिर्युक्तमित्यु
एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥१५॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥ हंतनिर्युक्तमित्यु
गमःकवचमाविशत् ॥१६॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेमहानग्निरिवोत्थितः ॥ १७ ॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरान्
दायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनैःपूरयन्दिशः ॥१८॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥
॥१९॥ ऋषयश्चमहात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥ २० ॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचेतिसं
ताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २१ ॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वापुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥ २२ ॥
चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥ २३ ॥ इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्चद्विजर्षभाः ॥ जातकौतू
स्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥ २४ ॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्
चक्र हाथमें लेकर असुरश्रेष्ठोंको हरायाथा ऐसे रामचन्द्रजी जीतें । इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन करते हुए कहने लगे ॥ २२ ॥ कि भयंक
करनेवाले राक्षस तो चौदह हजार (१४०००) हैं और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकले हैं, सो इससे कह नहीं सकते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्र
राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनिगण प्रधान २ ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाकांत चित्त किये विमानोंपर स्थित हुए वहां खडेथे ॥ २४ ॥ महा
श्रीरामचन्द्रजीको तेजमें प्रविष्ट हुए समरस्थलमें अकेला खडा देख, प्राणिमात्रही भयके मारे दुःखी हुए कि न जाने महाराजको आज कैसा परिश्रम पडैगा अ

इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करते हैं और उनका रूप जैसा होजाताहै, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल रूप और नहींथा ॥ २६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहे हैं कि इतनेमें महागंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारोंओरसे राक्षसोंकी अनी (सेना) बनी ठनी आपहुँची, जो वीरपनेकी वार्ता आपसमें कररहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खैंच २ बजाते कोई बार २ जँभाई लेते कोई ऊंचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही बजातेथे ॥ २९ ॥ इस सब सेनाके राक्षसों का ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिससे वह वन भर गया, और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घबडा गये ॥ ३० ॥ और लौटकर पीछेको न देखतेहुए जिस जगह

रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥ २६ ॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः ॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ २७ ॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत ॥ वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् ॥ २८ ॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः ॥ विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥ २९ ॥ तेषांसुविपुलःशब्दःपूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताश्वापदावनचारिणः ॥ ३० ॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन् ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥ धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः ॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥ ३४ ॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः ॥ तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यददृशेतदा ॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥

वह शब्द श्रवणगोचर न होवै वहांको भागे । व इस ओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण कियेथे, वह सेना समुद्रसमान उफनती चली आतीथी, समरपंडित श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजीने नेत्र डाल चारों ओर निहारा तो ॥ ३२ ॥ युद्ध करनेको खरकी सेना, उनके सोंही चली आतीहै, तब श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको उठाय, और तरकसमेंसे बाणसमूहको ग्रहणकर ॥ ३३ ॥ राक्षसकुलका संहार करनेके लिये महाक्रोध किया, उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्नि है ॥ ३४ ॥ वन वता लोग उनका वह तेजसम्पन्न स्वरूप

...धारण किये, यह सेना ... श्रीरामचन्द्रजीने ...

...की सेना, उनके ...

श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी मूर्ति उस समय उन सैनने देखीथी ॥ ३५ ॥ जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पाते हैं । राक्षससेनाभी अग्नि सम वर्ण, कवच, रथ आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसी शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरने शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचंद्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥ १ ॥ ऐसा देखकर उसने कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथीसे ऊँचे स्वरसे कहा कि रामचन्द्रके सामने रथ ले चलो ॥ २ ॥ सारथीने खरकी आज्ञानुसार जहां महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥ ३ ॥ खरको रामचन्द्रजीके आगे जाताहुआ देखकर उसके मंत्री श्येनगाम्यादि बारह राक्षस उसके

तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अर० चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिस्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत ॥ यत्ररामोमहाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥ तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥ ४ ॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथगतःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोदितः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ ६ ॥ ततस्तंभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षतदुर्जयम् ॥ ७ ॥ मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८ ॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायामहाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः ॥ तेरामेशरवर्षाणिव्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥

चारोंओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होताहै ॥ ५ ॥ अनन्तर यह खर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर सहस्र हजार बाण छोडकर महाशब्दसे चिल्लाने लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेके अयोग्य दुर्जय श्रीरामचन्द्रजीको ताककर विविध भांतिके शर वर्षाने लगे ॥७॥ वह राक्षस, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके सुन्दर शूल, फांसी, ... श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ फिर वह बडे २ शरीरवाले महाबलवान मेघसमान निशाचरगण, रथ, घोडे ... हैं ॥ ९ ॥ उनमें कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंगसमान आकारवाले हाथियोंपर चढकर

॥ १० ॥ जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै, वैसेही
श्रीरामचन्द्रजीको युद्धमें मार डालनेके लिये आये, इस कारण वह सब रामचंद्रजीपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ११ ॥ जैसे प्रदोषकी यामिनियोंमें पार्षदोंके मध्य
बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकीजीवन कैसे शोभित होतेथे ॥ १२ ॥ अपने बाणोंसे ग्रहण किये, जैसे नदियोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करता
महादेवजी शोभित होतेहैं । राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्र श्रीरामचन्द्रजीने ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको
है यद्यपि श्रीरामचंद्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्यथा न हुई ॥ १४ ॥ जैसे सन्ध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित
पीडा नहीं होती । सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेसे रुधिर बहनेसे श्रीरामचंद्र ऐसे शोभित हुए ॥ १५ ॥ कारण कि, अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर
होते हैं । रघुनंदनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुए ॥

तानिमुक्तानि
शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥ ११ ॥ तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ १२ ॥ रामःप्रदीतैर्नेद्
शस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥ प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ विपेदुर्देवगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः
भिर्वज्रैरिवमहाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ १४ ॥ बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ १६ ॥ ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतशोथसहस्र
यः ॥ १५ ॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥ १८ ॥
शः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकपत्रान्कांचनभूषणान् ॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येया
आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव ॥ भित्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥ १९ ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥ २१ ॥
स्तुरामस्यसायकाश्चापमंडलात् ॥ २० ॥ विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥

॥ १६ ॥ शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब
घेरे हुएथे । ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीने महाक्रोध युक्त हो धनुषको जोरसे खैंच ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने लीलापूर्वक
बाण किसीके रोकनेसे नहीं रुकते, बरन् अनिवार्य सहन करनेके योग्य नहींथे और देखनेमें यमराजकी फाँसीके समानथे ॥ [illegible] सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका [illegible] श्रीरामचन्द्रजीके

शब्द करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघायें सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे र॰ हाथी महावत व सवारसहित हाथी घुडसवारसहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंने छिन्न भिन्न किया, और पैदल संग्राम करके यमराजके भवनमें पहुँचाया ॥ २४ ॥ राक्षसगण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्णहै ऐसे नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर आर्त्त पुकारने लगे ॥ २५ ॥ शुष्कवनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर भली प्रकार घूम २ कर जलतीहै, वैसेही राक्षससेनाभी श्रीरामचन्द्रजीके मर्मभेदी पीडित होकर सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होसकी ॥ २६ ॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महाक्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके

बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोथसहस्रशः ॥ २२ ॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गजांश्च गजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥ २३ ॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वाअनयन्यमसादनम् ॥ २४ ॥ ततोनाल नाराचैर्नालीकैर्विकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाचराः ॥२५॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः ॥ नरामेणसुखं शुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीमबलाःशूराःप्रासान्शूलान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषांबाणे बाहुःशस्त्राण्यावार्यवीर्यवान् ॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्ताः ॥ शिताः ॥ २९ ॥ अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः ॥ खरमेवाभ्यधावंतशरणार्थंशराहताः ॥३०॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्व ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःक्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः॥३१॥निवृत्तास्तुपुनःसर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः ॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः॥३२॥

बाण, शक्ति और शूल इत्यादि चलाने लगे ॥ २७ ॥ महाबाहु वीर्यवान श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण करके उनके मस्तकभी उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलतीहै जिस प्रकारसे उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जाते हैं राक्षसगण छिन्नमस्तक होकर पृथ्वीपर गिरने लगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट फूट गई ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे घायल राक्षस व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महाक्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधात क्रोधित कालके समान गेरवरगरण श्रीरामचंद्रजीके सम्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणमें भागे हुए निशाचरगण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल,

शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचन्द्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर की ॥ ३३ ॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेपर तिस समय भयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचन्द्रजी पर अस्त्र शस्त्र चला रहे थे इधरसे श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करते थे, यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गई हैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गये हैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचन्द्रजीने बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥. ३७ ॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे श्रीरामचन्द्र

शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥३३॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंतु मुलंरोमहर्षणम् ॥ ३४ ॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥ ३५ ॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिश श्चसमावृताः ॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः ॥ ३६ ॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः॥३७॥ ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः॥३८॥नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यं तिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥ ३९ ॥ शरांधकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥ ४० ॥ युगपत्पत मानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥ युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाभवत् ॥ ४१ ॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेरा क्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छिन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥ ४३ ॥

जीके धनुषसे हजार २ बाण निकलने लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगईं ॥ ३८ ॥ राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि, कब श्रीरामचन्द्रजी भेद्य और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आकर्षण करते हैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होने लगे ॥ ३९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश मंडलको ढक लेता हुआ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बराबर शरधारा छोडते चले जाते थे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई २ गिरते हुए दिखाई देते थे जैसे राक्षसोंसे पृथ्वी भी ढकगई ॥ ४१ ॥ राक्षस २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न, विदारित और क्षीणप्राण, [illegible]

शंखे व अनेक २ भांतिके गहने ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, रथ, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पट्टादि शस्त्रोंसे जोकि रामचन्द्रजी के बाणोंसे कट २ टूट गये थे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षसगणअतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतने वाले श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख जानेको समर्थ नहीं हुए॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचविंशः सर्गः॥ २५॥

महाबाहु दूषणने अपनी सेनाको श्रीरामचन्द्रजीसे मारी हुई देख भयंकर वेगवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही नहीं चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी ॥ २ ॥ वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी

हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः ॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि ॥ ४४ ॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैःशूलपट्टिशैः ॥ विच्छिन्नैःसमरैर्भूमिर्विस्तीर्णाभूद्भयंकरा ॥४५॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥ नतत्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अर० पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ १ ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥ २ ॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानांचवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥ शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत् ॥ ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥ ७ ॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान् ॥ हत्वाचाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥ ८ ॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥

वर्षा लगातार श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर करने लगे, वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेवाली थी ॥ ३ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने अपने तीखे बाणोंपरही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होतेहुए श्रीरामचंद्रजीने ॥ ५ ॥ दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की । फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित होकर ॥ ६ ॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको निवारण करने लगा । तब श्रीरामचंद्रजीने महाक्रोधकर छुरेके समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष ॥ ७ ॥ काटकर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नधेथे उनको मारडाला । अश्वोंको तीक्ष्णबाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथीका ॥ ८ ॥ शिर काटडाला । और तीन

बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे । तब दूषणका धनुषभी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथीभी उसके मारे गये ॥ ९ ॥ तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे हों, रुएं खडे हो जायँ ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्रके समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषण राक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धाया ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कटे जानेपर उसका वह बृहदाकार परिघ स्थानभ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥ १४ ॥ हाथ कटजानेसे मुँहके बल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें

जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥ १० ॥ आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णंपरवसोक्षितम् ॥ वज्राश निसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम् ॥ ११ ॥ तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरिघंरणे ॥ दूषणोभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥ १२ ॥ तस्याभिपतमानस्य दूषणस्यचराघवः ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि ॥ परिघश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वज इवाग्रतः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातभुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूमौदूषणं निहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धास्त्रयःसेनाग्रयायिनः ॥ संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपा शावपाशिताः ॥१७॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहाबलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः॥१८॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्व धम् ॥ दृष्ट्वैवापततस्तांस्तुराघवःसायकैःशितैः ॥ १९ ॥ तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिव ॥ महाकपालस्यशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः॥२०॥

गिरा जैसे दांत टूट जानेपर महामनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषणको संग्राममें मराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कहकर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथी थे, इनमें महाकपाल विशाल शूल, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटा लेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीकी ओर चले, इन तीनोंको अपने ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्णबाणोंसे ॥ १९ ॥ इनकी अगवानी की जैसे मनुष्य आयेहुये पा[illegible]

... व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आंखोंको पूर्ण करदिया ॥
महाकालका तो रघुनंदनजीने गिर ही उडादिया ॥ २० ॥ इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥
॥ २१ ॥ यह तीनों कटे हुये वृक्षोंकी नाई पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुगामी सैन्यको मारा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरने क्रोधित होकर
॥ २२ ॥ संहार कर उन सबको श्रीदशरथकुमारने यमपुरको पठादिया, तब दूषण व उसके अनुगामी सैन्यको मारा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरने क्रोधित होकर
महाबलवान और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञादी कि, सेनापति लोगो ! दूषण तौअपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षस
एक एकसे बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकारके अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचन्द्रको मारडालो ॥ २५ ॥ खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर
॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषण
अमर्ष्यैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम् ॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदे
स्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपितःक्षणात् ॥ २२ ॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥ २३ ॥ व्यादिदे
शखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्ध्वारामंकुमानुषम् ॥ शस्त्रैर्नानावि
धाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षः
परुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृ
जंतःशरोत्तमान् ॥२८॥ ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखाविशिखाःसधूमा
इवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥३०॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनकर्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि॥३१॥
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥
क्रोधमें भर आपही श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ २६ ॥ दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, सर्पास्य, महामाली,
रुधिराशन ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाये ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंको तेजस्वी
श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऊपर आताहुआ देखकर हेमवज्रविभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९ ॥ वज्रपडनेसे
जिसप्रकार बडे २ वृक्ष गिर जाते हैं वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके सुवर्ण पंख वाले सधूम अग्निके समान बाणोंसे राक्षसोंका संहार होनेलगा ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने
एक सौ बाण चलाकर एकसौ राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सनेहुए पृथ्वीमें गिरे

उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होगये ॥ ३२ ॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सरा[illegible]
बाल खुले हुए राक्षसोंसे व्याप्त होरही थी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसोंके मारेजानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षणभरमेंही महाभयंकर नरक[illegible]
समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्यशरीरधारी रामचन्द्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब सेना[illegible]
बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी केवल यह तीनजन शेषरहे ॥ ३६ ॥ बचे बचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडे[illegible]
श्रीरामचन्द्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान्, भयंकर, व बडे दुःखसे सहनेके योग्यथे॥ ३७ ॥ इसप्रकार महासंग्राममें समस्त भयंकर [illegible]

तैर्मुक्तकेशैःसमरेपतितैःशोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णावसुधाकृत्स्नामहावेदिःकुशैरिव ॥ ३३ ॥ तत्क्षणेतुमहाघोरंवनंनिहतराक्षसम् ॥ बभूवनिर[illegible]
प्रख्यंमांसशोणितकर्दमम् ॥ ३४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेणमानुषेणपदातिना ॥ ३५ ॥ तस्यसैन्यस्यस[illegible]
स्यखरःशेषोमहारथः ॥ राक्षसस्त्रिशिराश्चैवरामश्चरिपुसूदनः ॥ ३६ ॥ शेषाहतामहावीर्याराक्षसारणमूर्धनि ॥ घोरादुर्विषहाःसर्वेलक्ष्मणस्य[illegible]
ग्रजेनते ॥ ३७ ॥ ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणहतंबलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततःसमाससादेन्द्रइवोद्यताशनिः ॥ ३८ ॥ इत्या[illegible]
श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥ खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥ राक्षसस्त्रिशिरानामसं[illegible]
पत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ मांनियोजयविक्रांतंत्वंनिवर्तस्वसाहसात् ॥ पश्यरामंमहाबाहुंसंयुगेविनिपातितम् ॥ २ ॥ प्रतिजानामितेसत्यमायुधंचा[illegible]
मालभे ॥ यथारामंवधिष्यामिवधार्हंसर्वरक्षसाम् ॥ ३ ॥ अहंवास्यरणेमृत्युरेषवासमरेमम ॥ विनिवर्त्यरणोत्साहंमुहूर्तंप्राश्निकोभव ॥ ४ ॥

राक्षसोंको श्रीरामचन्द्रजीसे मराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुये इन्द्रके समान रामचन्द्रजीके मारनेको चला ॥ ३८ ॥ इत्या[illegible]
श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाया, तब सेनापति त्रि[illegible]
राक्षस उसके समीप आकर कहने लगा ॥ १ ॥ मैं विक्रमवान् हूं आप यह साहस त्याग करके मुझको रामचन्द्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें मरा[illegible]
रामचन्द्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि, समस्त राक्षसोंके मारने योग्य रामचन्द्रको भ[illegible]
निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा इन रामकोही मार डालूंगा आप क्षणके लिये रणके उत्साहको छोडकर [illegible]

तो आप आनान्दित चित्तसे जनस्थानको चले जाइये, और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेके लिये रामके सं
देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारे जायँगे तो आप आनान्दित चित्तसे जनस्थानको चले जाइये, और जो मेरा संहार होवे तो आप स्वयंही युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्रजीके सामने दौडा ॥६॥ तीन शृंग
सम्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा मृत्युके लोभसे इसप्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाया ॥७॥ और महामेघ जिस प्रकार जलधारावर्षात
वाले पर्वतकी समान वह तीन शिरवाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें चढकर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाया ॥७॥ और महामेघ जिस प्रकार जलधारावर्षात
हुआ हो वैसेही वाण वर्षाता जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करने लगा ॥८॥ रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीने त्रिशिरा राक्षसको अपने सम्मुख आते देखकर धनुष उठाः
गड्कर तीखेवाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिवलवान् सिंह और हाथीके समान श्रीरामचन्द्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ हुअ

गच्छयुद्धचे
प्रद्द्योवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि ॥ मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥ ५ ॥ खरंत्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः ॥ गच्छयुद्धचे
त्यनुज्ञातोराघवाभिमुखोययौ ॥ ६ ॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता ॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७ ॥ शरधारासमूहान्सम
हामेघइवोत्सृजन् ॥ व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥८॥ आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकाञ्शि
तान् ॥ ९ ॥ ससंप्रहारस्तुमुलोरामत्रिशिरसोस्तदा ॥ संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥ १० ॥ ततस्त्रिशिरसावाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥
अमर्षीकुपितोरामःसंरब्धइदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम् ॥ पुष्पैरिवशरैर्योहंललाटेऽस्मिपरिक्षतः ॥ १२ ॥ ममा
पिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्युतान् ॥ एवमुक्तस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥ १३ ॥ त्रिशिरोवक्षसिक्रुद्धोनिजघानचतुर्दश ॥ चतुर्भिस्तु
रगानस्यशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥ न्यपातयततेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥ अष्टभिःसायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥

जिसके देखनेसे रोम खडे होजातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी त्रिशिरा करके तीन वाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथेमें लगे १
उनके लगनेसे रोपयुक्तहो गर्वित वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ कि, अरे! विक्रमशूर निशाचर ! बस तेरा इतनाही बल है कि, तेरे चलाये हुए बहुत सारे वाण हम
माथेमें फूलोंकी समान लगे मानो हमारी परीक्षा ली, हम तो जानते थे कि, तुममें कुछ विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै ! अव तू हम
धनुषके रोदेसे छूटे हुए वाणोंके समूहको ग्रहण कर। यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने चौदह वाण त्रिशिरा
हृदयमें मारे और चार घोडोंको सन्नतपर्व वाणोंसे ॥ १४ ॥ महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने मार डाला और आठ वाणोंसे रथपरही उसके सारथीको म

गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊँची उसकी ध्वजाको काटडाला जब सारथी और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेको हुआ ॥ १६
तो उसी बीचमें महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधसे अनेक बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेसे वह फिर शस्त्र ग्रहण करनेको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७
फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिर
श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा ॥ १८ ॥ समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही गिर गयेथे । त्रिशिराके मारे जानेके पीछे शेष राक्षस भागकर ख
शरणमें गये ॥ १९ ॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृगयूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खर रोषमें भर तिनको लौ

रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पतंतंनिशाचरम् ॥ १६ ॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोऽभवज्जडः ॥ सा
केश्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥ शिरांस्यपातयत्त्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥
न्यपतत्पतितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥ १९ ॥ द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याघ्रत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरः
द्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुपितस्त्वरन् ॥ राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे सप्तविंशःसर्गः ॥२७॥
निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥ खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥१॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविपह्यंमहाबलम् ॥ हतमेकेनरामेणदूषण
स्त्रिशिराअपि ॥२॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः ॥ आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा॥३॥विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोजनान् ॥
खरश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥ ज्यांविधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयास्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्शरैरथगतःखरः ॥ ५ ॥

शीघ्रतासे श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७
दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करने लगा कि दू
और त्रिशिराको, सहनेके अयोग्य पराक्रमवान् महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रने संग्राममें मारडाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह रा
खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य इन्द्रके ऊपर धाया था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, कोपित सर्पके
समान रुधिर पान करनेवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥ फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाताहुआ अनेक भांतिके बाण

छोड़ते २ संग्रामभूमिमें इधर उधर घूमनेलगा ॥ ५ ॥ और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरने बाणोंसे पूर दिया । ... जैसे मेघमंडल वृष्टि
... भारी धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि
करते हैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीसे छूटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह
बाणही बाण भरगये ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके छा जानेसे सूर्य भगवान्भी छिप गये ॥ ९ ॥
इसके पीछे महावत महागजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खर तीखे नालीक नाराच और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको घायल करने लगा ॥ १० ॥
उस समय सबही प्राणी, रथमें बैठे धनुषधारी खरको राक्षस पाशधारी यमराजकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरने अपनी समस्त सेनाके विनाश

समस्ताश्च दिशो बाणैः प्रदिशश्च महारथः ॥ पूरयामास तं दृष्ट्वा रामोपि सुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ स सायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकाराविवरं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूव शितैर्बाणैः खररामविसर्जितैः ॥ पर्याकाशमनाकाशं सर्वतः शरसंकुलम् ॥ ८ ॥ शरजालावृतः सूर्यो न तदा स्म प्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोः संप्रयुध्यतोः ॥ ९ ॥ ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्च विकर्णिभिः ॥ आजघान रणे रामं तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १० ॥ तं रथस्थं धनुष्पाणिं राक्षसं पर्यवस्थितम् ॥ ददृशुः सर्वभूतानि पाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारं सर्वसैन्यस्य पौरुषे पर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतं महासत्त्वं मेने रामं खरस्तदा ॥ १२ ॥ तं सिंहमिव विक्रांतं सिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वा नोद्विजते रामः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ १३ ॥ ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः ॥ आससाद रणे रामं पतंग इव पावकम् ॥ १४ ॥ ततोस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः ॥ खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५ ॥ स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय मर्मणि ॥ निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥ १६ ॥ ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥ १७ ॥

करनेवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धैर्यवान् महाबली रामचन्द्रजीको रण करनेसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ सिंहकी
समान इधर उधर घूमने लगा । सिंह जिस प्रकार मृगके छौनाको देखकर नहीं डरता वैसेही श्रीरामचन्द्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये ॥ १३ ॥
अनन्तर खर सूर्य समान प्रतिभाशाली महारथपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचा, जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुँचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा
श्रीरामचन्द्रजीको अपने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचन्द्रजीका बाण चढाहुआ धनुष मुट्ठीके धोरेसे काटडाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमें भरकर इन्द्रके
वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थानमें मारे ॥ १६ ॥ और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडितकर

क्रीडा) खाकर मर जातीहै ॥ ५ ॥ रे राक्षस ! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेवाले महातेजवान् तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो नहीं जान॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंसे निन्दा पानेके पात्र हो जाते हैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षके समान ब[illegible] दिनोंतक नहीं रहसक्ते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलता है; वैसेही समयके आजाने पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर ! जिस प्रकार विष मिला हुआ अन्न खानेसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेका फल थोडेही समयमें फलजाता है ॥ ९ ॥ रे राक्षस ! भयानक पाप कर्म करनेवाले और लोकोंका बुरा चाहनेवाले दुष्टोंको बाणोंसे मारनेकेही लिये ऋषिलोगोंने मुझे राजाकर यहां पठायाहै ॥ १० ॥

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किंनुहत्वामहाभागान्फलंप्राप्स्यसिराक्षस ॥६॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरालोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यंप्राप्य तिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः ॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्यागतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्तवम् ॥८॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षणदाचर ॥ ९॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराज्ञाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्यभित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः ॥ विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥११॥ येत्वयादंडकारण्येभक्षिताधर्मचारिणः ॥ तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योनुगमिष्यसि ॥१२॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ निरयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥१३॥ प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम ॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १५ ॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज ॥ आत्मनाकथमात्मानमप्रशंस्यंप्रशंससि ॥ १६ ॥

जिसप्रकार वमईको फोडकर पृथ्वीपर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटेहुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आवेंगे ॥ ११ ॥ पहले [illegible] जिन २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीजनोंको भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें माराजाकर सेना सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त ताप[illegible] तुझ करके मारे गये हैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रे नीच कुलमें उत्पन्न हुए ! तु भली भाँतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लाल होआये और क्रोधके मारे [illegible]

समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनी प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान् पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं ॥ १८ ॥ मृत्युसमयके निकट आजानेपर कौन वीर अपने वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतीहै वैसेही तुमने जो अपनी प्रशंसा की इससे तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ? ॥ २१ ॥ हम

विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्विताः ॥ १७ ॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्रियपांसनाः ॥ निरर्थकंविकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥ १८ ॥ कुलंव्यपदिशन्वीरःसमरेकोभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तुवेस्तवम् ॥ १९ ॥ सर्वथातुलघुत्वंतेकत्थनेनविदर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥ २० ॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम् ॥ धराधरमिवाकंप्यंपर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥ २२ ॥ कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसवितायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥ २३ ॥ चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम् ॥ खरश्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा ॥ २५ ॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्म वृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वागात्तत्समीपतः ॥ २६ ॥ तामापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः ॥ २७ ॥

लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान तुम्हाराही नहीं वरन् त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥ २२ ॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमने जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोछेंगे ॥ २४ ॥ यह कहकर खरने महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बंद बँधी हुई गदा जो उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसने रामचन्द्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी भुजामें छुट कर अगल बगलके वृक्षलतादिकोंको जलातीहुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आनेलगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान

निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमेंही खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥ अतीव हिंसा करनेके स्वभाव वाली सांपिनी जिसप्रकार मंत्र और औषधिप्रभावसे [illegible] जातीहै वैसेही यह गदा श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी॥ २८॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥

धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भर खरसे कहनेलगे ॥ १ ॥ रे राक्षसाधम ! बस तुमने इतनाही अपना सब [illegible] दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २ ॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो । तुम्हारी गदाने हमारे बाणोंसे टुकडे २ हो[illegible] पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३ ॥ और तुमने जो कहा था कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोछेंगे सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥

साविशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांड एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः ॥ स्मयमानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम ॥ शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि ॥ २ ॥ एषाबाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥ ३ ॥ यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥ ४ ॥ नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥ प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतंयथा ॥ ५ ॥ अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्महीपास्यतिशोणितम् ॥ ६ ॥ पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥७॥ प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने ॥ भविष्यंतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥ ८ ॥ जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छरैः ॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने ॥९॥ अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः ॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभयादन्यभयावहाः ॥ १० ॥ अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

और गरुडजीने जिसप्रकार अमृत हरण कियाथा, इस समय हमभी वैसेही नीच ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम्हारे प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आ[illegible] हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करैगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिर[illegible] दोनों हाथोंसे सर्वांगमें रुधिर लगाये हुए दुर्लभ स्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयन करोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलके नाश करनेवाले ! यह दंडकवन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रम हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस ! मेरे बाणसमूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे वनमें होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसियें बन्धु बान्धवोंके मारेजानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज [illegible] भाग जावेंगी ॥ [illegible]

हो मो वह तुम्हारेही समान वंशकी स्त्रियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवीर्य हो जायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज ! क्षुद्रात्मा ! ब्राह्मणकंटक ! मुनिगण तुमसे शंका क॰
अग्निमें आहुति दिया करते हैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥ १२ ॥ जब रघुकुमार श्रीरामचन्द्रजीने महाक्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर ग॰
क्रोधयुक्तहो फिर बडे ऊंचे स्वरसे रामचन्द्रजीको दुर्वाक्य कहताहुआ बोला ॥ ॥ १३ ॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भय नहीं करते, इ॰
कारण मृत्युके वश होकर क्या कहने लायक क्या न कहने लायकहै, उसको नहीं समझ सकते ॥ १४ ॥ जो पुरुष कि कालकी फाँसीमें बँध जाते हैं, उनकी अ॰
इत्यादि छः इन्द्रियोंकी वृत्ति जाती रहनेके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता ॥ १५ ॥ निशाचर खरने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहक॰
भृकुटी टेढीकर निकटही बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बडे भारी शालके पेडको देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेके लिये ख॰

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक ॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥ १२ ॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रुवाणंराघवंवने ॥ खरोनिर्भर्त्सयामा
मरोषात्खरस्वनः ॥ १३ ॥ दृढंखल्ववलिप्तोसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वाच्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षि
प्तामवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतितेनिरस्तपडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटिंततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनि
शाचरः ॥ १६ ॥ रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन् ॥ सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदः ॥ १७ ॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्दित्वामहा
बलः ॥ राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत् ॥ १८ ॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान् ॥ रोपमाहारयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम् ॥ १९ ॥
जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः ॥ निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम् ॥ २० ॥ तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम् ॥ गिरेःप्रस्रवण
स्येवधाराणांचपरिस्रवः ॥ २१ ॥ विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसंयुगे ॥ मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ २२ ॥

किलकिलाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा 'लो तुम मारे गये' यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजी॰
ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेके लिये म॰
कोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना निकलने लगा, उन्होंने हजार बाणोंसे खरके अंगको छिद्र
भिन्न करडाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रहतीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रु॰
गिरने लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुल हो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥

यह रुधिरसे डूबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन पग पीछेको हटगये ॥२३॥ इसके पीछे श्रीराम चंद्रजीने खरके मारडालनेके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकी समान अग्निसमान बाण ग्रहण किया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीने यह बाण श्रीरामचंद्रजीको अगस्त्यद्वारा दियाथा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोडा ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रके समान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर श्वेतारण्यमें रुद्रकरके भस्महुए अन्धकासुरकी समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत होकर गिरेथे तैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्त होकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों

तंमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम् ॥ अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम् ॥ खरस्यरामोज ग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥ २४ ॥ सतद्दत्तंमघवतासुरराजेनधीमता ॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥२५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसम निस्वनः ॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥२६॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतारण्येयथांधकः ॥२७॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा ॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिपपातहतःखरः ॥२८॥ एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः ॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्प वर्षंसमंततः ॥२९॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥ ३० ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपि णाम् ॥ खरदूषणमुख्यानांनिहतानिमहामृधे ॥ ३१ ॥ अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृश्यते ॥३२॥

ओरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ और सब देवता चारणगण फूल बरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीने ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णुजीकी समान मर्यादी श्रीरामचंद्रजीका

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे, तब अन्धकासुर उन्हें मारनेको भाया उस समय शिवजीने उसे मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ त्रि [illegible] जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित किया तब इन्द्रने गुप्तरूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते [illegible] [illegible] इन्द्रके साथ हुआ तब इन्द्रने दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांगकर वज्र बनाय उससे वृत्रासुरका संहार किया ॥३॥ नमुचि [illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥ [illegible]

खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेपर अकम्पननामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायनकर लंकामें जाकर रावणसे कहनेलगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे गये और उनके स्वामी खरकाभी संहार होगया । और मैं किसी भांतिसे जीता बच यहां भागकर आयाहूं ॥ २ ॥ जब अकम्पनने ऐसा कहा तो क्रोधमें भरनेके कारण रावणके नेत्र लाल होआये और वह अपने तेजसे अकंपनको भस्मसा करताहुआ बोला ॥ ३ ॥ किसकी उमर बीत चुकी ? त्रिलोकीमें किसको आश्रय मिलना दुर्लभ हुआहै ? वह कौनहै ? जिसने हमारा महाभयंकर जनस्थान ध्वंस कर दिया ॥ ४ ॥ हमारा अप्रिय कार्य करके इन्द्र, यम, कुबेर अथवा विष्णुभी सुखसे नहीं रह सकते ॥ ५ ॥ हम कालकेभी कालहैं हम अग्निकोभी जला सकतेहैं, अधिक क्या कहैं हम मृत्युकोभी मृत्युधर्ममें

त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः ॥ प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः ॥ खरश्चनिहतःसंख्येकथंचिदहमागतः ॥ २ ॥ एवमुक्तोदशग्रीवःक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ अकंपनमुवाचेदंनिर्दहन्निवतेजसा ॥ ३ ॥ तेनभीमंजनस्थानंहतंममपरासुना ॥ कोहिसर्वेषुलोकेषुगतिंनाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥ नहिमेविप्रियंकृत्वाशक्यंमघवतासुखम् ॥ प्राप्तुंवैश्रवणेनापिनयमेनचविष्णुना ॥५॥ कालस्यचाप्यहंकालोदहेयमपिपावकम् ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंयोजयितुमुत्सहे ॥६॥ वातस्यतरसावेगंनिहंतुमपिचोत्सहे ॥ दहेयमपिसंक्रुद्धस्तेजसादित्यपावकौ ॥ ७ ॥ तथाक्रुद्धंदशग्रीवंकृतांजलिरकंपनः ॥ भयात्संदिग्धयावाचारावणंयाचतेऽभयम् ॥ ८ ॥ दशग्रीवोऽभयंतस्मैप्रददौरक्षसांवरः ॥ सविस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकंपनः ॥ ९ ॥ पुत्रोदशरथस्यास्तेसिंहसंहननोयुवा ॥ रामोनाममहास्कंधोवृत्तायतमहाभुजः ॥ १० ॥ श्यामःपृथुयशाःश्रीमानतुल्यबलविक्रमः ॥ हतस्तेनजनस्थानेखरश्चसहदूषणः ॥ ११ ॥ अकंपनवचःश्रुत्वारावणोराक्षसाधिपः ॥ नागेंद्रइवनिःश्वस्यइदंवचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

योजित कर सकतेहैं ॥ ६ ॥ हम क्रोधित हों तो अग्नि और सूर्यकोभी भस्म कर डालैं और हम अपने वेगसे पवनकाभी वेग रोक सकतेहैं ॥ ७ ॥ दशवदन रावण जब इस प्रकारसे क्रोधित हुआ तब अकंपनने मारे भयके हाथ जोड सन्दिग्ध वचनोंसे अभयदान मांगा ॥ ८ ॥ तब राक्षसवर दशाननने अकंपनको अभय दिया, तब अकंपन विश्वास कर स्पष्ट २ वृत्तान्त कहने लगा ॥ ९ ॥ कि श्रीराजा दशरथजीके पुत्र सिंहसमान पुष्ट अंगवाले युवाअवस्थाको प्राप्त एक रामचन्द्र नामकहैं, उनके ऊंचे स्कन्धे व बडी २ भुजाहैं ॥ १० ॥ श्यामरूप, महा यशस्वी, शोभायमान, अपने तुल्य किसी दूसरेका बल विक्रम न रखनेवाले उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें दूषणके सहित खरका संहार कियाहै ॥ ११ ॥ राक्षसोंका राजा रावण अकंपनकी यह वार्ता सुनकर मदसे अंधे सर्पकी समान श्वास लेताहुआ यह वचन कहने लगा ॥ १२ ॥

गो किसने तुम्हारे मस्तकपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ हे रावण ! विशुद्धवंश सूर्यकुलपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उवार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भू...
येंही दोनों दांत हैं उन रामरूप मदवाले हाथीको संग्राममें दर्शन करनेके योग्य आप ... पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महायशस्वी श्रीरामच...
मानो पाठ हैं चतुर राक्षसगणरूपी मृगोंके नाश करने वाले बाणही मानों जिनकेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन ! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जी...
सिंहको जगा देनेके योग्य आप नहीं हैं ॥ ४७ ॥ हे राक्षसराज ! धनुषरूप प्राणोंको हर जीतनेको समर्थ नहीं हैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर ...
दलदलमें भरे और बाणरूप तरंगोंसे युक्त घोर युद्धरूप जलसे भरे अति घोर रामरूप ... चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीतानामक उनकी स्त्री एक लोकके म...
लंकेश्वर ! राक्षसेन्द्र ! प्रसन्न होओ और प्रसन्न होकर सीधे २ लंकाको चले जाओ और

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्तस्तेजोमदःसंस्थितदोर्विषाणः ॥ उदीक्षितुंरावणनेहयु... ड्डीम् ॥ २४ ॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥ वेगंग...
दग्गरसोमृगहानृसिंहः॥सुप्तस्त्वयाबोधयितुंनशक्यःशरांगपूर्णोनिशितासिदंष्ट्रः ... गाः ॥ शक्तःश्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरा...
तालमुखेतिघोरेप्रस्कंदितुंराक्षसराजयुक्तम् ॥ ४८ ॥ प्रसीदलंकेश्वरराक्षसेंद्रलंकांप्र... नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि ॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैक...
वनेषु ॥ ४९ ॥ एवमुक्तोदशग्रीवोमारीचेनसरावणः ॥ न्यवर्ततपुरींलंकांविवेशचगृ... भक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरान...
सर्गः ॥ ३१ ॥ ततःशूर्पणखादृष्ट्वासहस्राणिचतुर्दश ॥ हतान्येकेनरामेणरक्षसांभीम... प्रमथ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति॥३१॥
नादान्नादजलदोपमा ॥२॥ सादृष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामप... ३२ ॥ वाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामि...
दीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥ ४ ॥ आसीनंसूर्यसंकाशेक... नादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥ ३४ ॥

... श्रीरामचन्द्रजी भी वनमें आनंद भोगें ॥ ४९ ॥ जब मारीचने इस प्रकार कहा तब दशव... रही है इसके सब अंग बराबर हैं कोई बडा छोटा नहीं है ॥ २९ ॥ न...
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ इसी ...की स्त्री किस भाँति उसके समान होसकती है ? ॥ ३० ॥ सो अब महा...
हजार राक्षसोंको मरेहुए देखकर ॥ १ ॥ व खर, दूषण और त्रिशिराको मारा हुआ देख जायगी तब राम न बचैंगे वरन् अवश्यही मर जायँगे ॥ ३१ ॥
करनेके अयोग्य श्रीरामचन्द्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उत्कण्ठासे रावणपालिता लंका ॥ ३२ ॥ कि, अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहां जायंगे
रावण विमानमें बैठा है, देवतागण जिसप्रकार ... मरुद्गण ...

...मन आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरही है ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा ऋषि लोगोंके जीतने
...अयोग्य अति भयंकर मुँह बाये मानों दूसरा यमराजही बैठाया ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव सहित, और ऐरावत हाथीके दांतोंसे
...बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी बीसभुजा व दश शिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥ ८ ॥ वह
...जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उससे देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश थी, कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, बीसों भुजा परम सुन्दर, दांतोंकी कतार
अति सुन्दर, वदनमंडल अतीव महान, आकार पर्वतकी समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेसे व और २ अनेक

...देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥ ६ ॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रै
...रुत्कृष्टकिणवक्षसम्॥७॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥८॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥
...सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् ॥ १० ॥ अहतांगैः
...समस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा ॥ अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥११॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुराणांचप्रमर्दनम् ॥ उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदा
...राभिमर्शनम् ॥१२॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभोगवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम् ॥ १३ ॥ तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यज
...हारयः ॥ कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्यनरवाहनम ॥ १४ ॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहारयः ॥ वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥ १५ ॥

...महा संग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥ और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान न
...होने समुद्रोंकोभी गदलानेकी जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेवाला ॥ ११ ॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाड डालनेवाला देवताओंका
...करनेवाला सब धर्मोंका जडसे उखाडनेवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोगकारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती
... ॥ १३ ॥ तक्षकनामक सर्पको पराजय करता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलास पर्वतपर गमन करके नरवा...
...हरण करनेवाला; चैत्ररथनामक दिव्यवन, नलिनी, नन्दन कानन, ॥ १५ ॥

गौरभी सब देवताओंके उयानोंका विनाश क्रोधसे जिसने करदिया है. फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्यको ॥ १६ ॥ दोनों बाँहोंसे निवारण करनेवाला तोंके समान ऊंचा व वीर्यवान् व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीको अपने सब शिर काट २ कर जिसने चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥ १८ ॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कुछ न समझ उनसे अभय नहीं माँगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ़ २ कर जिसकी स्तुति करनेलगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान् रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनेके समय यज्ञको ध्वंसकर देता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूर कार्योंको कियाकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कश था अनेक प्रकारकी पीडा देकर सब लोकोंका भय

विनाशयतियःक्रोधादेवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चंद्रसूर्यौमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यांयःशैलशिखरोपमः ॥ दशवर्ष सहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥ १७ ॥ पुरास्वयंभुवेधीरःशिरांस्युपजहारयः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः ॥ १८ ॥ अभयंयस्यसंग्रामेमृत्यु तोमानुषादृते ॥ मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥ १९ ॥ हविर्धानेषुयःसोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानामहितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानांसर्वलोकभयावहम् ॥२१॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभरणंदिव्य माल्योपशोभितम् ॥२२॥ आसनेपूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदनम् ॥२३॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभ यविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीत चारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

उपजानेवाला होनेके कारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखाने अपने क्रूर महाबली भ्राताको देखा। वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहने, और दिव्य माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भलीप्रकारसे बैठाथा, उस काल कालकी मूर्तिसा प्रतीत होताथा ऐसा राक्षसनाथ महाभाग,पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेवाला ॥२३॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीने जो नाक कान काट डालेथे इस कारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥ इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई लोभसे मोहित भय दिखाती हुई दीप्तिमान् बड़े नेत्र वाले रावणसे बोली॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीका...

सामने कडुवे वचन कहने लगा ॥ १ ॥

उस समय दीन होरही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानेवाले रावणसे मंत्रिगणके सामने कडुवे वचन कहने लगा ॥ १ ॥ किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेके योग्य
होकर सदाही कामभोगमें मतवाले रहते हो और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेके योग्य
जो इस समय भयंकर विपद आ पहुँची है, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी
और लोभी होता है। प्रजागण श्मशानकी अग्निके समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३ ॥ जो राजा यथाकालमें अपने सब कार्योंको नहीं करता है वह
राजा और उसके कार्य न करनेसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका
हाल नहीं जानता है तौ हाथी जिस प्रकार दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देते हैं ॥ ५ ॥ औरभी

ततःशूर्पणखादीनारावणंलोकरावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥१॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नंभयंघोरंबो
द्धव्यंनावबुध्यसे॥२॥ सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः॥३॥ स्वयंकार्याणियःकालेनानुतिष्ठतिपा
र्थिवः ॥ सतुवैसहराज्येनतैश्वकार्यैर्विनश्यति ॥४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥ वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥५॥ येनरक्षंति
विषयमस्वाधीनं नराधिपाः ॥ तेनवृद्धयाप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः ॥ अयुक्तचारश्चपलःकथंराजाभवि
ष्यसि ॥७॥ त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्चराक्षस ॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि ॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधी
नानरेंद्राणांप्राकृतैस्तेजनैःसमाः ॥ ९ ॥ यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्मादुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः ॥ १० ॥

जो नृपति लोग अपने आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करके अपने वश नहीं कर लेते, वह समुद्रमें पडे हुये पर्वतोंकी समान प्रकाशको नहीं प्राप्त होते ॥
॥ ६ ॥ एक तो तुम स्वभावसेही चंचल हो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्धचित्त देव दानव और गन्धर्वोंसे वैर करके तुम किस प्रकार
राज्य कर सकोगे ? ॥ ७ ॥ हे राक्षस ! तुम बुद्धिरहित हो, बालकोंकासा तुम्हारा स्वभाव है और जिस बातको जानना उचितहै, उसको भी नहीं जानते भला फिर
किसप्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे ? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ ! जिन राजा लोगोंके आधीन खजाना, दूत और नीति नहीं होती, ऐसे राजा लोग
साधारण मनुष्योंके समान हैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सब जगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहते हैं इसी कारण वह दीर्घचक्षु कहे

जाते हैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि, तुमने कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाश होगयाहै उनको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो ! अतिकठिन कर्म करनेवाले रामचन्द्रने इकलेही भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले ॥ १२ ॥ उन रामचंद्रने ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ परन्तु हे रावण ! तुम तो लोभी मदवाले और सदाही पराये आधीन रहनेवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि, तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुँचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ और अल्पदान करनेवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेके लिये कोई यत्न नहीं करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करता है, कोई जिसकी

अयुक्तचारंमन्येत्वांप्राकृतैःसचिवैर्युतः ॥ स्वजनंचजनस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥ ११ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेनरामेण खरश्चसहदूषणः ॥१२॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ १३ ॥ त्वंतुलुब्धःप्रमत्तश्चपराधीनश्चराक्षस ॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥ १४ ॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥ १५ ॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोपिनराधिपम् ॥ १६ ॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्याच्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥ शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्टैरपिचपांसुभिः ॥ नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः ॥ १८ ॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोपिनिरर्थकः ॥ १९ ॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशीलश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥

बातको नहीं सुनते । विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥ १६ ॥ जो राजा राजकार्यको अपने हाथसे नहीं करता और भय होनेपरभी नहीं डरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबही कोई उसे तृणके समान जानने लगतेहैं ॥ १७ ॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य होसकते हैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता ॥ १८ ॥ पहरा हुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसी कार्यकी नहीं होती । राज्य भ्रष्ट राजाभी ऐसेही शक्तिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भाँतिसे जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, और धर्ममें रत होतेहैं वही राजपद [illegible] होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र [illegible]

वह राजाही लोकममाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण ! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्वनाश हुआ और तुमने दूतोंके द्वारा उसका कुछभी वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुम केवल पराया अपमान करते हो सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती इस कारण तुमको शीघ्रही विपद्ग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥ धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपने समस्तदोष कहतीहुई देखकर बुद्धिलगाय बहुतही देरतक मनही मन विचारतारहा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कहरहीहै यह

त्वंतुराक्षसदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥ २२ ॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योननिराद्विपत्स्यते ॥ २३ ॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेण बलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥ ततःशूर्पणखांक्रुद्धांब्रुवतींपरुषंवचः ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिंपराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ ३ ॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेन्द्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूपश्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥६॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषान् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥

दंगकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहैं ? उनका वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आयेहैं ? ॥ २ ॥ उन्होंने जिनसे कि खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रजीके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥ हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको किसने विरूप करदिया ? सब यथार्थही कहो। जब राक्षसराज रावणने इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तान्त कहने लगी। उसने कहा रामचन्द्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घबाहु और विशालनेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥ ५ ॥ उनका धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगे हैं उस धनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंके समान प्रदीप्त नाराच रामचन्द्र

छोडते हैं यह हमने नहीं देखा कि ॥७॥ धनुषको किस समयमें खैंचतेहैं; यहभी हमने नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि वाणवर्षा करके वह संग्राममें राक्षसों का संहार करतेथे॥८॥जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देते हैं इसीप्रकार भयंकर वीर्यवान्१४०००हजार राक्षसोंको॥९॥तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचन्द्रजीने मारडाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहारकर ॥१०॥ ऋषिगणोंको अभय दे समस्त दंडकवनको मंगलमय करदिया॥११॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाककानही काटकर हमहीको अकेला छोडाहै ॥ १२ ॥ लक्ष्मणनाम रामचन्द्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपने बडे भ्राताकी तुल्यहै; वह उनकाही अनुरागी भक्तहै। वह अतिशयबुद्धिमान् बलवान् और वीर्यवान्है॥ १३ ॥ विक्रमवान्है, क्रोधि विष्टहै, सबहीको जीतनेवाला और आप किसीसे जीते जानेके योग्य नहीं है और श्रीरामचन्द्रजीके दहिनाहाथ, वरन् शरीरके बाहर रहनेवाला प्राण है ॥१४॥

नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यंपश्यामिशरवृष्टिभिः ॥८॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः ॥ रक्षसांभीमवीर्याणां सहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥ निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेणविदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १३ ॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षीपूर्णेंदुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥१५॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥ १६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥

और रामचन्द्रजीकी जो स्त्रीहै उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै, रामचंद्रको बहुत प्यार करती हैं; और वह सदा पतिकी प्यारी और हित करनेवाला कार्य करती रहती हैं ॥ १५ ॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, ऊरू और रूप अति उत्तमहै । वह मानो उस वनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमान होरही हैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै । यह अतिशय सुन्दरता युक्तहै और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंने विदेह वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी, न गन्धर्वी, न यक्षिणी, न किन्नरी किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नहीं ठहरसकती. यहांतक कि, कभी हमने इस पृथ्वीपर इस प्रकार

स्नी नहीं देगी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहो, और वह जिसको हर्षसे भरकर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन् इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जी-
विताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेके योग्य हैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीयहै । वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्या
और तुम उसकेही अनुरूप पतिहो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊँचेहैं जंघा अति विशालहै और मुखमण्डल अति श्रेष्ठहै उसको हम सोच विचार कर तुम्
भी हरनेके योग्य जानने गईथी ॥ २१ ॥ हे महाभुज ! सो इस कार्यको करतेही, क्रूर लक्ष्मणने हमारे नाक कान काट डाले, उस पूर्णचंद्रमुखवाली वि-
कुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम पुष्पबाणधारीके पुष्प बाणोंका लक्ष्य बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेका तुम्हारा आशय हो तो शीघ्रही रामचंद्रके जीतने

यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत्॥ अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥ १९ ॥ सासुशीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ तवा
नुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥ २० ॥ तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताहंवराननाम् ॥ २१ ॥ विरू
पितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ २२ ॥ मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि ॥ यदितस्याम
भिप्रायोभार्यात्वेतवजायते ॥ शीघ्रमुद्ध्रियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः ॥ २३ ॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनं
ममरावण ॥ २४ ॥ विज्ञायेषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हतां
जनस्थानगतान्निशाचरान् ॥ खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये
ऽरण्यकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम् ॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥ तत्कार्यमनुग
म्यांतर्यथावदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥

दहिना चरण आगे धरकर चलो ॥ २३ ॥ हे राक्षसराज रावण ! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचाहो तो जो हमने कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥ २४ ॥
हे महाबल ! तुम उनको असमर्थ और अपनेको समर्थ जानकर इस सर्वांग सुन्दरी सीताको स्त्री बनानेमें यत्नवान होओ ॥२५॥ रामचंद्रजीने सीधे चलनेवाले बाण
समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खरदूषणके सहित मारडालाहै यह सुनकर अब जो कुछ कर्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्-
मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुर्स्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ शूर्पणखाके यह रोमहर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले
रावण जनस्थानमें जानेको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेके समय उस कार्यको भली भांतिसे छानकर, और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार क

गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसको जानकीका हरलाना महात्मा रामचन्द्रजीसे वैर करनाही ठीक जंचा ॥ २ ॥ सब कर्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिरबुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामें पहुँचकर राक्षसराज रावण गुप्तभावसे सारथिसे बोला कि, शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें शीघ्रता करनेवाले सारथीने जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥ रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाले खिचड जिसमें जुते हुए, ऐसे रथपर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेकी समान होता था। कुबेरका छोटाभाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ, नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगे थे वह दोनों

इतिकर्तव्यमित्येवकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसंचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥४॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः ॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥५॥ कामगंरथमास्थायकांचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥६॥ मेघप्रतिमनादेनसतेनधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥७॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९ ॥ कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः ॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥ १० ॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णंसहस्रशः ॥ ११ ॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभिःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥ १२ ॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्चसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥

श्वेत थे, रावणके देहकी कांति वैदूर्यमणिके समान नीली थी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुए था ॥ ८ ॥ उसके दशमुख, दश गर्दन, और बीस भुजा थीं देवगणोंके शत्रु, और मुनियोंके हनन करनेको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करके युक्त पर्वतराजसा दिखाई देता था ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानो सौदामिनीके संग श्यामघन बगलोंकी पांतिके साथ गगनमंडलमें जाता है ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीरपर पहुँचा बीचमें उसने बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीके देश देखे यह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमान थे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जलयुक्त तलैयो पद्मोंपर थीं वेदीयुक्त और बडे २ आश्रमोंसे यह देश अलंकृत था ॥ १२ ॥ [illegible]

शाल, ताल, तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगेथे ॥ १३ ॥ वह स्थान, जो सदा नियमित भोजनमें मग्न रहते एवं परमर्षियोंसे शोभायमान था नाग, गरुड, गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहांपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्होंने जीत रक्खाहै, ऐसे सिद्ध और चारणगणभी उस स्थानमें शोभित हो रहे थे, आज्य, धूम्र, वैखानस, मास, वालखिल्य, मरीचि आदिसे व्याप्त ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूषण, दिव्य माला, और दिव्यरूप स्त्रियोंसे व्याप्तथा। क्रीडा व रतिकी विधि जाननेवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करतेथे ॥ १६ ॥ देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियांभी घूम रही थीं, अमृत पीनेवाले देव दानवोंके समूह भी इधर उधर फिरते थे ॥ १७ ॥ हंस, क्रौञ्च, मण्डूक और सारससमूह चारों ओर बोलरहेथे। वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहांपर विराजतेथे और समुद्रतरंगोंकी हिलोरवश वह देश

अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णगंधर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥१४॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारणैश्चोपशोभितम् ॥ आजैर्वैखानसै र्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥१५॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥ १६ ॥ सेवितंदेवपत्नी भिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥ देवदानवसंघैश्चचरितंत्वमृताशिभिः ॥१७॥ हंसक्रौंचप्लवाकीर्णंसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रंसागरतेजसा ॥ १८ ॥ पाण्डुराणिविशालानिदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमानानिसमंततः ॥१९॥ तपसाजितलोकानांकामगान्यभिसंपतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥ २० ॥ निर्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः ॥ वनानिपश्यन्सौम्यानिघ्राणतृप्तिकराणिच ॥ २१ ॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधिनाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिचस्यच ॥ मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥ २३ ॥ शैलानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच ॥ २४ ॥

सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तुओंके सिवाय, रावण दिव्यमालायुक्त, गीत और बाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेतवर्ण विशालविमानोंको चारों ओर देखने लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने अपने तपोबलसे अनेक लोकोंको जीत लियाहै, और इच्छाचारी विमानोंपर जो बैठे हैं, कुबेरके छोटे भाई रावणने जानेके समय मार्गमें उन गन्धर्वगणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहांपर वनमें गोंद रस मूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त करनेवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनाम एक वृक्षके फूल और काली मिर्चके गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूह गिरे हुए देखे ॥ २३ ॥ पर्वत व मूँगोंकी चट्टा

नोंके समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणने देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जलपूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित स्त्री रत्नयुक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे र
अनेक प्रकारके नगर देखते हुए रावणने शीतल मंद सुगन्ध पवनसहित ॥ २६ ॥ सिन्धुराजका अनूप किनारा देखा, वह देखनेमें स्वर्गकेही तुल्य था, वहांपर
ओरसे मुनियों करके सेवित मेघसम श्याम एक बरगदका वृक्ष देखा ॥ २७ ॥ उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरमें फैल रहीथीं जहांपर पहले बडे श
वाले हाथी और कछुएको ॥ २८ ॥ गरुडजी भोजन करनेके लिये इस पेडकी एक शाखापर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीके बोझसे उसकी एक डाली ॥ २९ ॥
जिसमें बहुत पत्र लगेथे टूट गईथी उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माप, मरीचिप, वालखिल्य ॥ ३० ॥ और धूम्रारूप परमर्पिगण मिलकर तपस्या कर

प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्नान्यद्भुतानिच ॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैराधृतानिच ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन् ॥ तंसमंसर्वतः स्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥ २६ ॥ अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम् ॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम् ॥ २७ ॥ समंताद्यस्यताः शाखाःशतयोजनमायताः ॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम् ॥२८॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः ॥ तस्यतांसहसाशाखांभारेणपतगोत्तमः ॥ २९ ॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखिल्यामरीचिपाः ॥३०॥ आजावभूवुर्धूम्राश्वसंगताःपरमर्पयः ॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥३२॥ निषादविषयंहत्वाशाखयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥३३॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः ॥ अमृतानयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमहर्पिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृतलक्षणम् ॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

थे। धर्मात्मा गरुडजीने उन ऋपियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥ टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दवाय महा
उनका मांस खाकर ॥ ३२ ॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायतासे समस्त निपाददेशको नाश करदिया इस प्रकार मुनिगणोंको बचाकर गरुडजी परमहर्षित हुएथे ॥ ३३ ॥
अनन्तर उस हर्षके बराहो गरुडजीका विक्रम दूना बढगया, तौ इस कारण मतिमान गरुडजी अमृतके लानेका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड त

परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणने देखा ॥ ३७ ॥ रावणने देखा कि मारीच...
हुआ ॥३८॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरी पार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणने देखा ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे त्रिविध भ...
निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे त्रिविध भ...
अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करताहुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थयुक्त वचन बो...
॥ ४० ॥ हे राजन् राक्षसेश्वर! आपकी और लंकाकी कुशलतातो है? फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं ॥ ४१ ॥ जब मारीचने ऐसा कहा तब ...
बोलनेमें चतुर महातेजस्वी रावणने इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचत्रिंश सर्गः ॥ ३५ ॥

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः ॥ ददर्शाश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७ ॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारं...
रीचंनामराक्षसम् ॥ ३८॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितोराजासर्वकामैरमानुपैः ॥ ३९ ॥ तंस्वयंपूजयित्वाचभो...
नोदकेनच॥ अर्थोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत्॥४०॥ कच्चित्तेकुशलंराजँल्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः॥४१॥
एवमुक्तोमहातेजामारीचेनसरावणः ॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिका...
ऽरण्यकांडे पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः ॥ आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः ॥ १ ॥ जानीषे...
नस्थानंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥ त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरा...
लब्धलक्षानिशाचराः॥ ३ ॥वसन्तिमन्नियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभी...
कर्मणाम् ॥ शूराणांलब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥५॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥

तात मारीच! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखी हैं, तुमही विपदके समय हमारी परम गतिहो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दू...
बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानेवाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुत निशाचरगण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३
मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वास करतेथे। वह सब निशाचरगण महावनमें धर्मचारी ऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इन सब राक्ष...
संख्या १४००० चौदह हजार थी, वह सबही भयंकर कर्म करनेवाले शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनेवाले थे ॥ ५ ॥ इससमय ज...

नके रहनेवाले महाबलवान खर इत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥६॥ विविध भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारणकरके व दुर्भेद्य कवच बांधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचन्द्र महाक्रोध करके ॥७॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुषपर बाण चढाय उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्य रामचंद्रने खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिमान नाराचोंसे संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडकवनको अभय करदिया । उस रामचंद्रका आचरण ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि उसके पिताने उसको निर्लज्ज जानकर स्त्रीसहित घरसे निकाल दियाहै ॥ १० ॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी. और अविजितेंद्रिय, क्षत्रियकुलकलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मारडालनेवालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही प्राणि-

नानाशस्त्रप्रहरणाःखरप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेणरणमूर्धनि ॥ ७ ॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचिच्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥ ८ ॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाःकृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षीणजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः ॥ अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः ॥ ११ ॥ त्यक्तधर्मात्त्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः ॥ येनवैरंविनारण्येसत्त्वमास्थायकेवलम् ॥ १२ ॥ कर्णनासापहारेणभगिनीमेविरूपिता ॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम् ॥ १३ ॥ आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव ॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल ॥ १४ ॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये ॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस ॥ १५ ॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव ॥ उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः ॥ १६ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर ॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥ १७ ॥

योंका अहित करनेमें रत रहता है जिसने विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया । इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जोकि देवताओंसेभी बढकर रूपमें है॥ १३॥ हम अपने विक्रमसे ले आवेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महाबलवान सहायके साथ ॥१४॥ व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच । तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थ हो ॥ १५॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो. वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १६ ॥ हे निशाचर । इसी कारणसे हम समय हम तुम्हारे समीप आये हैं, इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करना होगा सो हम कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ १७ ॥

तुम चांदी की बिन्दियें युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचन्द्रके आश्रममें जा सीताके सामने इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्र और लक्ष्मणसे यह कहैगी कि इस मृगको पकडदो ॥१९॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेके लिये आश्रमसे दूर निकल जाँयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सीताको सुखसहित निर्विघ्न ले आवेंगे, जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेता है ॥ २० ॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल होजांयगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे रामचन्द्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत होगया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटने लगा और उसके नेत्र मानों

सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ १८ ॥ त्वांतुनिःसंशयंसीताद्दष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यतामितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥ १९ ॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम् ॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥ २० ॥ ततः पश्चात्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥ २१ ॥ तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः ॥ शुष्कंसमभवद्वक्त्रंपरि त्रस्तोबभूवच ॥ २२ ॥ ओष्ठौपरिलिहन्शुष्कौनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ मृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥ २३ ॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावने रामपराक्रमज्ञः ॥ कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्य० षट्त्रिंशःसर्गः ॥३६॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥ सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः ॥ अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताश्रोताचदुर्लभः ॥ २ ॥ नन्नूनंबुध्यसेरामंमहावीर्यंगुणोन्नतम् ॥ अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥

निमेषहीन होगये । मारीच आरतभावसे मृतकतुल्य होकर रावणकी ओर देखता रहगया ॥ २३ ॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको जानता था । इसीकारणसे भयभीत और शोकितचित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपने व उसके हितके करनेवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ महातेजस्वी राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच उससे बोला ॥ ॥ १ ॥ हे राजन् ! मुहँ देखी कहनेवाले लोग बहुत मिलते हैं किन्तु सुननेमें कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहने सुननेवाले दोनोंही संसारमें कम मिलते हैं ॥ २ ॥ एक तो तुमने दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खाहै कि, जिससे सब स्थानोंका वृत्तांत तुमको मिलता रहै, दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचल

है। इसी कारणसे रामचन्द्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुवेरकी समान महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणोंकरके युक्त हैं इस बातको तुमने नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात ! रामचन्द्रसे वैर करनेमें क्या राक्षसकुलका मंगल होगा ? रामचन्द्र क्रोधित होनेपर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकते हैं? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेके लिये तो उत्पन्न नहीं हुई हैं? कहीं सीताके ले आनेका यह व्यवहार तुम्हारे दुःखका कारण न हो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलनेवाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहने सुननेवाला कोई नहीं है इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारे और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी ॥६॥ तुम्हारी समान जो राजा बुरे शीलवाला पापबुद्धि और इच्छानुसार चलनेवाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्य और अपने कुटुंबियोंको नाश करनेका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचन्द्र अपने पिता करके नहीं त्यागे गये हैं, वह मर्यादा रहित भी नहीं हैं, अथवा लोभी, दुःशील और

अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम् ॥ अपिरामोनसंक्रुद्धःकुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥ अपितेजीवितांतायनोत्पन्नाजनकात्मजा ॥ अपि सीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत् ॥ ५ ॥ अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥ ६ ॥ त्वद्विधः कामवृत्तोहिदुःशीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलुब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥ ८ ॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितेरतः ॥ ९ ॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्या सत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥ १० ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥ ११ ॥ नरामःकर्कशस्तातनाविद्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

क्षत्रियवंशके नाशकभी नहीं हैं॥८॥कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढाने वाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहीं हैं; उनका तीक्ष्ण स्वभाव नहीं है और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेमें रतभी नहीं हैं वरन् सबका हित करनेमें तत्परहैं॥९॥अपने सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगा हुआ देखकर वह रामचन्द्रजी उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनको चले आये हैं॥१०॥और पिता दशरथ, व रानी कैकेयीका प्रियकार्य करनेकी वासनासे राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचन्द्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं॥११॥हे तात! रामचन्द्र कर्कशस्वभाववाले भी नहीं हैं, मूर्ख भी नहीं हैं, अजितेन्द्रियभी नहीं हैं और मिथ्या कहनातो दूरहै, वह इस झुँठाईके प्रसंगमें भी नहीं हैं, सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहीं है ॥ १२॥ अधिक कहांतक कहूं, रामचन्द्र धर्ममूर्ति हैं, साधु हैं, सत्यपराक्रमवान्‌हैं और इन्द्र जिसप्रकार देवता

वह अपने तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करते हैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकीजीको
ग्रांके स्वामी हैं देवोंकी वडभी सब लोकोंके राजा हैं ॥ १३ ॥ वह अपने तेजसे ... ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखा
हरण करनेकी इच्छा करतेहो ? क्योंकि उनके हरण करनेकी इच्छा करना मानों सूर्यकी किरणको हाथसे पकडनाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखा
है धनुष और खड्ग जिसके ईंधन हैं, और जिसकी सीमामें गमन करना असंभव है सो उस रामरूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचित नहीं
है ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाही जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्ति है इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार
करो ॥ १६ ॥ कालके समान रामचन्द्रजीके सन्मुख राज्य सुख जीवन और अपना इष्ट छोडकर तुमको जाना उचित नहीं। यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाशहो
जायगा ॥ १७॥ उनके तेजकी तुलना नहीं है. जानकी उनकीही स्त्री है और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करतीहै । तुम किसी भांतिभी जानकीको

कथंनूनमस्यवैदेहींगुप्तांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसेप्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥१४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेंधनंरणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तंनप्रवेष्टुं
त्वमर्हसि ॥ १५ ॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणम् ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रुसेनापहारिणम् ॥ १६ ॥ राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमा
त्मनः ॥ नात्यासादयितुंतातरामांतकमिहार्हसि ॥ १७ ॥ अप्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा ॥ नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने॥१८॥
तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्यभामिनी ॥ प्राणेभ्योपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता ॥ १९ ॥ नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया ॥ दीप्त
स्यवहुताशस्यशिखार्सीतासुमध्यमा ॥ २० ॥ किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप ॥ दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेननतदंतमुपजीवितम् ॥ २१ ॥ जीवितं
चसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम ॥ सस्वैःसचिवैःसार्धंविभीषणपुरस्कृतैः ॥ २२ ॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानां
चसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २३ ॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हितंहितवनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

हरण नहीं कर सकोगे ॥ १८ ॥ सिंहके समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचन्द्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझते हैं ॥ १९ ॥ प्रज्व
लित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचन्द्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हरलानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥
हे राक्षसराज ! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्या है ? जो वनमें रामचन्द्रजी कहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी ॥ २१ ॥
देखो राज्य सुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभ हैं इनसे जो सुख भोग किया चाहो तो रामचन्द्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके
साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मनभी स्थिरकर गुण दोषोंको विचार रामचन्द्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥ २३ ॥ फिर रामचन्द्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या

न मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै। वस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंने आपका हित करनेके लिये कहे हैं क्षमा करना ॥ ॥ २४ ॥ हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इसकारण हे राक्षसनाथ! फिरभी तुम्हा हितकी युक्तियुक्त वार्त्ता कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

मैं एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥ १ ॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तकपर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेके बने कुण्डल पहरेथा। मेरे देहकी कान्ति नीले बादरोंके समानथी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाता हुआ ॥ २ ॥ मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषिलोगोंका मांस भक्षण करताथा अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं

अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्यमुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० अर० सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥ २ ॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोथधर्मात्मामद्वित्रस्तो महामुनिः ॥ ३ ॥ स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥ अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः ॥ ४ ॥ मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर ॥ इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ५ ॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ऊनद्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥ ६ ॥ कामंतुममतत्सैन्यं मयासहगमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम् ॥ ७ ॥ वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम् ॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥

जाकर राजा दशरथसे यह बोले कि, अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआहै। जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि, रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इसकारण इनको नहीं देसकते परन्तु तुम्हारा कार्य करनेके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै, जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि, आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा [illegible]

लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेमें समर्थ नहीं होगा, इस कारण हे परंतप ! तुम्हारी जो बड़ी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहे ॥९॥ १० ॥ यह महातेजस्वी रामचंद्र बालक होनेपरभी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ होंगे इससे हम इनको लेजाँयगे । हे राजन् ! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको साथले परमप्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछे जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेके लिये दीक्षित हुए, तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करतेहुए विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारी शरीर श्यामल वर्ण और अतिसुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुषचिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाकी समान उदय होते हुए

आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥ १० ॥ बालोप्येषमहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे ॥ गमिष्येराम मादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ ११ ॥ इत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥ १२ ॥ तंतथादंड कारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरो धन्वीशिखीकनकमालया ॥ १४ ॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा ॥ अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥ १५ ॥ ततोऽहंमेघसंकाश स्तप्तकांचनकुंडलः ॥ बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥ १६ ॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ १७ ॥ अवजानन्नहंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः ॥ १८ ॥ तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः ॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने ॥ १९ ॥ नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥ रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः ॥ २० ॥

दिखलाई देने लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्तकाञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वरप्रभावसे बलमदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥ मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीने तत्क्षण आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हम बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञवेदीके ऊपर को दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीने शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रमें फेंक दिया ॥ १९ ॥ हे तात ! हमारे मारनेकी इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसीकारणसे उन्होंने उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछे हम रामचंद्रजीके बाणवेगसे मूर्च्छित होकर इतनी

दूर फेंकनेसे ॥ २० ॥ गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमने तो रक्षा पाई । परन्तु कठिन कर्म करनेवाले रामचंद्रने अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपरभी हमारे सहायक सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपने आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी रीति जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ बस सीताहीके लिये, अटा और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥२५॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प होतेहैं तो वहांकी विचारी मछलियांभी गरुड करके मारडाली जाती हैं; इसी प्रकार जो

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि ॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम् ॥ २१ ॥ एवमस्मितदामुक्तःसहायास्तेनिपातिताः ॥ अकृतास्त्रे णरामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥ तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम् ॥ करिष्यस्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि ॥ २३ ॥ क्रीडारति विधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम् ॥ रक्षसांचेवसंतापमनर्थंचाहरिष्यसि ॥ २४ ॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांवि नष्टांमैथिलीकृते ॥ २५ ॥ अकुर्वतोपिपापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा ॥ २६ ॥ दिव्यचंदनदिग्धांगा न्दिव्याभरणभूषितान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥ २७ ॥ हतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः ॥ हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसित्वं निशाचरान् ॥२८॥ शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् ॥ प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम् ॥२९॥ परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरं महत् ॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे ॥ ३० ॥ भवस्वदारनिरतःस्वकुलंरक्षराक्षसान् ॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥

लोक पाप नहीं करते, ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापात्माके आश्रयमें रहनेसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन शरीरमें लगाये हुए, दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥२७॥ और मरनेसे बचे आश्रयरहित राक्षस गण कोई स्त्रीसहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥२८॥ तुम शरजालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरणकरनेकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है हे राजन् ! तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी धर्मपत्नीहीमें उनकी समस्त स्त्रियोंमें आनन्द करकर, अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, ऐश्वर्य, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥

स्मरण कर ॥ ९ ॥ मारडालनेकी इच्छासे क्रोधितहो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींग आगेको झुकाय मृगरूपसे उनपर धावमान हुए॥ १० ॥ तब उन्होंने कानके समीपतक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वह बाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले अतिघोर रक्त पीनेवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्खथे, पहलेही रामचन्द्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तोभी लडे, परन्तु हम तो उनका पराक्रम जान भागकर किसी रीतिसे बचगये, परन्तु वह हमारे सहाई राक्षस रामचन्द्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण ! हम किसीप्रकारसे रामचन्द्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तपस्वीका धर्म ग्रहणकर चित्तको

अभ्यधावंसुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः ॥ जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन् ॥१०॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रुनिबर्हणाः ॥ विकृष्यसुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः ॥ ११ ॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहिताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२ ॥ पराक्रमज्ञोरामस्यशठोदृष्टभयःपुरा ॥ समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ ॥ १३ ॥ शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्तापसोऽहंसमाहितः ॥ १४ ॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीरकृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥ १५ ॥ अपिरामसहस्राणिभीतःपश्यामिरावण ॥ रामभूतमिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे ॥ १६ ॥ राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामिविचेतनः ॥ १७ ॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण ॥ रत्नानिचरथाश्चैवत्रासंजनयंतिमे ॥ १८ ॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनतेक्षमम् ॥ बलिंवानमुचिंवापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥ १९ ॥

रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलम्बन करके तपस्या करतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामचन्द्रको मानो प्रत्येक वृक्षके तले देखते हैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामोंको जहां तहां देखते हैं । इस समस्तही वनमें मानो श्रीरामचन्द्रजी हमको दिखाई देरहे हैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर ! हम रामचंन्द्र करके रहित स्थानमें भी बराबर केवल उन्हीं रामचन्द्रको देखते हैं, वरन् स्वप्नमेंभी उनको देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं ॥१७॥ हे रावण ! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचन्द्रसे यहांतक डर गये हैं कि—रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंके आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेमेभी हमें डर लगताहै * ॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचन्द्रजीके पराक्रमको जानते

* [illegible]

है। इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है। वह राम बलि अथवा नमुचिको संहार करनेमें भी समर्थ है ॥ १९ ॥ हे रावण ! तुम रामचन्द्र साथ युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेका अभिलाष करतेहो तो हमारे साथ श्रीरामचन्द्रजीकी वार्ता मतकरो नहीं तो हम यहांसे चले जायँगे ॥ २० इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया अपराध करनेसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे अपरा… हमको नाश होना पडेगा, हे निशाचर ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो, परन्तु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपने प्राण प्यारे हैं ॥ २२ ॥ वह महातेजव… महाबुद्धिमान् महाबलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरोंके काल हैं ॥ २३ ॥यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचंद्रसे म…

रणेरामेणयुद्ध्यस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदिमांद्रष्टुमिच्छसि ॥ २० ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥२१॥ सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर ॥ कुरुयत्तेक्षमंतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥ २२ ॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वोमहाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्यमानंयदिनाभिपत्स्यसे ॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तंचरावणः ॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यमयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते ॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोषरे ॥ ३ ॥

हारा गया है; परन्तु इस विषयमें रामचन्द्रजीका क्या अपराध है सो तुम्ही सत्य २ कहो ॥ २४ ॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमने तुम्हारे मंगलकेही लिये य… सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचन्द्रसे वैर करोगे तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचन्द्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्त… तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकट है ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणने ग्रहण नहीं किये ॥ १ ॥ उस का… प्रेरित निशाचरपति रावणने मंगलजनक और युक्तियुक्त संगत वचन कहने वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचन कहे ॥ २ ॥ हे मारीच ! तुमने जो यह रा…

प्रतिकूलवचन हमसे कहे, यह अयोग्य हैं और ऊसरमें बीजबोनेकी समान ॥ ३ ॥ तुम्हारे वचन मुझे युद्धमें रामसे नहीं हरासकते कारण कि, वह मूर्ख पापशील ... साधारण मनुष्यहै ॥ ४ ॥ निष्फलहै जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेसे माता, पिता, राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर एकसाथ वनमें चला आयाहै यह मूर्खता ... तो क्याहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरके नाशकरनेवाले उस रामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रेमारीच ! ह... अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते । अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं ... सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेको तुमसे पूछते, तब तुमको उसके दोष, गुण, हानि, लाभ उपाय; इत्यादि कहने उचितथे

त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यंभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥४॥ यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥ ५ ॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगेखरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥ ६ ॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्यावर्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ ७ ॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनिश्चये॥८॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ९ ॥ वाक्यमप्रतिकूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ नाभिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्ययमस्यवरुणस्यच ॥ १२ ॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥

॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान मंत्री अपने ऐश्वर्यके अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके पूछे जानेपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि, राजाओंके समीप, उपचारयुक्त मनोहर, मंगलजनक अप्रतिकूल वचनही कहने ठीकहैं ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होता हो तो माननीय राजालोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर ! अमिततेजस्वी महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इसमेंही हे मारीच ! उनमें अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम, चंद्रमाकी शीतलताई, यम, राजकी समान दंडना, और वरुणके समान प्रसन्नता होती है ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवस्थामें पूजा व सन्मान करना योग्य है । तुम धर्मका विचार कभी ...

इन रामको ठगकर विना युद्ध किये सीताको प्राप्तकर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे निशाचर मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, यह मेरा कार्य बलसे तुमको अवश्य करना होगा कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करके सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥ रामचन्द्रके निकट जानेसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेसे इसी समय तुम्हारी मृत्यु निश्चय होगी, सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो करो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ मारीच राक्षसपति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे निशाचरराज ! किस

प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥२५॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्कार्यमवश्यंमेबलादपिकरिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंनराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥१॥ केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापकर्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराजन्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥३॥ शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छतिनश्यंतंस्वकृतेननिशाचर॥५॥वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णन्तिसर्वशः ॥६॥ अमात्यैःकामवृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥

पाप कर्म करनेवाले पुरुषने तुम्हें राज्य, मंत्रिवर्ग और पुत्रोंके सहित विनाश होनेका यह उपदेश दियाहै ? ॥ २ ॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखी नहीं होसकताहै जिस पापीने उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै ? ॥ ३ ॥ हे राक्षसनाथ ! तुम्हारे हीनवीर्य शत्रु लोग निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ ४ ॥ हे रावण ! किस दुष्ट बुद्धिवालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै ? उसदुष्टका यही अभिलाष है कि, तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ हे रावण ! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेके योग्य नहीं होते, परन्तु जो खोटे रस्तेमें [illegible] नहीं रोकें यही मारडालनेके योग्यहैं ॥ ६ ॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्गमें चलना चाहतेहो और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सम

...समझ सकते हैं ॥ ७ ॥ हे निशाचर ! हे विजय करने वालोंमें उत्त-
सकतमें नहीं गेरते. अब मंत्रियोंको राजा कुमार्गसे निग्रहीत करना चाहिये ... समझ सकते हैं ॥ ८ ॥ और जो स्वामीकीही प्रसन्नता न हुई तो सबही व-
मंत्रिगण ... स्वामीकीही प्रसन्नतासे धर्म, अर्थ, काम व यशको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्ति
... और स्वामीके गुणोंमें विकार होनेके कारण सबही दुःख ... हैं और प्रजापरभी महाभय प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ हे निशाचर ! अति तीक्ष्ण स्वभाववाला सबका अनभल चाहनेवा-
... होतेहैं, इस कारण सबही अवस्थामें भलीभाँति राजाकी रक्षाकरनी ठीकहै ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञा राजासे कहकर प्रकाशित क-
... और नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥ इस लो-
... फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं, जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हाकनेवाले मंदबुद्धि सारथीभी मालिकके साथ रथगिरनेसे नष्ट होतेहैं ॥ १३ ॥

...धर्मश्चकामश्चयशश्चजयतांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥ ८ ॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामि-
...र्घर्मनर्थनकामंनयशश्चजयतांवर ... राज्यंपालयितुं
...नृपात्वाम्नुवर्तिनोजनाः ॥ ९ ॥ राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्योनराधिपः ॥ १० ॥
...शक्यंनतीक्ष्णेननिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यंतेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसा-
...रथयो यथा ॥ १२ ॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्ती-
...रावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनायथा ॥ १४ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ १५ ॥
...तदिदंकाकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥ १६ ॥ मांनिहत्यतुरामोसावचिरात्त्वांवधिष्यति ॥
...कृतकृत्योस्मिम्रियेयंचाप्यरिणाहतः ॥ १७ ॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानंचहतंविद्धिहृत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

... धर्मानुष्ठान किये आगे ... अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त होगयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन ! प्रजा प्रतिकूलाचारी ती-
... राजासे रक्षित होकर, सियारोंसे रक्षित बकरीआदि मृगगणोंकी नाईं आगे वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण ! तुम खोटीबुद्धिवाले
...इन्द्रियोंके वश हुए हो, कठोर स्वभाववाले हो, ऐसे तुम जिनके राजाहो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जाँयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम स-
...सहित शोचनीय हो, देखो तुम्हारा हमारे ऊपरभी काकतालीय न्यायकी समान अकस्मात यह घोर दुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्र
... फिर तुम्हारा संहार करेंगे । ... शत्रुके हाथसे मारे जानेपर हम तो कृतार्थ होजाँयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानो कि, हम तो रामको

तेही मरे धरेहैं और यहभी भलीभाँति समझ रक्खो कि, सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरीकी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन हितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजातीहै वह किसी सुहृद्के हितकारी वचनोंको नहीं माना करता ॥ २० ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलते हैं ॥ १ ॥ वह धनुर्बाणधारी और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर देखैं तौ तुम अपने व हमारे प्राण गएही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचंद्रजीसे कैसाही

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमयाहितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदं निशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांड एकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामंपराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवशवर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयुक्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥

पराक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं लौट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचन्द्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीताहुआ रहना संभव नहीं, क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो। हम तुम्हारा करही क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभाँति भेटा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ । पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्नविभूषित [illegible]

नहीं मरे धरेहैं और यहभी भलीभाँति समझ रक्खो कि, सीताको हरणकरतेही तुमभी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरीकी, व निशाचर गणोंकी किसीकीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन हितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश होजायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजातीहै वह किसी सुहृद्के हितकारी वचनोंको नहीं माना करता ॥ २० ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलते हैं ॥ १ ॥ वह धनुर्बाणधारी और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर देखैं तौ तुम अपने व हमारे प्राण गएही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचंद्रजीसे कैसाही

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमयाहितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदं निशाचर ॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः ॥ गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्टश्चाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा ॥ मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥ २ ॥ नहिरामंपराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते ॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतु कर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि ॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेस्तुनिशाचर ॥ ४ ॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः ॥ परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एतच्छौटीर्ययुक्तंतेमच्छंदवशवर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः ॥ मयासहरथोयुक्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥

पराक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं लौट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचन्द्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान होजायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीताहुआ रहना संभव नहीं, क्योंकि तुम अतिदुरात्माहो। हम तुम्हारा करही क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज, । तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभाँति भेटा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ । पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षससे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस [illegible]

निशाचरोंकी समान नगर जुत रहे हैं वेतो ॥ ७ ॥ फिर वहां पहुँचकर विदेहराजकुमारी सीताको लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चलदेना। तब हम राम लक्ष्मण
सहित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बलपूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥ ८ ॥ ऐसा सुनकर ताडकातनय मारीचने कहा कि, बहुत अच्छा चलिये । तत्पश्चात् रावण
व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ शीघ्रतासे उस आश्रमसे चले, और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते
दण्डकारण्यमें आये जहां रामचन्द्रजीका आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणने देखा और दोनोंजने उस रत्नभूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥
और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहने लगा कि, हे सखे ! वनमें केलोंके वृक्षोंसे घिराहुआ यह रामचन्द्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे वि

प्रसोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गंतुमर्हसि ॥ तांशून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ८ ॥ ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः ॥ ततो रावण
मारीचौ विमानमिव तं रथम् ॥ ९ ॥ आरुह्यायतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैव तत्र पश्यंतौ पत्तनानि वनानि च ॥ १० ॥ गिरींश्च सरितः
सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च ॥ समेत्य दंडकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ॥ ११ ॥ ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥ अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः कां
चनभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ॥ १३ ॥ क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वय
मागताः ॥ स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ॥ स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥१५॥
मणिप्रवरशृंगाग्रः सितासितमुखाकृतिः ॥ रक्तपद्मोत्पलमुख इंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीव इंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभ
पार्श्वश्च कंजकिंजल्कसन्निभः ॥ १७ ॥ वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघः सुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥ १८ ॥ मनोहरस्निग्धव
र्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ॥ क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥ १९ ॥

हम लोग यहां आये हैं, इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो । निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४ ॥ महाअद्भुत मृगरूप धारण कर
रामचन्द्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरने लगा ॥ १५ ॥ इस मृगके सींगोंका अग्रभाग मणिप्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रि-
थी, मुख रक्तकमलके पुष्पकी समान, श्रवणयुगल इन्द्रनीलमणिकी समानथे ॥ १६ ॥ गर्दन कुछएक ऊँची, उदरभी इन्द्रनील मणिकी समता रखताथा
दोनों पार्श्व भाग महुएके पुष्पकी समान और वर्ण पद्मरागकी तुल्यथा ॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकी तुल्यथीं, दोनों जाँघ पतलीथीं सब संधियें एक दूसरीसे ग-
हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांति

ग्नोंने विभूषित था उस मारीच राक्षसने क्षण भरमें वह परमशोभायुक्त मृगमूर्ति धारण की ॥ १९ ॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमको भी ऐसे परममनोहर देखने योग्य रूपसे वह राक्षस प्रकाशमान करने लगा ॥ २० ॥ जानकीजीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्र रूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचन्द्रजीके आश्रमपर विचरने लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकड़ों चांदीके बिन्दु ऐसे लगे थे कि, जिनके देखनेसे परमप्रीति उपजे, वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कोंपलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सम्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृग मन्दगतिसे चलने लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके भाग चित्र विचित्र होनेसे उसकाल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुईथी वह यथासुखसे रामचन्द्रजीके निकट घूमने लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें

वनं प्रज्वलयन्रम्यं रामाश्रमपदं च तत् ॥ मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥ २० ॥ प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् ॥ विचरन्गच्छते शष्पं
शाद्वलानि समंततः ॥ २१ ॥ रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियदर्शनः ॥ विटपीनां किसलयान्भक्षयन्विचचार ह ॥ २२ ॥ कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारा
नितस्ततः ॥ समाश्रयं मंदगतिं सीतासंदर्शनं ततः ॥ २३ ॥ राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥ २४ ॥ पुनर्ग
त्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ॥ गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥ २५ ॥ विक्रीडंश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥ २६ ॥ मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते ॥ सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसो मृगतां गतः ॥ २७ ॥ परिभ्रमति चित्राणि मंडलानि विनिष्पतन् ॥ समुद्वीक्ष्य च
सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ॥ २८ ॥ उपगम्य समाघ्राय विद्रवंति दिशो दश ॥ राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ॥ २९ ॥ प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्ष
यति संस्पृशन् ॥ तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ॥ ३० ॥ कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥ कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा ॥ ३१ ॥

घूमनेके समय कभी दौड़ता कभी ठिठककर खड़ा होजाता, कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वीपर लेट जाता, कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृगझुण्डोंके साथ चरने लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षस मृग होगया ॥ २७ ॥ इसप्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडलोंसे कूद फांद करने लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूँघतेही दशों दिशाओंको भागने लगे । मारीच यद्यपि सदा मृगोंको मारतेहीं रहता ॥ २९ ॥ तथापि उसने अपना भाव छिपानेके लिये उन मृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करने लगा । इसी समय शुभलोचना वैदेहीजी ॥ ३० ॥ [illegible] कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट आतीथीं ॥ ३१ ॥

...मे इस प्रकारका मृगरूप धारण करलियाहै । हे पुरुषसिंह ! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अब रमणीय और परमदीप्तियुक्त है, परन्तु वास्तवमें यह मृग नहीं है ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन ! इस प्रकार रत्नचित्रित मृग कभी पृथ्वीपर नहीं हो सकता । हे जगन्नाथ ! यह निश्चयही माया है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहने लगे तब कुछएक मुस्काई हुई सीताजीने राक्षसके छलसे मोहित हो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परमहर्षित हो बोलीं ॥ ९ ॥ हे आर्यपुत्र ! इस अभिराम मृगने हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो ! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥ १० ॥ क्योंकि हमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा करते हैं, जिनकी काली और सफेद पूँछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर व किन्नरादिभी घूमते हैं जो सब महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥ १२ ॥ परन्तु हे राजन् ! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ

मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघव ॥ जगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः ॥८॥ एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता ॥ उवाचसीतासंहृष्टा छद्मनाहृतचेतना ॥ ९ ॥ आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः ॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति॥ १०॥ इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः ॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा॥ ११॥ ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा ॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः॥ १२॥ नचान्यःसदृशोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया ॥ तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः॥ १३॥ नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः ॥ द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिसन्निभः॥ १४॥ अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना॥ मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे॥ १५॥ यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव॥ आश्चर्यभूतंभवतिविस्मयंजनयिष्यति॥ १६॥ समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांचनःपुनः ॥ अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति॥ १७॥ भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणांचममप्रभो॥ मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति॥ १८॥ जीवन्नयदितेभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः ॥ अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति ॥ १९॥

ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥ इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्र हो रहाहै । मध्य २ में रत्नोंके विन्दु बने हैं । यह मृग चन्द्रमाके समान वनभूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सम्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहह ! क्या सुन्दरताई है ! अहो क्या श्रीहै ! आहा क्या शोभाहै ! क्या मधुर इसकी बोलहै ! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुराये लेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करेगा ॥ १६ ॥ जब हम वनवासके व्रतको पूरा करके फिर अपने राज्यमें चलेंगी तब यह मृग हमारे रनवासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ [illegible]

पकड मकें, तो इसका चर्मही परममनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्की पूजा करनेको हमारा अभिलाष हुआहै ॥२०॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छाचारिताहै और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहने हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम, भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग, प्रभातकालीन सूर्यकी नाई और आकाशकी समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे श्रीरामचंद्रजीके हृदयमें भी विस्मय की अवाई हुई. सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईमे रामचन्द्रजी लुभागये, तिसपै सीताजीने प्रेरणा की इस कारण हर्षितचित्त हो श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि, हे लक्ष्मण !

निहतस्यास्यसत्त्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुपात्वस्यसत्त्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥ २२ ॥ बभूव राघवस्यापिमनोविस्मयमागतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥ २३ ॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतयाचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवो हृष्टोभ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥ २४ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःस्पृहामुल्लसितामिमाम्॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशे नचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समोमृगः ॥ २६ ॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राः कनकबिंदुभिः ॥२७॥ पश्यास्यजृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्लर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥ २९ ॥

अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठी है । अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथकाननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमें भी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पँक्तियें कुछ सीधी कुछ बंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं, और तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भय्या ! मेघसे बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पानपात्रके आकारसा है । पेट शंख और मोतीकी समान है, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्य है; इसको देखनेसे किसका मन मोहित नहीं

होता ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है और नाना प्रकारके रत्नमय है ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होगा ? ॥ ३० ॥ धनुर्धारी नृपतिगण महावनमें शिकार करनेके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये बहुत मृगोंको मार डालते हैं ॥ ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोग मृगवधमें उद्यत होकर बडे २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करते हैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढता है इसलिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकी नाईं मनकी इच्छा सफल होती है ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगै तो अर्थशास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेमें कुछ दुविधा करनेकी आवश्यकता नहीं है । सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृगरत्नके श्रेष्ठ व सुवर्णमय चर्मपर बैठेंगी ॥ ३५ ॥

कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम् ॥ नानारत्नमयंदिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत् ॥ ३० ॥ मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः ॥ घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने ॥ ३१ ॥ धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥ तत्सारमखिलंनृणांधनंनिचयवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वंयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्येकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहीमयासहसुमध्यमा ॥ ३५ ॥ नकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमान्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण ॥ मायैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योऽस्यवधोमया ॥ ३८ ॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनिपुंगवाः ॥ ३९ ॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या कदली और प्रियक मृगका चर्म क्या प्रवेणीनामक छागलका चर्म, क्या मेषादिकका चर्म, कोई भी चर्म इस मृगके चर्मकी समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होता है ॥ ३९ ॥

पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार खिचडीका गर्भ अपनी माताको मार डालताहै, वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उन- संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जब कि श्राद्धके पूर्ण होने उपरान्त वातापिको राक्षसरूप धारण करनेका इच्छुक देखा तब भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि ! तू- अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीवलोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमने तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मण ! जो हमारी समा- धर्मनिरत और जितेंद्रिय पुरुपका निरादर करताहै, उस राक्षसके प्राण वातापीही की समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्य

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोश्वतरीमिव ॥ ४१ ॥ सकदाचिच्चिराल्लोकेआससादमहामुनिम् ॥ अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह ॥ ४२ ॥ समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम् ॥ उत्स्मयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥ जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरांगतः ॥ ४४ ॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोतिमन्येत धर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवेद्धतोयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः ॥ इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृत्यंरघुनंदन ॥ अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम् ॥ ४७ ॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानयितुंद्रुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यामृगत्वचि ग...स्पृहाम् ॥ ४८ ॥ त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ अप्रमत्तेनतेभाव्यमाश्रमस्तेनसीतया ॥ ४९ ॥ यावत्पृषतमेकेनसायकेननिहन्म्यहम् ॥ हत्वेतच्चर्मआदायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥

जी करके वातापिकी नाईं हमारे द्वारा मारडाला जायगा । इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्नसहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन ! हमारा कर्तव्य कार्य जानकीके अधीनहै इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इस मृगचर्म लेनेकी जानकीको बडी अभिलाषा हुई है, देखो अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेके लिये जायँगे ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा । लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तबतक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं एक बाणसे शीघ्रही मृगको मारकर इसका चर्म ले आऊंगा जबतक हम लौट कर न आवें तबतक तुम सावधानीसे

सहीत रहना ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम जानकीको लेकर अति बलवान् बुद्धिमान्, अच्छे कार्योंके करनेमें चतुर बली, श्रेष्ठ जटायुके साथ निरन्तर शंकित सावधानीसे यहांपर रहना ॥ २१ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

रघुकुलनन्दन रामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्णनिर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिरछा जिसका पिछला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करके और दो तरकश बांध करके प्रचण्ड पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगभेष मृगोंका राजा रामचन्द्रजीको अपने सम्मुख आताहुआ देखकर भयके मारे अन्तर्धानहो फिर थोडी दूरसे उनको दीख पडा ॥ ३

गृध्रराजेनानिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताचलक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा-
आ० अर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः ॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥ ततस्त्रिविन-
तंचापमादायात्मविभूषणम् ॥ आबध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै ॥ बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुन
संदर्शनेऽभवत् ॥ ३ ॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतमिवाग्रतः ॥ ४ ॥ अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्म-
हावने ॥ अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंतमिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥ ६ ॥
छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादेवददृशेमुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥ ७ ॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारी-
चोमृगतांगतः ॥ ८ ॥ आसीत्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उस ओरको धाये । और देखते हुए कि, मृग अपने रूपसे चारों ओरको प्रकाशित करता हुआ मानो सामनेही विराज रहाहै ॥ ४ ॥ कभी वह मृग शार्ङ्गपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता कभी भयसे करने लुभाता ॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रांतचित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघसमूहमें घिरेहुए शारदीय चन्द्रमण्डलकी समान मुहूर्तभरमें अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे कभी [illegible] रामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजी उसकी मायासे मोहित [illegible]

कोसमें गिरे और बहुतही थककर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेतमें बैठगये ॥ ९ ॥ मृगरूपी मारीचने उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्य मृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपने पकडनेका अभिलाषी जानकर, दौडा और मारे भयके उस समय फिर अन्तर्धान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मारडालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंने रोषसे भरकर फिर तरकससे सूर्यके समान शत्रुका नाश करनेवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥ और उसको दृढ धनुषपर चढा बलसे खैंच जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अति प्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके ऊपरही छोडा ॥ १५ ॥ शरश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रने छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय

मनमुन्मादयामासमृगरूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसंत्रासात्पुनरन्तर्हितोभवत् ॥ ११ ॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥ १२ ॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपितस्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनः ॥१३॥ संधायसुदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम् ॥ १४ ॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्मविनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥ १५ ॥ मारीचस्यैवहृदयंविभेदाशनिसन्निभः ॥ तालमात्रमथोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः ॥ १६ ॥ व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः ॥ म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम् ॥ १७ ॥ स्मृत्वातद्वचनंरक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८॥ सप्राप्तकालमाज्ञायचकारचततःस्वनम् ॥ सदृशंराघवस्येव हालक्ष्मणेतिच ॥ १९ ॥ तेनमर्मणिनिर्विद्धंशरेणानुपमेनहि ॥ मृगरूपंतुतत्त्यक्त्वाराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥

आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिरपडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेके निकट पहुँच पृथ्वीपर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसने मरनेके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारने लगा कि, किस उपायका अवलम्बन करनेसे सीता लक्ष्मणको यहां भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचा रकर अपना काम आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सम्मतिके अनुसार "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" कहकर रामचन्द्रके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्ष सने चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके अनुपम बाणसे उसका मर्मस्थान इतना बिंध गयाथा, कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं करसका और राक्षस

मूर्ति ग्रहण की ॥ २० ॥ मरनेके समय मारीचकी देह वडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें गिरा ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटताहुआ श्रीरामचन्द्रजीने देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन स्मरण करके आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेके समय विचारनेलगे कि, लक्ष्मण जीने पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकीही वात इस समय सत्य हुई यथार्थही मारीचको हमने मार डाला ॥ २३ ॥ इस समय मारीचने "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" बडे ऊँचे शब्दसे यह कहकर प्राण त्याग किये हैं, न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे ? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीके रोम खडे होगये ॥ २५ ॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका

नक्रंमसुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौराक्षसंभीमदर्शनम् ॥ २१ ॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्मरन् ॥ २२ ॥ मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥ २५ ॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविवेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वाचतत्स्वनम् ॥ २६ ॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतःपरमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम् ॥ २ ॥ आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि ॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार चिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचन्द्रजी भीत हुए ॥ २६ ॥ तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करके शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहुत करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोलीं, जाकर देखआओ रामचंद्रजीको क्या हुआ ? ॥ १ ॥ यह महाआर्त वनमें चिल्ला रहे हैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने २ ठिकाने नहीं है ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचे स्वरसे रोतेहुए अपने भ्राताकी रक्षा करना तुमको अवश्य कर्तव्य है । इस कारण तुम शीघ्रही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥

वैसेही राक्षसके वशमें पडे हैं,परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारने गमन करनेके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे
गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडतेहैं तुम्हारे भैयाभी वैसेही राक्षसके वशमें पडे हैं। तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, हे लक्ष्मण ! तुम
उसको स्मरण करके सीताजीने इस प्रकार कहे जानेपरभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये॥ ४ ॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, हे लक्ष्मण ! तुम हमको लेलेनेके लिये
रामचंद्रजीके मित्र रूपी शत्रुहो॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेके लिये नहीं जाते । इससे समझ पडा कि, तुम हमको लेलेनेके लिये
रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी यह विपद् तुमको प्रिय
लगती है और तुमको उनमें कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देखकरभी निश्चिन्त बैठे हो । किन्तु तुम जो

॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजनकात्मजा ॥ सौमित्रेमित्ररूपे
णभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥ ५ ॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वंविनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥ ६ ॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंना
नुगच्छसिराघवम् ॥ व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिनास्तिते ॥ ७ ॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धंतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिन्निहमयाभ
वेत् ॥ ८ ॥ कर्तव्यमिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः ॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृगवधूमिव ॥
पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥ १० ॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंधर्वेषुपतत्रिषु ॥ ११ ॥ राक्षसेषुपिशाचेषु के
न्नरेषुमृगेषु च ॥ दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने ॥ १२ ॥ योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम् ॥ अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

रामचन्द्रजीके अधीनमें होकर वनमें आये हो तो उनके यहां संशयापन्न होनेसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा ? जब वैदेहीजीने आँखोंमें आंसू
भरकर यह कहा कि, तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि, हे विदेहकुमारी !
नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको जीतनेमें समर्थ नहीं है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व,
पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर जीव इनमें ऐसा कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना
करसके. फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता, इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥

और रामचन्द्रजीके विना अकेली इस वनके बीच त्याग करनेकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपने बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते ॥१४॥ अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवतागणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचन्द्रजीके पराजय करनेको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करके स्थिरचित्त हूजिये ॥१५॥ आपके स्वामी रामचन्द्रजी मृगोत्तमको हनन करके शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहते हैं कि, यह शब्द उनका नहीं है और न कोई यह देवप्रेरित शब्द है ॥१६॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करके इसप्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि ! महात्मा राम करके आप हमारे निकट सौंपी गई हैं ॥१७॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेमें हमारा उत्साह नहीं होता। हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके साथ हमारी

गन्त्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहेराघवंविना ॥ अनिवार्यबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥ १४ ॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैःसेश्वरैःसामरैरपि ॥ हृदयंनिर्वृतंतेस्तु संतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥ आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम् ॥ नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदैवतः ॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामा यातस्यनरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना ॥१७॥ रामेणत्वंवरारोहेनत्वांत्यक्तुमिहोत्सहे ॥ कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशाच रैः ॥ १८ ॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधंप्रति ॥ राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥ १९ ॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियंमन्येरामस्यव्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥

शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मारने और जनस्थानको विध्वंस करनेसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके मोहिनी मायाके वचन प्रयोग किया करते हैं ॥ १९ ॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एकमात्र खेल है इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसीप्रकारसे भी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीने इसप्रकार कहा तब क्रोधके मारे जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ यह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचन्द्रको मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहीं है ॥ २१ ॥ हमने जाना कि, रामचन्द्रजीकी यह बड़ी भारी विपद् तुम्हारी परमप्यारी हुई है इसी कारण तुम उनको विपदमें पड़ा हुआ देखकर ऐसा कहते हो ॥ २२ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान नष्ट कुस्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहेगा तो इसमें आश्चर्यही क्या है ? ॥ २३ ॥ तुम्हारा स्वभाव बड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आने लगे, तब हमारा लालच करके तुमभी अकेलेही उनके साथ आये । अथवा छिपकर भरतके भेजेहुए तुम स्वामीके साथ आयेहुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमने या भरतने जो मनमें सोचा है, वह सिद्ध नहीं होगा क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी इससे हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं करसकतीं । सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन कि

नैवमिच्छसिपर्वंपुरासंल्लक्ष्मणयद्द्रवत ॥ त्वद्विधेषुनृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नः प्रयुक्तोभरतेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिद्ध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारंकामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्षणमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतयारोमहर्षणम् ॥ ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजितेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥ २८ ॥ वाक्यमप्रतिरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णाभेदकराःस्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वंतुमेसर्वेसाक्षिणोहिवनेचराः ॥ ३१ ॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोहंपरुषंत्वया ॥ धिक्कामद्यविनश्यंतींयन्मामेवंविशंकसे ॥ ३२ ॥

फिर लक्ष्मणजी हाथ जोड़कर उनसे बोले कि, आप हमारी साक्षात् देवता हैं, इस प्रकार उत्तर देनेको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपने जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये इसका कहना कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखाही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति स्वभावसेही क्रूर चपल, धर्मज्ञानहीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती है ॥ ३० ॥ अग्नितप्त बाणोंकी नाईं यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं । अच्छा ! वनवासी देवतागण सब साक्षी रहकर श्रवण करें ॥ ३१ ॥ हमने यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमने हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है । निश्चयही तुम्हारा विनाशका-

उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हमपर ऐसी शंका करती हौ ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इसलिये रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे किन्तु तुमने स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे । हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं, तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वनदेवतागण तुम्हारी रक्षा करें, हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं, इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दिनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोली ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण ! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फाँसीसे प्राण त्याग करेंगी

स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥३३॥ रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरागतः ॥ ३४ ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥ ३५ ॥ गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्मण ॥ आबंधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः ॥३६ ॥ पिबामिवाविषंतीक्ष्णंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषंस्पृशे ॥ ३७ ॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखादुदरंप्रजघानह ॥ ३८ ॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥ ३९ ॥

अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी ❀ ॥ तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इसप्रकार शोकयुक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपना उदर पीटने लगीं (सब राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह ध्वनिहै) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीने विशालनयना जनकदुलारी सीताजी

❀ पूर्व पुराणोंसे भी सिद्धहै कि जानकीकी यही प्रतिज्ञा पूर्ण थी कि अन्य पुरुषको स्पर्श न करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इसमेंभी ध्वनि निकलती है कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथी और यह [illegible] ॥

को महाआरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकीजीने अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे जितेन्द्रिय और विशुद्धचित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०आदि०आरण्यकांडे भाषाटीकायां पंचचत्वारिंशः सर्गः॥४५॥लक्ष्मणजी जानकीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्रीरामचन्द्रजीको देखनेके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामने आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे शिरपर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे बांये कंधेपर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ वह अतिबली ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप

ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य ॥ अवेक्षमाणोबहुशःसमैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः ॥ सविकांक्षन्भृशंरामं प्रतस्थेनचिरादिव ॥ १ ॥ तदासाद्यदशग्रीवःक्षिप्रमंतरमास्थितः ॥ अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥ २ ॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतःशिखीछत्री उपानही ॥ वामेचांसेऽवसज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिबलोभ्रातृभ्यांरहितांवने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः ॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥ ५ ॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः ॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥ ६ ॥ संदृश्यनप्रकंपंतेनप्रवातिचमारुतः ॥ शीघ्रस्रोताश्चतंदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥ ७ ॥ स्तिमितंगंतुमारेभेभयाद्गोदावरीनदी ॥ रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥ ८ ॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः ॥ अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशोचतीम् ॥ ९ ॥

नना सीताजीके सन्मुख हुआ, जब कि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है वैसेही विना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनेलगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे। जनस्थानके समस्त वृक्ष उग्रस्वभाव पाप करनेवाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलने झुलनेसे रहित होगये पवनका चलना बंद होगया । लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगी देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद २ बहनेलगी ॥ ७ ॥ गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद २ बहने लगा । इसी अवसरमें रामचन्द्रजीका अन्तर चाहनेवाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आन पहुँचा, यह महाकुरूप दशानन अतिरूपवती

...रनेवाली पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥ जानकीजीको ऐसे भास हुआ जिसप्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आताहै, वहां पहुँच उसने ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोंसे छिपाहुआ कुँआ हो और वहां आने वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामपत्नी जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर, वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी आंसू बहाती पतिके शोकसे पीड़ित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्षसहित पहुँचा ॥ १३ ॥ ऐसी जानकीजीको देख राक्षस कामके बाणसे पीड़ितहुवा उस समय वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहनेलगा ॥ १४ ॥ तुम तीनोंलोकमें उत्तमहो;

अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः ॥ सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥ १० ॥ अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यच तदापत्नींरामस्यरावणः ॥११॥ शुभांरुचिरदंतोष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥ १२ ॥ सतांपद्मपला शाक्षींपीतकौशेयवासिनीम् ॥ अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंर हितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम् ॥ विभ्राजमानांवपुषारावणःप्रशशंसह ॥ १५ ॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीत कौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥ १६ ॥ ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैर चारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्निग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्रेरक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥ विशालंजघनंपीनमूरूकरि करोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥

और पद्मिनीकी समान मनोहर कमल फूलोंसे समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणने की ॥१५॥ फिर कहा कि हे शुभानने ! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृश है, तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६ ॥ हे वरारोहे ! तुमहीं, श्री कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति हो या साक्षात् रति हो जो वनमें इच्छानुसार विहार करती हो सो बतलाओ कि तुम कौन हो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समान हैं, उनका अग्रभाग ऊंचा और सरस मनोहर और श्वेत वर्ण हैं। तुम्हारे नेत्र युगल विशाल, निर्मल अरुणाई लिये, और कृष्णताराओं करके युक्त हैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा जघन अतिपीन व विशाल है और जांघें हाथीकी सूंडके समान ... गोलाकार ... ॥ १९ ॥

तुम अकेली कैसे इस महावनमें नहीं डरतीहो ? हे वरानने ! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो कहांसे आई हो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥ अकेली विचरती हो ? क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्त इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसा की ॥ ३२ ॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीने यथाविधि अतिथिसत्कारसे सब भांति उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्य दर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे संन्यासीकी समान पात्र लिये जानकीजीने महात्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये इस कारण ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करके कहा ॥ ३५ ॥ हे विप्र ! आप कुशासनपर सुखसहित बैठ जाइये,

कथमेकामहारण्येनबिभेषिवरानने॥ कासिकस्यकुतश्चत्वंकिंनिमित्तंचदंडकान् ॥३१॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान्॥ इतिप्रशस्ता वैदेहीरावणेनमहात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम्॥ सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥३३॥ उपानीयासनंपूर्वंपाद्येना भिनिमंत्र्यच ॥ अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातंसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥ द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम् ॥ अशक्यमुद्द्रेष्टुमुपायदर्शनान्न्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम्॥३५॥इयंबृसीब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति ॥ इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्र मिहोपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंमनःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितं ददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अरण्यकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

और यह पाद्य ग्रहण कीजिये, व यह वनके फल सब आपकेही लिये रक्खेहैं, इनको भोजन कीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीने जब इसप्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपना मन अर्पण कर अपने वध करानेको बलपूर्वक उनके हरलेजानेका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥ परम प्रियमूर्ति रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करने गयेथे. जानकी उस समय उनकी बाट देखती हुई इधरउधर दृष्टि करने लगीं, तौ केवल चारों ओर बडे विस्तारवाली हरे वर्णकी वनभूमि ही दृष्टि आई, परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ [illegible]

जब संन्यासीवेषधारी रावणने हरण करनेके अभिलापसे इस भांति पूँछा तब सीताजी आपही आप विचार करने लगीं ॥ १ ॥ कि एक तो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इससे नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचारकर जानकीजी उससे बोलीं ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो। हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय भार्या हैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥ विवाह होनेके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमने भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरहवें वर्षमें राजा दशरथजीने मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचन्द्रजीके अभिषेक करनेका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तैयारियां होने लगीं, उस समय हमारी माननीया सासु

रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥१॥ ब्राह्मणश्चातिथिश्चैपअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्तंतुसीतावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ दुहिताजनकस्याहंमैथिलस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥ ३ ॥ उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥ ४ ॥ ततस्त्रयोदशेवर्षेराजाऽमंत्रयतप्रभुः ॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संम्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयीनामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥ ६ ॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥ ७ ॥ द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥ नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन ॥ ८ ॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयदभिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाच्ञांचकारसा ॥ ममभर्तामहातेजावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ ११ ॥

कैकेयीजीने अपने स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥ ६ ॥ कैकेयीजीने अपने सुकृतके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको वनवास, और भरतजीको अभिषेक ॥ ७ ॥ यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपने स्वामीसे दो वर मांग यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा, तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत होजायगा जो रामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ तौ हम न जियेंगी। जब कैकेयीने इस प्रकार कहा तौ हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत धनादि देनेकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीजीने न मानी उस समय महा तेजवान् हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥ १० ॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके

अठारह वर्षकी थी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥ ११ ॥ विशालनेत्र, सर्व प्राणियोंके हितकारी महा[illegible]
परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी कामसे आर्त होगये थे ॥ १२ ॥ इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचं[illegible]
अभिषेक न किया और जब रामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥ १३ ॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा कि, हे रघु[illegible]
तुम्हारे पिताजीने तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये [illegible]
रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो, पिताको इस ऋणसे छुडाओ. तब दृढव्रत हमारे [illegible]

विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥ १२ ॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत् ॥ अभि[illegible]
कायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥ कैकेयीममभर्तारमित्युवाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञतंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदा[illegible]
मिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्तव्यंनववर्षाणिपंचच ॥ १५ ॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयानृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामःकैकेयीम[illegible]
भयः ॥ १६ ॥ चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्ताममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥ १७ ॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृतमनुत्तमम् ॥ [illegible]
भ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥१८॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्रातालक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अ[illegible]
च्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानुजः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः ॥ तेवयंप्रच्युताराज्या[illegible]
केय्यास्तुकृतेत्रयः ॥ २१ ॥ विचरामोद्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्तंतुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥

श्रीरामचंद्रजीने निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढव्रतधारी स्वामीने उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया. हे [illegible] !
वह केवल लोकोंको दान किया करते हैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते, सदाही सत्य कहते हैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! [illegible]
रामचंद्रजीका श्रेष्ठव्रतहै । उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीरहैं ॥ १८ ॥ व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुषव्याघ्रहैं समरमें निहारतेही शत्रुक[illegible]
करते हैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषबाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके व हमारे साथ २ वनमें चले आये ॥ २० ॥
इसप्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारणकर दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! अब हम

तीनजन कैकेयीके कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफल, मूल और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इनमे विराजिये॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम गोत्र और वंश सत्य २ कहिये हे द्विज ! किस कारणसे आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमते हैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्य सहित समस्त लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपते हैं हम वही राक्षसोंके राजा रावणहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समान है और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो.।हे अनिन्दिते ! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हरकर लाये हैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥२८॥ तुम्हारा मंगलहो. हे जानकि ! चारों तरफ समुद्रसे घिरीहुई पर्वतके शिर त्रिकूटपर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे भामिनि ! वहां विचरण करनेपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेकी अभिलाषा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते ! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषण भूषित पांच हजार दासियें तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ "रावण यह जानता था कि, मैंने ऐसे पाप किये हैं कि, जिससे जप तप करनेसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानता था उनके हाथसे मरनेमें मुक्तिकी प्राप्ति विचारकर जानकीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचन्द्रके हाथसे ...

आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादायपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वादायामिषंबहु ॥ २३ ॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्चदंडकारण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥ २४ ॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधिपः ॥ २५ ॥ येनवित्रासितालोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥ २६ ॥ त्वांतुकांचनवर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥२८॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येममहापुरी ॥ सागरेणपरिक्षितानिविष्टागिरिमूर्धनि ॥ २९ ॥ तत्रसीतेमयासार्द्धंवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥ ३० ॥ पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥ ३१ ॥ रावणेनेवमुक्तातुकुपिताजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥

पद पाऊँगा" अनिन्दिता जनककुमारी जानकीजी राक्षसराज रावण करके इस प्रकार कही जानेपर महाकोधित हुई, और उसका अनादर करके कहने लगीं ॥ ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुके समान सबके आश्रय देनेवाले अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभ रहित हैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३३ ॥ जो सब शुभलक्षण युक्त वटवृक्षकी समान हैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३४ ॥ जो आजानु बाहुवाले हैं, विशालहृदय है, और सिंहके समान विक्रमके साथ चलनेवाले हैं हम उनहीं नृसिंह और सिंहसदृश रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान है, कीर्ति बहुतही विस्तारित होरही है और बांहें जिनकी अति बडी हैं, हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३६ ॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करते हो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू सकता ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके तेजरूप अग्निसे घिरी हमको

महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधिमिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥ ३३ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधमरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभाग महंराममनुव्रता ॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥ ३५ ॥ पूर्णचंद्राननंरामंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥ ३६ ॥ त्वंपुनर्जंबुकःसिंहींमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥ नाहंशक्यात्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥ ॥ ३७ ॥ पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचसिंहस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनादंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छसि ॥ कालकूटविषंपीत्वास्वस्तिमान्गंतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ अक्षिसूच्याप्रमृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥

तुम पानेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ३७ ॥ अरे अभागे राक्षस ! जब कि, तैंने रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याके हरनेका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूप है) अथवा तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभ है जैसे कोई दारिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपने गृहमें देखनेकी इच्छा करै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेकी इच्छा करते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहते हो, और कालविष पीकर भी इस शरीर सहित सकुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंको खुजानेकी इच्छा करते हो, या छुरेकी धारको अपनी रसनासे चाटना अच्छा समझते हो, क्योंकि जो तुम श्रीरामचन्द्र

जीकी परमप्यारी नारी हमको पानेकी इच्छा करते हो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिरसबांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चन्द्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहते हो ॥ ४२ ॥ जो कि, तुमने श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा ऐसी है, जैसे कोई जलतीहुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर ले जाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचन्द्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेकी इच्छा की है, सो यह इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके बीचमें चलनेकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें,क्षुद्रनदी व सागरमें, अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन शीशे और लोहेमें, चन्दन जल और कीचडमें,वनमें हाथी और बिलावमें जितना अन्तरहै, उतनाही अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अन्तरहै उतनाही अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम

अवसज्यशिलांकंठेसमुद्रंतर्तुमिच्छसि ॥ सूर्याचन्द्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि ॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यांयोऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥ यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरं वायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरंहंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४७ ॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थितेकार्मुकबाणपाणौ ॥ हृतापितेहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतम् ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥ तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये अरण्यकाण्डे सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

प्रभाववाली श्रीरामचन्द्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, तो यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तो तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी, अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे। जिसप्रकार घृतमें मक्खी पडजाय तो घृत दूषित नहीं होता, वरन् मक्खीही प्राण देतीहै अर्थात् हमारा कुछ न होगा तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलने लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली तन्वंगी जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थर २ कांपने लगीं ॥ ४९ ॥ तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्युसमप्रभावयुक्त रावण उनको डरानेकेलिये अपना कुल नाम और कर्म कहने लगा ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥

सीताजीने इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणने महाक्रोधित होकर भृकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णिनि ! हम कुबेरके सौतेले भाई हैं । हम महाप्रतापीका नाम दशग्रीव रावणहै तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करते हैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग और उरगगण समस्तही सदा भागते हैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारणवशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋद्धि सिद्धि से भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ हे भद्रे ! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनेवाला परमसुन्दर पुष्पकनामक विमानभी हरण करलियाहै हम उसी विमानमें बैठकर आकाशमार्गमें

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नोवरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥२॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥ ५ ॥ यस्यतत्पुष्पकंनामविमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥६॥ ममसंजातरोपस्यमुखंदृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥७॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥८॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिनचरामिच ॥ ९ ॥ ममपारेसमुद्रस्यलंकानामपुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥ प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजता ॥ हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११ ॥

चलते हैं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि ! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवतागण महाभयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग जाते हैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करते हैं, वायु वहां पर शंकासहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाशमंडलमें चन्द्रमाके समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें ? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते थामते हैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी बहनेसे रुक जाताहै ॥ ९ ॥ समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दर नगरी है वह पुरी देखनेमें इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचरगण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत पत्थरके गृह बहुतसे शोभित हो रहे हैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैदूर्य मणिके बनेहैं और परकोटा सुवर्णकाहै, चारों ओर जिसके समुद्ररूपी खाँई है, जिससे यह

पुरी परम मनोहारिणी होगई है ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूँजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथसमूह बहुत भररहे हैं । वहांकी सब फुलवाडियें अभिलषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्त हैं जिससे वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते ! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी नहीं करोगी ॥ १३ ॥ हे मनस्विनी वरवर्णिनी ! वहांपर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहै क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें स्मरण न करोगी ॥ १४ ॥ और दशरथजीने भरतजीको राज्याभिषेक करके मन्दवीर्यवाले अपने बडे पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली ! तुम उन राज्यभ्रष्ट गतचित्त तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी ? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, कामबाणसे बींधे जाकर तुम्हारे

हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसंकुलोद्यानभूपिता॥१२॥तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुंजानामानुपान्भोगान्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥१४॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतःप्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा ॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥ १६ ॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वयमागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टंप्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि ॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूरवसमुर्वशी ॥ १८ ॥ अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रातरंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥ २२ ॥

पास आपही आये हैं सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे भीरु ! हमारा निरादर करनेसे पीछे तुमको पछताना पडेगा जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मारकर संतापित हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि ! हम तुम्हारी सौभाग्यसेही आप यहां आये हैं, इससे तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावणने इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये । वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोलीं ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य उन परमपूजनीय कुबेरजीको अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेका अभिलाष करते हो ? ॥ २१ ॥ हे रावण ! तुम्हारी समान खोटी बुद्धिवाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष

जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ हे राक्षस ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करके, चाहे कोई जीवित रहजाय, परन्तु
रामभार्या हमको हरण करके कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण
करके चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो परन्तु हमसमान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पियाहुआ पुरुषभी मृत्युके हाथमे नहीं
बच सकैगा ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥
प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथ मार अपने शरीरको बहुत बढाताहुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनेमें चतुर

अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम् ॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवेत् ॥२३॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥ समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमन्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः ॥ अपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः ॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णंरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्तसी हो गईहो । क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुए ? ॥ २ ॥ हम आका
शमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकते हैं ॥ ३ ॥ और तीखे
बाणजालसे आकाशमें टिकेहुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते; और पृथ्वीमें गिरा सकते हैं तीक्ष्ण बाणोंसे ध्रुवलोककोभी नष्ट कर महातलको विदीर्ण करदूं हे अपने
चित्तमें उन्मत्त हुई मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांवरे नेत्र लाल होकर जलतीहुई अग्निके समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥
फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण दंडी भेषको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोधपरायण होकर

तपाये सोनेके बनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीस भुजावाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष बनायाथा उसको छोड दिया और वडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणने पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यके समान प्रभावाली, काले बालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये हुए जानकीजीसे कहने लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान पति हैं ॥ ११ ॥ तुम बहुत कालके लिये हमारा भजन करो, हमहीं तुम्हारे वांछित और वडाई करने योग्य पति हैं । हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा न हो ॥ ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट परिमित आयुवाले अर्थरहित राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम

दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबर धरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ त्रिषु लोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि ॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपतिः ॥ ११ ॥ मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यःपतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भ द्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम् ॥ १३ ॥ कैर्गुणैरनुरक्तासिमू ढेपण्डितमानिनि ॥ यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥ १४ ॥ अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हां प्रियवादिनीम् ॥ १५ ॥ अभिगम्यसुदुष्टात्माराक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥ १६ ॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुक रेणसः ॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः ॥ १८ ॥

अनुरागिणी हुईहो ? हे मूढे ! पंडितमानिनि मैथिलि ! जो रामचन्द्र स्त्रीके कहनेसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनेकी भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार प्रियवचन कहनेके योग्य प्रियवचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि शापके डरसे वाम बाहुसे तौ रावणने उन पद्मा क्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वतशृङ्गसदृश तीक्ष्ण डाढवाले महापर्वतुल्य

जेनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ हे राक्षस ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करके, चाहै कोई जीवित रहजाय, परन्तु रामभार्या हमको हरण करके कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण करके चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो परन्तु हमसमान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पियाहुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकेगा ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥

प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथ मार अपने शरीरको बहुत बढाताहुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनेमें चतुर

अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितुम्॥ नहिरामस्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवेत् ॥२३॥ जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥ समैथिलींपुनर्वाक्यंवभाषेवाक्यकोविदः ॥ नोन्मत्तयाश्रुतौमन्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनीमंबरेस्थितः॥ अपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥ ३ ॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभिंद्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः ॥ ५ ॥ सद्यःसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ॥ स्वंरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥ संरक्तनयनःश्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः ॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥ ७ ॥

दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्तसी हो गईहो । क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुए ? ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकते हैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिकेहुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते; और पृथ्वीमें गिरा सकते हैं तीक्ष्ण बाणोंसे भुवर्लोककोभी नष्ट कर महातलको विदीर्ण करदूं हे अपने चित्तमें उन्मत्त हुई मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांवरे नेत्र लाल होकर जलतीहुई अग्निके समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर यह कुबेरका छोटा भाई रावण दंडी भेषको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोधपरायण होकर

तपाये सोनेके अनेकूप गहनोंमे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व बीस भुजावाला होगया, और
उसने जो दंडीका भेष बनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणने पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल
रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यके समान प्रभावाली, काले बालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये हुए जानकीजीसे कहने
लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान पति हैं ॥ ११ ॥ तुम
बहुत कालके लिये हमारा भजन करो, हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करने योग्य पति हैं। हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा न हो ॥
॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ, राज्यसे भ्रष्ट परिमित आयुवाले अर्थरहित राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम

दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्ममहाकायोविहायतत् ॥ ८॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः ॥ रक्तांबर
धरस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥ ९ ॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ त्रिषु
लोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि ॥ मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशःपतिः ॥ ११ ॥ मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यःपतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भ
द्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥ १२ ॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्याच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम् ॥ १३ ॥ कैर्गुणैरनुरक्तासिमू
ढेपण्डितमानिनि ॥ यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥ १४ ॥ अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वामैथिलींवाक्यंप्रियार्हां
प्रियवादिनीम् ॥ १५ ॥ अभिगम्यसुदुष्टात्माराक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥ १६ ॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुक
रेणसः ॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥ १७॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः ॥ १८॥

अनुरागिणी हुईहो ? हे मूढे ! पंडितमानिनि मैथिलि ! जो रामचन्द्र स्त्रीके कहनेसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास
करनेकी भूमिमें वनके बीच यह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार प्रियवचन कहनेके योग्य प्रियवचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा
रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥
उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि शापके डरसे वाम बाहुसे तौ रावणने उन पद्मा
क्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वतशृङ्गसदृश तीक्ष्ण डाढवाले महासर्पतुल्य

रावणको देख भयभीत होकर दशों दिशाओंको भागगये ॥ १८ ॥ देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्णमंडित गर्दभजुताहुआ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ ... र आ पहुँचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावणने गंभीर स्वर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करके गृहीत हो जानेपर भयसे व्याकुलहो हा राम! हा राम! कहकर पुकार करने लगीं, परन्तु रामचंद्रजी उस समय ... दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कुछभी अनुराग नहीं था इस कारणसे वह अपने छुडानेके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रा... पन्नगराजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकीको हरण करके लेचला. जानकीजी ... मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप करनेलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! कामरूपी राक्षस ...

सचमायामयोदिव्यःखरयुक्तःखरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥ ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादाय वैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥ २० ॥ सागृहीतातिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी ॥ रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तःपन्नगेंद्रवधूमिव ॥ विचेष्टमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥ २२ ॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा ॥ भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथातुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापंनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपक्तये ॥ २७ ॥ त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥ २८ ॥ हंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्यधर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥

मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हा राम! तुम धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय ... अधर्मके द्वारा हरी जाती हैं सो क्यों नहीं हमें आनकर बचाते? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले! जो अविनयी होते हैं आप उनका सदाही शासन किया कर... फिर क्यों नहीं ऐसे पापात्मा रावणका शासन करतेहो? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेमें कुछ ... का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेपर अन्यायका फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमने कालके प्रभावसे चेतना रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेवाली घोर विपद्में पडना होगा ॥ २८ ॥ हाय! हम धर्मकी इच्छा करनेवाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्मपत्नी होकर भी

देखकर कहने लगे ॥ ३२ ॥ अति कौतूहल होनेके कारण धवरहरे, तोरण और अटारियोंसे परिपूर्ण लंकानगरीके देखनेकी इच्छा कियेहुए हम यहांपर आयेहैं ॥ ३३ ॥ इस नगरीके वन उपवन कानन और अच्छे २ भवन देखनेकी वासनासे हमारा आना यहांपर हुआहे ॥ ३४ ॥ कामरूपिणी लंका हनुमान्‌जीके यह वचन सुनकर फिर उनसे अतिघोर कठोर वचन बोली ॥ ३५ ॥ रे अनसमझ वानरनीच ! यह पुरी राक्षसराज रावणसे पाली जाती है सो तू हमको विना जीते इसका दर्शन न कर सकेगा ॥ ३६ ॥ तव कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी उस राक्षसी रूप धारिणी लंका अधिष्ठात्रीसे बोले कि हे भद्रे ! इस नगरीका दर्शनकर हम फिर अपने स्थानको चले जायँगे ॥ ३७ ॥ यह सुन उस लंकाने भयंकर नादकर अतिवेगसे हनुमानजीको चरणका प्रहार किया ॥ ३८ ॥

द्रष्ट्यामिनगरींलंकांसाट्टप्राकारतोरणाम् ॥ इत्यर्थमिहसंप्राप्तःपरंकौतूहलंहिमे ॥ ३३ ॥ वनान्युपवनानीहलंकायाःकाननानिच ॥ सर्वतोगृहमुख्यानि द्रष्टुमागमनंहिमे ॥ ३४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालंकासाकामरूपिणी ॥ भूयएवपुनर्वाक्यंवभापेपरुपाक्षरम् ॥ ३५ ॥ मामनिर्जित्यदुर्बुद्धेराक्षसेश्वरपालिताम् ॥ नशक्यंह्यद्यतेद्रष्टुंपुरीयंवानराधम ॥ ३६ ॥ ततःसहरिशार्दूलस्तामुवाचनिशाचरीम् ॥ दृष्ट्वापुरीमिमांभद्रेपुनर्यास्येयथागतम् ॥ ३७ ॥ ततः कृत्वामहानादंसावैलंकाभयंकरम् ॥ तलेनवानरश्रेष्ठंताडयामासवेगिता ॥ ३८ ॥ ततःसहरिशार्दूलोलंकयाताडितोभृशम् ॥ ननादसुमहानादं वीर्यवान्मारुतात्मजः ॥ ३९ ॥ ततः संवर्तयामासवामहस्तस्यसोऽगुलीः ॥ मुष्टिनाऽभिजघानैनांहनूमान्क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥ स्त्रीचेति मन्यमानेननातिक्रोधःस्वयंकृतः ॥ सातुतेनप्रहारेणविह्वलांगीनिशाचरी ॥ पपातसहसाभूमौविकृताननदर्शना ॥ ४१ ॥ ततस्तुहनुमान्वीरस्तांदृष्ट्वाविनिपातिताम् ॥ कृपांचकारतेजस्वीमन्यमानःस्त्रियंचताम् ॥ ४२ ॥ ततोवैभृशमुद्विग्नालंकासागद्गदाक्षरम् ॥ उवाचागर्वितंवाक्यंहनूमंतंप्लवंगमम् ॥ ४३ ॥ प्रसीदसुमहाबाहोत्रायस्वहरिसत्तम ॥ समयेसौम्यतिष्ठंतिसत्त्ववंतोमहाबलाः ॥ ४४ ॥

वीर्यवान् वानरशार्दूल पवननंदन हनुमानजीने लंकासे अतिशय ताडित होकर घोरगर्जना करते हुए ॥ ३९ ॥ और बायें हाथकी उंगलियोंको सकोड मुष्टी बांध क्रोधसे मूर्च्छित हो लंकाके उपर मुष्टिका प्रहार किया ॥ ४० ॥ उसको स्त्री समझकर हनुमान्‌जीने बहुत क्रोध नहीं किया और बायें हाथसे एक साधारणसाही प्रहार किया, परन्तु विकट मुखवाली और विकट दर्शनवाली राक्षसीरूपधारिणी लंका उस साधारणसेही आघातके लगतेही कांपकर उसी समय पृथ्वीपर गिरगई ॥ ४१ ॥ उसको पृथ्वीपर गिरीहुई देख तेजस्वी और वीर्यवान् पवनकुमार हनुमान्‌जीने स्त्री समझ उसके ऊपर अनुग्रह प्रकाश किया ॥ ४२ ॥ तब लंकादेवी अत्यन्त व्याकुल होकर गर्वरहित वाक्य और गद्गद कंठसे हनुमान्‌जीको पुकारकर बोली ॥ ४३ ॥ हे प्रियदर्शन महाबलवान् कपिश्रेष्ठ !

होकर दशों दिशाओंको भागगये ॥ १८ ॥ देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्णमंडित गर्दभजुताहुआ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ वह
१ ॥ उस रथको देख रावणने गंभीर स्वर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया
...जी इस करके गृहीत हो जानेपर भयसे व्याकुलहो हा राम! हा राम! कहकर पुकार करने लगीं, परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहु
... अनुराग नहीं था इस कारणसे वह अपने छुडानेके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेलगीं, परन्तु कामके वशहुआ राव
...से राक्षसराज रावण आकाशमें जानकीको हरण करके लेचला. जानकीजी कु
... महाबाहु लक्ष्मणजी ! कामरूपी राक्षस कर
... लेजाता यह

[illegible]

... निर्जिताहंत्वयावीरविक्रमेणमहाबल ॥ २५ ॥ [illegible]
... स्पर्शवधिहितःसत्योनतस्यास्तिव्यतिक्रमः ॥ २८ ॥ सीतानिमित्तं [illegible]
... रावणपालिताम् ॥ विधत्स्वसर्वकार्याणि [illegible]
... यदृच्छयात्वंजनकात्मजांसतींविमार्गसर्वत्रगतोयथासुखम् ॥ ८१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० [illegible]
... लंकांश्रेष्ठांतांकामरूपिणीम् ॥ विक्रमेणमहातेजाहनूमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥ [illegible]
... कपिकुंजरः ॥ २ ॥

[illegible]

द्वारको छोड कूदकर प्राकारपर चढ रात्रिके समय लंकानगरीमें प्रवेश करते हुये ॥ २ ॥ और कपिराज सुग्रीवजीके हितकारी हनुमान्‌जीने इस लंकानगरीमें प्रवेश करके प्रथमही शत्रुगणोंके मस्तकपर अपना वायां चरण धरा क्योंकि पंडितलोगोंने इसको शत्रुओंके पराजय करनेका मुख्य कारण बतायाहै ॥ ३ ॥ इसप्रकारसे महापराक्रमी पवनकुमार हनुमान्‌जी रात्रिके समय पुरीमें प्रवेशकर खिलेहुए पुष्पोंके समूहसे सुशोभित राजमार्गमें गमन करने लगे ॥ ४ ॥ हनुमानजीने देखा कि, हास्यसे उत्पन्न हुए मनोहर शब्दसे विनादित, विविध भाँतिके बाजोंका ध्वनि, हीरक खचित झरोखोंसे युक्त ॥ ५ ॥ और हीरे मोती मणियोंसे बनेहुये झरोखोंवाले गृहोंसे भूषित और उनकी सघनतासे मेघमाला विराजित आकाशमण्डलकी समान लंका शोभा पायरहीहै ॥ ६ ॥ पद्म स्वस्तिक आदि श्वेत बादलकी समान राक्षसोंके मन्दिरोंसे लंकापुरी शोभित होकर चमक दमक रहीथी ॥ ७ ॥ और सब ओरसे सर्वतोभद्र वर्धमान, नन्द्यावर्त स्वस्तिक आदि गृहोंसे शोभायमान थी, जिसमें चारद्वार भीतर

प्रविश्यनगरींलंकांकपिराजहितंकरः ॥ चक्रेऽथपादंसव्यंचशत्रूणांसतुमूर्धनि ॥३॥ प्रविष्टःसत्त्वसंपन्नोनिशायामारुतात्मजः ॥ समहापथमास्थायमुक्तपुष्पविराजितम् ॥४॥ ततस्तुतांपुरींलंकांरम्यामभिययौकपिः ॥ हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥ वज्रांकुशनिकाशैश्चवज्रजालविभूषितैः ॥ गृहमेघैःपुरीरम्याबभासेद्यौरिवांबुदैः ॥ ६ ॥ प्रजज्वालतदालंकारक्षोगणगृहैःशुभैः ॥ सिताभ्रसदृशैश्चित्रैःपद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥ वर्धमानगृहैश्चापिसर्वतःसुविभूषितैः ॥ तांचित्रमाल्याभरणांकपिराजहितंकरः ॥८॥ राघवार्थंचरञ्श्रीमान्ददर्शचननंदच ॥ भवनाद्भवनंगच्छन्ददर्शकपिकुंजरः ॥ ९ ॥ विविधाकृतिरूपाणिभवनानिततस्ततः ॥ शुश्रावरुचिरंगीतंत्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥ स्त्रीणांमदनविद्धानांदिविचाप्सरसामिव ॥ शुश्रावकांचीनिनदंनूपुराणांचनिःस्वनम् ॥ ११ ॥ सोपाननिनदांश्चापिभवनेषुमहात्मनाम् ॥ आस्फोटितनिनादांश्चक्ष्वेडितांश्चततस्ततः ॥ १२ ॥

व चारों ओरको द्वार लगे हों उसे सर्वतोभद्र कहतेहैं, जो इसमें पश्चिमकी ओरका द्वार न लगा हो तो इसेही नन्द्यावर्त्त कहते हैं, इसेही दक्षिणका द्वार न होनेसे वर्धमान, और पूर्वके द्वार न होनेसे स्वस्तिक कहतेहैं; इन सब शुभदायक भवनोंको जिनमें अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माला आदि भूषण धरेथे, देखते भालते सुग्रीवजीके हितकारी हनुमानजी चले जातेथे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको सिद्ध करनेके मानससे जाते हुये हनुमानजी लंकापुरीको देख २ बडे ही आनन्दित होतेथे, इस मंदिरसे उसपर कूद वह उसपरसे दूसरे घरको कूद भलीभाँति जानकीजीको खोजतेथे ॥ ९ ॥ जब एक भवनसे दूसरे भवनमें जातेहुये विविधाकार और विविधरूप भवनोंको हनुमानजी देखने लगे तब हृदय, कण्ठ और शिर इन स्थानोंमें उत्पन्न हुआ मन्द, मध्य और तारस्वर अलंकृत मनोहर गीत उन्होंने सुना ॥ १० ॥ स्वर्गमें रहनेवाली अप्सरागणोंके रागकी समान मदनमिश्रित स्त्रियोंके शब्द उनकी क्षुद्रघंटिका, व नूपुर आदिका शब्द श्रवण करते ॥ ११ ॥ उन महात्माओंके

प्रसन्न होकर हमारा उद्धार करो। स्त्रीहत्या न करो। हे सौम्य! वीर्यसम्पन्न महाबलवान् पुरुषलोग स्त्रीहत्या करनेके लिये कभी तैयार नहीं होते ॥ ४४ ॥ हे महाबलवान् वीर्यसम्पन्न कपिवर! हमहीं स्वयं लंकाकी अधिष्ठात्री हैं तुमने अपने वीर्यके प्रभावसे सबप्रकार हमको पराजित कियाहै ॥ ४५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ! स्वयं स्वयम्भू प्रजाजीने हमको जो वरदान दियाथा हम उसको वर्णन करती हैं, आप श्रवण करें. उन्होंने यह कहा कि ॥ ४६ ॥ जब कि, कोई वानर विक्रम प्रकाश करके तुमको अपने वशमें करलेगा, तबहीं तुम जान लेना कि, राक्षसोंको भय आय पहुँचाहै ॥ ४७ ॥ हे प्रियदर्शन! आज तुम्हारे दर्शन करनेसे, वह ब्रह्माजीका नियत कियाहुआ समय आय पहुँचा, यह इस अवश्य होनहार समयके टलनेकी किसी प्रकारसे संभावना नहींहै ॥ ४८ ॥ सीताके निमित्त दुरात्मा राक्षसराज

अहंतुनगरीलंकास्वयमेवप्लवंगम ॥ निर्जिताहंत्वयावीरविक्रमेणमहाबल ॥ ४५ ॥ इदंचतथ्यंशृणुमेब्रुवंत्यावैहरीश्वर ॥ स्वयंस्वयंभुवादत्तंवरदानं यथामम ॥ ४६ ॥ यदात्वांवानरःकश्चिद्विक्रमाद्वशमानयेत् ॥ तदात्वयाहिविज्ञेयंरक्षसांभयमागतम् ॥ ४७ ॥ सहिमेसमयःसौम्यप्राप्तोऽद्यतव दर्शनात् ॥ स्वयंभूविहितःसत्योनतस्यास्तिव्यतिक्रमः ॥ ४८ ॥ सीतानिमित्तंराज्ञस्तुरावणस्यदुरात्मनः ॥ रक्षसांचैवसर्वेषांविनाशःसमुपागतः ॥ ॥४९॥ तत्प्रविश्यहरिश्रेष्ठपुरींरावणपालिताम् ॥ विधत्स्वसर्वकार्याणियानियानीहवांछसि ॥ ५० ॥ प्रविश्यशापोपहतांहरीश्वरःपुरींशुभांराक्षसमुख्यपालिताम् ॥ यदृच्छयात्वंजनकात्मजांसतींविमार्गसर्वत्रगतोयथासुखम् ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० सुं० तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

सनिर्जित्यपुरींलंकांश्रेष्ठांतांकामरूपिणीम् ॥ विक्रमेणमहातेजाहनूमान्कपिसत्तमः ॥ १ ॥ अद्वारेणमहावीर्यःप्राकारमवपुप्लुवे ॥ निशिलंकांमहासत्त्वोविवेशकपिकुंजरः ॥ २ ॥

रावण और समस्त राक्षसोंके विनाशका काल आय पहुँचाहै ॥ ४९ ॥ इसलिये हे कपिश्रेष्ठ! तुम इस रावणकी पालित लंकापुरीमें प्रवेशकर अपनी इच्छानुसार सब कार्योंको पूराकरो जिस जिसकी तुमने इच्छा कीहै ॥ ५० ॥ क्या कहें, राजा रावणसे पाली जातीहुई यह मनोहर लंकानगरी शाप * ग्रस्त हुईहै, तुम इसमें प्रवेश करके अपनी इच्छानुसार सब कहीं यथासुखसे गमन करके पतिव्रता जनककुमारी सीताजीको ढूँढो ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० सुन्दर० भाषाटी० तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

महाबलवान, महातेजस्वी कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपने विक्रमसे कामरूपिणी पुरियोंमें श्रेष्ठ लंकाको भली भांतिसे जीतकर ॥ १ ॥ वह महावीर्यवान् कपिकुंजर

* भैरीवायाने शाप दियाथा, कि, जब इस पुरीमें वानरराज प्रवेश करेंगे तबही इसका नाश होजायगा।

द्वारको छोड़ कूदकर प्राकारपर चढ़ रात्रिके समय लंकानगरीमें प्रवेश करते हुये ॥ २ ॥ और कपिराज सुग्रीवजीके हितकारी हनुमान्‌जीने इस लंकानगरीमें प्रवेश करके प्रथमही शत्रुगणोंके मस्तकपर अपना बायां चरण धरा क्योंकि पंडितलोगोंने इसको शत्रुओंके पराजय करनेका मुख्य कारण बतायाहै ॥ ३ ॥ इसप्रकारसे महापराक्रमी पवनकुमार हनुमानजी रात्रिके समय पुरीमें प्रवेशकर खिलेहुए पुष्पोंके समूहसे सुशोभित राजमार्गमें गमन करने लगे ॥ ४ ॥ हनुमानजीने देखा कि, हास्यसे उत्पन्न हुए मनोहर शब्दसे विनादित, विविध भाँतिके बाजोंका ध्वनि, हीरक खचित झरोखोंसे युक्त ॥ ५ ॥ और हीरे मोती मणियोंसे बनेहुये झरोखोंवाले गृहोंसे भूषित और उनकी भवनमाले मेघमाला विराजित आकाशमण्डलकी समान लंका शोभा पायरहीहै ॥ ६ ॥ पद्म स्वस्तिक आदि श्वेत बादलकी समान राक्षसोंके मन्दिरोंसे लंकापुरी शोभित होकर चमक दमक रहीथी ॥ ७ ॥ और सब ओरसे सर्वतोभद्र वर्धमान, नन्द्यावर्त स्वस्तिक आदि गृहोंसे शोभायमान थी, जिसमें चारद्वार भीतर

प्रविश्यनगरींलंकांकपिराजहितंकरः ॥ चक्रेऽथपादंसव्यंचशत्रूणांसतुमूर्धनि ॥३॥ प्रविष्टःसत्त्वसंपन्नोनिशायामारुतात्मजः ॥ समहापथमास्थायमुक्तपुष्पविराजितम् ॥४॥ ततस्तुतांपुरींलंकांरम्यामभिययौकपिः ॥ हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ॥ ५ ॥ वज्रांकुशनिकाशैश्ववज्रजालविभूषितैः ॥ गृहमेघैःपुरीरम्याबभासेद्यौरिवांबुदैः ॥ ६ ॥ प्रजज्वालतदालंकारक्षोगणगृहैःशुभैः ॥ सिताभ्रसदृशैश्चित्रैःपद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ७ ॥ वर्धमानगृहैश्चापिसर्वतःसुविभूषितैः ॥ तांचित्रमाल्याभरणांकपिराजहितंकरः ॥८॥ राघवार्थंचरञ्श्रीमान्ददर्शचननंदच ॥ भवनाद्भवनंगच्छन्ददर्शकपिकुंजरः ॥ ९ ॥ विविधाकृतिरूपाणिभवनानिततस्ततः ॥ शुश्रावरुचिरंगीतंत्रिस्थानस्वरभूषितम् ॥ १० ॥ स्त्रीणांमदनविद्धानांदिविचाप्सरसामिव ॥ शुश्रावकांचीनिनदंनूपुराणांचनिःस्वनम् ॥ ११ ॥ सोपाननिनदांश्चापिभवनेषुमहात्मनाम् ॥ आस्फोटितनिनादांश्चक्ष्वेडितांश्चततस्ततः ॥ १२ ॥

व चारों ओरको द्वार लगे हों उसे सर्वतोभद्र कहतेहैं, जो इसमें पश्चिमकी ओरका द्वार न लगा हो तो इसेही नन्द्यावर्त्त कहते हैं, इसेही दक्षिणका द्वार न होनेसे वर्धमान, और पूर्वके द्वार न होनेसे स्वस्तिक कहतेहैं; इन सब शुभदायक भवनोंको जिनमें अनेक प्रकारके चित्र विचित्र माला आदि भूषण धरेथे, देखते भालते सुग्रीवजीके हितकारी हनुमानजी चले जातेथे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको सिद्ध करनेके मानससे जाते हुये हनुमानजी लंकापुरीको देख २ बडे ही आनन्दित होतेथे, इस मंदिरसे उसपर कूद वह उसपरसे दूसरे घरको कूद भलीभाँति जानकीजीको खोजतेथे ॥ ९ ॥ जब एक भवनसे दूसरे भवनमें जातेहुये विविधाकार और विचित्र भवनोंको हनुमानजी देखने लगे तब हृदय, कण्ठ और शिर इन स्थानोंमें उत्पन्न हुआ मन्द, मध्य और तारस्वर अलंकृत मनोहर गीत उन्होंने सुना ॥ १० ॥ स्वर्गमें रहनेवाली अप्सरागणोंके रागकी समान मदनमिश्रित स्त्रियोंके शब्द उनकी क्षुद्रघंटिका, व नूपुर आदिका शब्द श्रवण करते ॥ ११ ॥ उन महात्माओंके

भवनसमूहोंमें स्त्रियोंके सीढियोंपर चढनेका शब्दभी सुनते, कहीं प्रसन्नतासे ताली बजानेका शब्द और कहीं कहीं सिंहनाद सुनते २ हनुमानजी ॥ १२ ॥ राक्षसोंके भवनोंमें मंत्रोंका जप सुनते और बहुत स्थानोंपर राक्षसोंको वेदाध्ययन करतेभी हनुमानजीने देखा ॥ १३ ॥ और कहीं २ लोग रावणकी स्तुति करनेमें लग रहेहैं, और अनेक राक्षसगण राजमार्गको सर्व प्रकारसे घेरे खडेहुएथे ऐसा हनुमानजीने देखा ॥ १४ ॥ अनन्तर जाते मानजी मध्यम छावनीमें आये जहां उन्होंने बहुतसे निशाचरोंको अवलोकन किया । उनमें कोई मुंडितमुंड, कोई दीक्षित, कोई जटाजूटधारी, कोई इत्यादिक रूप धारण कियेथे यह भेद लेते फिरतेथे ॥ १५ ॥ इनमें कुशोंकी मुट्ठीही किसी २ के हथियारथे, और किसी २ के अग्निकुण्ड अस्त्र शस्त्रथे, औ-

शुश्रावजपतांतत्रमंत्रान्रक्षोगृहेषुवै ॥ स्वाध्यायनिरतांश्चैवयातुधानान्ददर्शसः ॥१३॥ रावणस्तवसंयुक्तान्गर्जतोराक्षसानपि ॥ राजमार्गंसमास्थितंरक्षोगणंमहत् ॥ १४ ॥ ददर्शमध्यमेगुल्मेराक्षसस्यचरान्बहून् ॥ दीक्षिताञ्जटिलान्मुंडान्गोजिनांबरवाससः ॥ १५ ॥ दर्भमुष्टिप्रहरणाग्निकुंडायुधांस्तथा ॥ कूटमुद्गरपाणींश्चदंडायुधधरानपि ॥ १६ ॥ एकाक्षानेककर्णांश्चचलदेकपयोधरान् ॥ करालान्भुग्नवक्त्रांश्चविकटान्वामनांस्तथा ॥ १७ ॥ धन्विनःखड्गिनश्चैवशतघ्नीमुसलायुधान् ॥ परिघोत्तमहस्तांश्चविचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥ १८ ॥ नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ॥ नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्नवामनान् ॥ १९ ॥ विरूपान्बहुरूपांश्चसुरूपांश्चसुवर्चसः ॥ ध्वजिनःपताकिनश्चैवदिविधायुधान् ॥ २० ॥ शक्तिवृक्षायुधांश्चैवपट्टिशाशनिधारिणः ॥ क्षेपणीपाशहस्तांश्चददर्शसमहाकपिः ॥ २१ ॥

कोई २ कूट मुद्गर और दंडको ही आयुध बनाये हुयेथे ॥ १६ ॥ और उन समस्त निशाचरगणोंके मध्यमें किसी २ की एकही आंखथी, किसीके एकही था. किसी २ की छातीपर एकही पयोधर झूल रहा था; उनके वदन विकराल थे, अंग अत्यन्त विषम थे आकार अति विकट और अंग अति ह्- ॥ १७ ॥ सबहीके हाथमें धनुष, खड्ग, शतघ्नी, मूसल और अतिश्रेष्ठ परिघ थे, और सबकेही शरीरोंपर विचित्र कवच चमक रहेथे ॥ १ सबही न बहुत मोटे, न अति दुबले, न अति लम्बे, न अति छोटे, न अति गोरे, न अति काले, न अति कुबडे, न अति बौने ॥ १९ ॥ सबही विरूप, बहुत तेजस्वी, और सबही ध्वजा पताका और विविध आयुध धारण कियेहुये, हनुमानजीने

... वस्त्राभूषण पहर, अनेक प्रकारके वेश धारण करनेवाले इच्छानुग...
... हनुमानजीने देखे ॥ २२ ॥ बहुत सारे तीक्ष्ण शूल और वज्रलिये महाबलवान् सावधानीसे एक लक्ष राक्षस मध्यम कक्षामें स्थित हुये ॥ २३ ॥
रावणकी आज्ञामें रनवासकी रक्षा करते हुए हनुमानजीने देखे, फिर सुवर्णमय रावणका बडी ध्वजायुक्त मंदिर देखा ॥२४॥ वह राक्षसराजका विख्यात मं...
पर्वतके बीच शिखरपर बनाथा, इसके चारों ओर परिखा बनीथी जिसमें अनेक प्रकारके श्वेत पद्म खिल रहेथे ॥ २५ ॥ चारों ओरसे यह भवन अतिऊं...
भीतोंसे घिराहुआथा, और साक्षात् स्वर्ग समान दिव्य भावसे सजरहाथा मनोहर शब्द उसमेंसे उठ रहाथा ॥ २६ ॥ इसके द्वारपर घोडोंका शब्द प्रतिध्व...
होरहाथा, व अतिअद्भुत २ घोड़े बँधेथे; रथयान् विमानोंमें हाथी, व अश्व जुतेहुए थे ॥२७॥ और सब भाँतिसे सजे सजाये हाथी घोडे द्वारपर टिकाये जातेथे, उ...

स्रग्विणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ॥ नानावेषसमायुक्तान्यथास्वैरचरान्बहून् ॥ २२ ॥ तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ॥ शतसाहस्र
मव्यग्रमारक्षं मध्यमं कपिः ॥ २३ ॥ रक्षोधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शांतःपुराग्रतः ॥ स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥ २४ ॥ राक्षसेंद्रस्य विख्यातमद्रिमू
र्ध्नि प्रतिष्ठितम् ॥ पुंडरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥२५॥ प्राकारावृतमत्यंतं ददर्श स महाकपिः ॥ त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥
॥ २६॥ वाजिहेषितसंघुष्टं मद्भुतैश्च हयैस्तथा ॥ रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥ २७ ॥ वारणैश्च चतुर्दंतैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः ॥ भूषितैरुचि
रद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥ रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः ॥ राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥२९॥ स हेमजांबूनदचक्रवालं महार्ह
मुक्तामणिभूषितांतम् ॥ परार्ध्यकालागुरुचंदनार्हं स रावणांतःपुरमाविवेश ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे
चतुर्थः सर्गः ॥४॥ "चंद्रोपि साचिव्यमिवास्य कुर्वंस्तारागणैर्मध्यगतो विराजन् ॥ ज्योत्स्नावितानेन निपत्य लोकानुत्तिष्ठतेनेकसहस्ररश्मिः ॥ १ ॥

बहुत हाथी चौदन्ते व श्वेत बादरके समान बड़े २ उज्ज्वलथे और अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षी वहां द्वारपर बैठे शब्द कर रहेथे ॥ २८ ॥ वीर्यवान् हजारों लाखों
राक्षसोंसे यह भवन रखाया जाताथा, परन्तु महाकपि हनुमानजी ऐसे सुरक्षित रावणके गृहमेंभी गुप्तभावसे प्रवेश करहीगये ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे हनुमानजीने
रावणके रनवासमें प्रवेश करके देखा कि, उसके धवरहरे तप्त वर्णके सुवर्णसे बनेहैं, और उन सबके ऊपर भाग महामूल्यवान मुक्ता मणियोंके समूहोंसे सुशोभित,
और अतिश्रेष्ठ कालेरंगके अगर व चन्दनकी गन्धसे सुवासित होरहेहैं ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० सुन्दरकांडे भाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥
"चंद्रमाभी महाराजजीको मंत्रीकी नाई सहाय देताहुआ तारोंके बीचमें शोभित होने लगा और अपनी चांदनी संसारमें फैलाता हुआ सहस्र किरणोंसे युक्त उदय

॥ ॥१॥ महावीरजी उस समय चंद्रमाको शंखकी कान्ति, दुग्ध, मृणालकी समान कान्तिमान देखकर सरोवरमें हंसकी समान प्रकाशमान देखने लगे ॥२॥" अनन्तर द्धिमान पवननंदन हनुमानजीने देखा कि, रात्रिके प्रथम अधपहरमें सूर्यकी समान अधिक प्रकाशमान किरणों सहित चंद्रमा गोठमें भ्रमण करते हुये मतवाले वृषभकी समान तारागणोंके मध्यमें प्राप्त होकर वारंवार चंद्रिका राशि छिरकाते हुए विहार कर रहेहैं ॥ १ ॥ चंद्रमाके उदय दर्शन करनेसे लोकोंके समस्त पाप नाशको प्राप्त हुए, समुद्र बढा, और सबही प्राणी शोभायमान हुए ॥ २ ॥ जो लक्ष्मी पृथ्वीपर मन्दराचल पर्वतमें प्रदोप कालके समय समुद्र और दिनको जलके मध्य कमल फूलोंके समूहोंमें मिली रहती है, वही लक्ष्मी इस समय चंद्रमामें टिककर विराजमान होरहीहै ॥ ३ ॥ चांदीके पींजरोंमें हंस, मन्दराचलपर्वतकी कन्दराओंमें सिंह और गर्वित हाथियोंपर चढेहुए वीर इन सबकी समान आकाशमें उदय हुए चन्द्रमाकी कला शो

शंखप्रभंक्षीरमृणालवर्णंह्युद्गम्यमानंह्यवभासमानम्॥ददर्शचंद्रंसकपिप्रवीरःपोप्लूयमानंसरसीवहंसम् ॥२॥" ततः समध्यंगतमंशुमंतंज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमंतम् ॥ ददर्शधीमान्भुविभानुमंतंगोष्ठेवृषंमत्तमिवभ्रमंतम् ॥१॥ लोकस्यपापानिविनाशयंतंमहोदधिंचापिसमेधयंतम्॥ भूतानिसर्वाणि विराजयंतंददर्शशीतांशुमथाभियांतम् ॥२॥ याभातिलक्ष्मीर्भुविमंदरस्थायथाप्रदोषेपुचसागरस्था॥तथैवतोयेपुचपुष्करस्थाररराजसाचारुनिशाकर स्था ॥३॥ हंसोयथाराजतपंजरस्थःसिंहोयथामंदरकंदरस्थः ॥ वीरोयथागर्वितकुंजरस्थश्चंद्रोऽपिवभ्राजतथांवरस्थः ॥ ४ ॥ स्थितःककुद्मानिवती क्ष्णशृंगोमहाचलःश्वेतइवोर्ध्वशृंगः ॥ हस्तीवजांबूनदवद्धशृंगोविभातिचंद्रःपरिपूर्णशृंगः ॥५॥ विनष्टशीतांवुतुपारपंकोमहाग्रहग्राहविनष्टपंकः ॥ प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलांकोरराजचंद्रोभगवाञ्छशांकः ॥६॥ शिलातलंप्राप्ययथामृगेंद्रोमहारणंप्राप्ययथागजेंद्रः ॥ राज्यंसमासाद्ययथानरेंद्रस्त थाप्रकाशोविरराजचंद्रः ॥ ७ ॥ प्रकाशचंद्रोदयनष्टदोपःप्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः॥रामाभिरामेरितचित्तदोपःस्वर्गप्रकाशोभगवान्प्रदोपः ॥८॥

भित हो रहींथी ॥ ४ ॥ चन्द्रमाके कलंकरूप हरिण शृङ्गके स्पष्ट प्रकाशित होनेसे ऐसा बोध हुआ मानो तेज सींगवाला बैल, ऊंचे शिखावाला श्वेत वर्णका महा पर्वत, अथवा जाम्बूनद सुवर्णके बंधनसे जिसके दांत बँधेहों ऐसा हाथी शोभायमान हो रहाहै ॥ ५ ॥ वर्षा बीत जानेसे, उसका शीतल जल बिन्दुरूप कीचड दूर होग याहै । महा ग्रह सूर्यकी किरणके संबंधसे, चन्द्रमाकी प्रभा अति बढगई व प्रकाश लक्ष्मीके आश्रयवश उसका कलंकभी अतिस्पष्ट होगयाहै इस प्रकार चन्द्रमा शोभित होरहाहै ॥ ६ ॥ शिलातलपर बैठेहुए मृगराज सिंहके समान, रणके बीचमें खडे महागजकी समान, और राज्यपर स्थापित हुए राजाकी समान चन्द्रमा अतिशय शोभायमान होरहाहै॥ ७ ॥ प्रकाशमान चन्द्रमाके उदयसे समस्त अंधकारका नाश होने, राक्षसोंके और ...

प्रेमकलहके न होने, और स्वर्गका सुख प्रकाशित होनेसे प्रदोषकाल गौरवयुक्त और शोभायमान हो रहाहै ॥ ८ ॥ कानोंको सुख देने वाली मनोहर झंकार इधर उधर सुनाई आय रहीहै। पतिव्रता स्त्रियें अपने २ स्वामीके साथ शयन कररहीहैं; और अतिशय अद्भुत घोरकर्म करनेवाले भयंकर वृत्ति निशाचर राक्षस लोग इधर उधर घूमतेहुए विहार करनेमें लग रहेहैं ॥ ९ ॥ उसी समयमें परमबुद्धिमान हनुमानजीने फिर देखा कि राक्षसगणोंके समस्त गृह–रथ, अश्व और सुवर्णमय आसनोंसे पूरित होरहेहैं, वीरश्रीयुत और ऐश्वर्यमत्त व मदमत्त निशाचरगणोंसे भररहेहैं ॥ १० ॥ उनके मध्यमें प्रमत्त राक्षसोंका परस्पर अधिक उत्तर प्रत्युत्तर करते कोई दृढहाथवाले उलझनयुक्त मतवाले प्रलाप वचन परस्पर कहकर निन्दा कर रहेहैं ॥ ११ ॥ और कभी२ और कोई अपनी छातीको बजाय रहेहैं, कोई २ अपनी प्राणप्यारीको चिपटाय रहेहैं, कोई विचित्र विविध वेश धारण कररहेहैं और अनेक धनुषकोही खैंच रहेहैं ॥ १२ ॥ अनन्तर

तंत्रीस्वराः कर्णसुखाःप्रवृत्ताःस्वपंतिनार्यःपतिभिःसुपृक्ताः ॥ नक्तंचराश्चापितथाप्रवृत्ताविहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः ॥ ९ ॥ मत्तप्रमत्ता निसमाकुलानिरथाश्वभद्रासनसंकुलानि ॥ वीरश्रियाचापिसमाकुलानिददर्शधीमान्सकपिःकुलानि ॥ १० ॥ परस्परंचाधिकमाक्षिपं तिभुजांश्चपीनानधिविक्षिपंति ॥ मत्तप्रलापानधिविक्षिपंतिमत्तानिचान्योन्यमधिक्षिपंति ॥११॥ रक्षांसिवक्षांसिचविक्षिपंतिगात्राणिकांतासुच विक्षिपंति ॥ रूपाणिचित्राणिचविक्षिपंतिदृढानिचापानिचविक्षिपंति ॥ १२ ॥ ददर्शकांताश्चसमालभंत्यस्तथापरास्तत्रपुनःस्वपंत्यः ॥ सुरूपवक्त्रा श्चतथाहसंत्यःक्रुद्धाःपराश्चापिविनिःश्वसंत्यः ॥ १३ ॥ महागजैश्चापितथानदद्भिःसुपूजितैश्चापितथासुसद्भिः ॥रराजवीरैश्चविनिःश्वसद्भिर्ह्रदोभुजंगै रिवनिःश्वसद्भिः ॥ १४ ॥ बुद्धिप्रधानान्रुचिराभिधानान्संश्रद्दधानाञ्जगतःप्रधानान् ॥ नानाविधानान्रुचिराभिधानान्ददर्शतस्यांपुरियातुधा नान् ॥ १५ ॥ ननंदद्दष्ट्वासचतान्सुरूपान्नानागुणानात्मगुणानुरूपान् ॥ विद्योतमानान्सचतान्सुरूपान्ददर्शकांश्चिच्चपुनर्विरूपान् ॥ १६ ॥

हनुमानजीने देखा कि, स्त्रियें कोई अपने शरीरको चन्दनादि लगा रहीहैं, कोई शयन करतीहैं, कोई प्रफुल्लित वदनसे हँस रहीहैं, कोई २ क्रोधयुक्त होकर लम्बे २ श्वास ले रहीहैं ॥ १३ ॥ उस समय उस रनवासमें सजे सजाये मतवाले हाथियोंके समूहका गर्जन होनेसे और विभीषणादि महामान्य साधुचरित्र वीरोंके निश्वाससे श्वास लेतेहुए सर्प समूहसे परिपूर्ण ह्रदकी समान लंकापुरीकी शोभा होरहीथी॥ १४ ॥अनन्तर हनुमानजीने उस लंकापुरीमें आस्तिक, मधुर वचन बोलनेवाले, विविध वेषधारी जगत्के मध्यमें प्रधान और सुन्दर रुचिके नामधारी, मुखिया २ राक्षसोंको देखा ॥ १५ ॥ अधिक बुद्धिमान्, विविध गुणधारी अपनी समान गुणवाले और स्वरूपवान् राक्षसोंको देखकर हनुमानजीने बडे आनंदित हुए, उन राक्षसोंमें कोई २ अधिक विरूप होनेपरभी प्रभायुक्त होनेके कारण सुरूपवानकी समान

आने लगे ॥१६॥ तिसके पीछे हनुमानजीने देखा कि, उन स्थानोंमें अतिउत्तम गहनोंसे सजधजकर तारागणोंकी समान प्रियदर्शनवाली महानुभाव सुस्व युक्त निशाचारियें मद्यपानादि प्रियकार्योंमें आसक्त होकर हावभाव और कटाक्ष कररहीहैं ॥ १७ ॥ फिर हनुमानजीने रात्रिके समय चलते २ देखा कि, वेहंगी जिसप्रकार अपने स्वामीसे भेंटी जातीहै, वैसेही अपने २ स्वामियोंसे चिपटाईजाकर कोई २ कामिनी महालज्जा और हर्षके वशहो अपने रूपकी अधि काईसे मानो प्रज्वलित हो रहीहैं ॥१८॥ बुद्धिमान् हनुमानजीने फिर देखा कि कोई २ मनमानी विवाहिता पतिव्रता स्त्रियें अटारियोंके नीचे और कोई २ अपने स्वामियोंकी गोदीमें मदनयुक्त चित्तसे बैठीहैं ॥ १९ ॥ फिर हनुमानजीने देखा कि, तपायेहुए सुवर्णकी समान वर्णवाली व चन्द्रसदृश उजले वर्णयुक्त, किसी २ स्त्रीकी ओढनी नहीं है, और वह नंगी है. और कोई २ मानिनी होनेके कारण स्वामीके विनाही बैठी हैं ॥ २० ॥ कोई २ मनभावते स्वामीके संगसे

ततोवगर्हाःसविशुद्धभावास्तेपांस्त्रियस्तत्रमहानुभावाः॥प्रियेपुपानेपुचसक्तभावाददर्शताराइवसुस्वभावाः॥१७॥ स्त्रियोज्वलंतीस्त्रपयोपगूढानिशी थकालेरमणोपगूढाः ॥ ददर्शकाश्चित्प्रमदोपगूढायथाविहंगाविहगोपगूढाः॥१८॥अन्याःपुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्रप्रियांकेसुसुखोपविष्टाः॥ भर्तुः पराधर्मपरानिविष्टाददर्शधीमान्मदनोपविष्टाः॥१९॥अप्रावृताःकांचनराजिवर्णाःकाश्चित्परार्ध्यास्तपनीयवर्णाः ॥ पुनश्चकाश्चिच्छशलक्ष्मवर्णाः कांतप्रहीणारुचिरांगवर्णाः ॥ २० ॥ ततःप्रियान्प्राप्यमनोभिरामान्सुप्रीतियुक्ताःसुमनोभिरामाः ॥ गृहेषुहृष्टाःपरमाभिरामाहरिप्रवीरःसददर्श रामाः ॥ २१ ॥ चंद्रप्रकाशाश्चहिवक्त्रमालावक्त्राःसुपक्ष्माश्चसुनेत्रमालाः ॥ विभूषणानांचददर्शमालाःशतह्रदानामिवचारुमालाः ॥ २२ ॥ नत्वेवसीतांपरमाभिजातांपथिस्थितेराजकुलेप्रजाताम् ॥ लतांप्रफुल्लामिवसाधुजातांददर्शतन्वींमनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥ सनातनेवर्त्मनिसं निविष्टांरामेक्षणांतांमदनाभिविष्टाम् ॥ भर्तुर्मनःश्रीमदनुप्रविष्टांस्त्रीभ्यःपराभ्यश्चसदाविशिष्टाम् ॥ २४ ॥

अतिशय प्रसन्न होरही हैं; कोई २ फूलोंके गुच्छोंको धारणकर अतिशय मनोहारिणी और हर्षयुक्त होरहीहैं, और कोई २ स्वभावसेही चित्तको खेंचे लेतीहैं ऐसी स्त्री महावीरजीने देखीं ॥ २१ ॥ शशिधरसदृश सुन्दरवदनोंके समूह, तिर्छी चितवन, सुकुमार भृकुटी और उत्तम नेत्रोंकी राशि; व दामिनी मंडलकी समान प्रभावान् गहने हनुमानजीकी दृष्टि पडे ॥ २२ ॥ परन्तु जो अतिशय कुलीन श्रेष्ठवंशमें उत्पन्न, जिनको विधाताने अपने मनकी कल्पनासे बनाया, श्रेष्ठ प्रफुल्लिता लताकी समान महासुन्दरता व सुकुमारकी खानिहैं ॥ २३ ॥ जो सदाही पतिव्रत मार्गमें सर्व भाँतिसे टिकी हुई, श्रीरामचन्द्रमेंही जिनकी केवल एक दृष्टि और श्रीरामचन्द्रही जिनके एक मात्र काम लालसा जिन्होंने स्वामीके निर्मल मनमें प्रवेशकियाहै, जो समस्त श्रेष्ठ स्त्रीकुलकी ललाम स्वरूप हैं ॥ २४ ॥

जो स्वामीके विरहमें दुःखित होकर सदाही रोती रहती हैं, पहले श्रीरामचन्द्रजीके सहवास समयमें अत्युत्तम गहनोंसे प्रथम गिन जानेके योग्य पादके जिनके कंठ :
शोभायमान करता, जिनकी भ्रुकुटियें सुकुमारहैं, व स्वर अतिमधुर, जो कि वनके मध्यमें नृत्य करती हुई मोरनीके समान देखनेमें अति मनोहर हैं ॥ २५ ॥
जो स्वामीके विरहमें भलीभाँति न प्रकाशती हुई चन्द्ररेखाकी समान, धूरियुक्त सुवर्णकी समान, व्रणयुत वर्ण रेखाकी समान अथवा पवन मथित मेघमाला :
समान अति शोचनीय मूर्ति धारण कियेहुएहैं ॥२६॥ उन नरेश्वर बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीकी भार्या सीताजीको बहुत देरतक ढूँढनेसेभी न पायकर, कपि :
हनुमानजी कुछ क्षणके लिये अत्यन्त दुःखित और शिथिलयत्न होगये ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० सुन्दरकांडे भाषाटीकायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

उत्पादितांमानुभृतस्विकंठींपुराचराहोंत्तमनिष्ककंठीम्॥सुजातपक्ष्मामभिरक्तकंठींवनेप्रवृत्तामिवनीलकंठीम्॥२५॥अव्यक्तरेखामिवचंद्रलेखांपांसु
प्रदिग्धामिवहेमरेखाम्॥क्षतप्ररूढामिववर्णरेखांवायुप्रभुग्नामिवहेमरेखाम् ॥२६॥ सीतामपश्यन्मनुजेश्वरस्यरामस्यपत्नींवदतांवरस्य ॥बभूवदुःखो
पहतश्चिरस्यप्लवंगमोमंदइवाचिरस्य ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकांडे पंचमः सर्गः ॥५॥ सनिकामंविमानेषु
विचरन्कामरूपधृक् ॥ विचचारकपिर्लंकांलाघवेनसमन्वितः ॥ १ ॥ आससादचलक्ष्मीवान्राक्षसेंद्रनिवेशनम् ॥ प्राकारेणार्कवर्णेनभास्वरेणा
भिसंवृतम् ॥ २ ॥ रक्षितंराक्षसैर्भीमैःसिंहैरिवमहद्वनम् ॥ समीक्षमाणोभवनंचकाशेकपिकुंजरः ॥ ३ ॥ रूप्यकोपहितैश्चित्रैस्तोरणैर्हेमभूषणैः॥
विचित्राभिश्चकक्ष्याभिर्द्वारैश्चरुचिरैर्वृतम् ॥ ४ ॥ गजास्थितैर्महामात्रैःशूरैश्चविगतश्रमैः ॥ उपस्थितमसंहार्यैर्हयैःस्यंदनयायिभिः ॥ ५ ॥

इच्छानुसार रूप धारण किये कपिश्रेष्ठ श्रीमान हनुमानजी सतखंड अठखंडे भवनहरोंपर, इच्छानुसार शीघ्रतासे भ्रमण करते हुए लंकापुरीमें घूमनेलगे ॥ १ ॥
और बडी शीघ्रताके साथ राक्षसराज रावणके गृहके निकट पहुँचे । यह गृह सूर्य सम प्रकाशित और चाहर दिवारीसे घिराहुआ था ॥२॥ सिंह के समान म :
बलवान् भयंकर राक्षसोंसे उस गृहको रक्षित देखकर कपिकुंजर हनुमानजीने उसको जरा २ खोजनेका विचारकिया ॥ ३ ॥ हनुमानजीने देखा कि यह भव :
पहरामारे उपगृहोंसे परिपूर्ण और विचित्र शोभासे शोभायमान होरहाहै, इसके विचित्र दरवाजे चांदीके बनेहैं, और इनपर सुवर्णके काम होरहेहैं, सबही द्वार मनोहर
प्रकारसे स्थापित कियेथे इसलिये यह गृह अतिशय शोभायमान होरहा था ॥ ४ ॥ शूरतायुक्त परिश्रमविहीन हाथियोंपर चढे महावत् गणोंसे, व अति वेगवान रथ :

सिंपर शाडे पारोंने ॥ ५ ॥ सिंह और व्याघ्र चर्मको धारण किये, सुवर्ण, चांदी व हाथीदांतकी प्रतिमाओंसे सुसज्जित और गंभीर गर्जनशाली विचित्र रथ उसके किनारे २ घूम रहेथे ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके रत्न अतिश्रेष्ठ आसन और बड़े २ रथ व महारथोंके समूहसे शोभित ॥ ७ ॥ और परमसुन्दर सुहावने अनेक प्रकारके मनोहर मृग और पक्षी इन सब वस्तुओंसे रावणका गृह भूषित और पूरित था ॥८॥ सीमारक्षक विनीतस्वभाव परमशिक्षित राक्षसगण बडी सावधानीसे उस गृहकी रक्षा कर रहे थे, और बहुत सुन्दर २ स्त्रियोंसे व्याप्त था ॥९॥ अनेक बडी स्त्रियों और प्रमोदयुक्त प्रमदाओंसे वह स्थान चारों ओर भर रहा है और अति श्रेष्ठ गहने की झनकारध्वनिसे वह स्थान सागरतुल्य गंभीरभावसे शब्दायमान होरहाथा ॥ १० ॥अधिक करके यह गृह सब राजचिह्नोंसे परिपूर्णथा, और अतिश्रेष्ठ महामोलके

सिंहव्याघ्रतनुत्राणैर्दांतकांचनराजतैः ॥ घोषवद्भिर्विचित्रैश्चसदाविचारितंरथैः ॥ ६ ॥ बहुरत्नसमाकीर्णंपराध्यासनभूषितम्॥महारथसमावापं महारथमहासनम्॥७॥दृश्यैश्चपरमोदारैस्तैस्तैश्चमृगपक्षिभिः ॥ विविधैर्बहुसाहस्रैःपरिपूर्णंसमंततः॥ ८ ॥ विनीतैरंतपालैश्चरक्षोभिश्चसुरक्षितम् ॥ मुख्याभिश्चवरस्त्रीभिःपरिपूर्णंसमंततः ॥ ९ ॥ मुदितप्रमदारत्नंराक्षसेंद्रनिवेशनम्॥ वराभरणसंह्रादैःसमुद्रस्वननिस्वनम् ॥१०॥ तद्राजगुणसंपन्नं मुख्यैश्चवरचंदनैः ॥ महाजनसमाकीर्णंसिंहैरिवमहद्वनम्॥११॥भेरीमृदंगाभिरुतंशंखघोषविनादितम् ॥ नित्यार्चितंपर्वसुतंपूजितंराक्षसैःसदा ॥ ॥१२॥समुद्रमिवगंभीरंसमुद्रसमनिःस्वनम् ॥ महात्मनोमहद्वेश्ममहारत्नपरिच्छदम् ॥ १३ ॥ महारत्नसमाकीर्णंददर्शसमहाकपिः ॥ विराजमानंवपुषागजाश्वरथसंकुलम् ॥ १४ ॥ लंकाभरणमित्येवसोऽमन्यतमहाकपिः ॥ चचारहनुमांस्तत्ररावणस्यसमीपतः ॥१५॥ गृहाद्गृहंराक्षसानामुद्यानानिचसर्वशः ॥ वीक्षमाणोप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्चचचारसः ॥ १६ ॥

चंदनकी सुगंधसे और मुख्य २ राक्षसगणोंसे व्याप्तथा. जैसे सिंहोंसे बडा वन ॥ ११ ॥ भेरी, मृदंग और शंखके शब्दसे शब्दायमान होरहाथा, और राक्षसगण निरन्तर इस गृहमें अपने २ इष्टदेवताकी पूजा करतेथे ॥१२॥ महात्मा राक्षसराज रावणका समुद्रतुल्य गंभीर और समुद्रकीही समान शब्दकारी इस प्रकार रत्न सामग्रीसे परिपूर्ण भवन था ॥१३॥ महाकपि हनुमानजीने अनेक रत्नोंसे युक्त उस गृहको देखा, उस गृहमें जहां तहां गज, अश्व और रथ व्याप्तथे ॥१४॥ उस मुख्य भवनको देखकर महाकपि हनुमानजीने विचारा कि, यह गृह सब लंकाका भूषणरूपहै; यह मानकर वह जहां रावण शयनकर रहाथा वहां गये ॥१५॥ इस प्रकार एक गृहसे दूसरे गृहमें गमन करते हुये सुशिया २ निशाचरोंके गृह और पुष्पवाटियें देखते भालते उस मंदिरमें घूमने लगे ॥ १६ ॥

तिसके पीछे महावीर्यवान् हनुमानजी महावेगसे छलांग मारकर प्रथम प्रहस्तके घरमें फिर वहांसे महापार्श्वके भवनमें प्रवेश करते हुए ॥ १७॥ फिर वहांसे कुंभकर्णके मेघाकार गृहमें फिर वहांसे कूदकर विभीषणके घरपर महाकपि आये ॥ १८ ॥ वहांसे महोदरके घरपर कूदे, तिसके पीछे विरूपाक्षके स्थानपर आये फिर विद्युज्जिह्वका घर खोजा, फिर विद्युन्मालीके भवनको आयगये ॥ १९ ॥ वहांसे वज्रदंष्ट्रके गृहपर गये; फिर महाकपि हनुमानजी शुकके यहां पधारे, फिर बुद्धिमान् सारणके स्थानपर ॥ २० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ हनुमानजी इन्द्रजीतके स्थानपर कूदे, वहांसे जम्बुमाली और सुमालीके भवनपर वानरश्रेष्ठ होरहे ॥ २१ ॥ वहांसे रश्मिकेतुके भवनपर, रश्मिकेतुके भवनसे सूर्यशत्रुके यहां, फिर वहांसे यह महाकपि वज्रकायके मंदिरपर पहुँचे ॥२२॥ फिर पवनकुमार धूम्राक्ष, व सम्पा

अवप्लुत्यमहावेगःप्रहस्तस्यनिवेशनम्॥ततोऽन्यत्पुप्लुवेवेश्मसमहापार्श्वस्यवीर्यवान्॥ १७ ॥ अथमेघप्रतीकाशंकुंभकर्णनिवेशनम् ॥ विभीषणस्य चतथापुप्लुवेसमहाकपिः॥ १८ ॥ महोदरस्यचतथाविरूपाक्षस्यचैवहि॥ विद्युज्जिह्वस्यभवनंविद्युन्मालेस्तथैवच ॥१९॥ वज्रदंष्ट्रस्यचतथापुप्लुवेसमहाकपिः ॥ शुकस्यचमहावेगःसारणस्यचधीमतः ॥ २० ॥ तथाचेंद्रजितोवेश्मजगामहरियूथपः॥ जंबुमालेःसुमालेश्चजगामहरिसत्तमः॥२१॥ रश्मिकेतोश्चभवनंसूर्यशत्रोस्तथैवच॥ वज्रकायस्यचतथापुप्लुवेसमहाकपिः॥२२॥ धूम्राक्षस्याथसंपातेर्भवनंमारुतात्मजः ॥ विद्युद्रूपस्यभीमस्य घनस्यविघनस्यच ॥ २३ ॥ शुकनाभस्यचक्रस्यशठस्यकपटस्यच॥ ह्रस्वकर्णस्यदंष्ट्रस्यलोमशस्यचरक्षसः॥२४॥युद्धोन्मत्तस्यमत्तस्यध्वजग्रीवस्यसादिनः ॥ विद्युज्जिह्वद्विजिह्वानांतथाहस्तिमुखस्यच॥ २५॥ करालस्यविशालस्यशोणिताक्षस्यचैवहि॥ प्लवमानःक्रमेणैवहनूमान्मारुतात्मजः॥ २६ ॥ तेषुतेषुमहार्हेषुभवनेषुमहायशाः ॥ तेषामृद्धिमतामृद्धिंददर्शसमहाकपिः॥ २७॥ सर्वेषांसमतिक्रम्यभवनानिसमंततः ॥ आससादाथलक्ष्मीवान्राक्षसेंद्रनिवेशनम् ॥ २८ ॥ रावणस्योपशायिन्योददर्शहरिसत्तमः ॥ विचरन्हरिशार्दूलोराक्षसीर्विकृतेक्षणाः ॥ २९ ॥

तिके घरपर, वहांसे विद्युद्रूप, भीम, घन, विघनके स्थानपर ॥२३॥ इसके पीछे शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश राक्षसोंके गृहोंपर ॥२४॥ युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, सादी, विद्युज्जिह्वके, द्विजिह्वके और फिर हस्तिमुखके स्थानपर ॥२५॥ वहांसे कराल, विशाल, शोणिताक्ष, इन सब राक्षसोंके भवनोंपर पवनकुमार हनुमानजी बारी बारीसे घूम व कूदे ॥२६॥ और उन सब बडे भवनोंमें इन समस्त ऋद्धिशाली राक्षसोंकी परमसमृद्धि महायशस्वी हनुमानजीने देखी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे श्रीमान् महाकपि हनुमानजी क्रमसे इन समस्तभवनोंपर घूम राक्षस रावणके गृहपर आये॥ २८ ॥ वहांपर महावीरजीने देखा

कि विकराल नेत्रवाली राक्षसियें अलग २ अपने पहरेपर रावणके शयनगृहकी रक्षा करतीहैं ॥२९॥ इनके अतिरिक्त रावणके गृहमें इधर उधर विचरण करती हुईं, शूल, मुद्गर, शक्ति, और तोमर धारण किये हुए असंख्य राक्षसियोंके झुण्ड हनुमानजीने देखे ॥३० ॥ शस्त्र धारण किये हुए वडी २ देहवाले राक्षसोंके भवन समूहोंमें लाल, श्वेत, घोडे बँधे देखे जो कि अतिशीघ्र चलनेवाले थे ॥३१॥ और वडे २ श्रेष्ठरूपवाले वनके गजोंके मर्दन करने वाले, भली भाँतिसे शिक्षित, युद्धमें ऐरावत हाथीके समान गजभी बँधे देखे ॥३२॥ वह हाथी देखतेही शत्रुओंकी सेनाका संहार करनेवाले थे, व और पर्वतोंकी समान जिनमेंसे मदका झर नासा झरताथा ॥३३॥ समरमें शत्रु लोगोंसे जीतनेके अयोग्य, मेघोंकी समान गर्जन करने वाले हाथी, और बहुतसी सेना, सुवर्णकी सब सामग्रीसे सम्पन्न उस भवनमें

शूलमुद्गरहस्ताश्चशक्तितोमरधारिणः ॥ ददर्शविविधान्गुल्मांस्तस्यरक्षःपतेर्गृहे ॥ ३० ॥ राक्षसांश्चमहाकायान्नानाप्रहरणोद्यतान् ॥ रक्तान्श्वेतान्सितांश्चापिहरींश्चापिमहाजवान् ॥ ३१ ॥ कुलीनान्रूपसंपन्नान्गजान्परगजारुजान् ॥ शिक्षितान्गजशिक्षायामैरावतसमान्युधि ॥ ३२ ॥ निहंतॄन्परसैन्यानांगृहेतस्मिन्ददर्शसः ॥ क्षरतश्चयथामेघान्स्रवतश्चयथागिरीन् ॥ ३३ ॥ मेघस्तनितनिर्घोषान्दुर्धर्षान्समरेपरैः ॥ सहस्रंवाहिनीस्तत्रजांबूनदपरिष्कृताः ॥ ३४ ॥ हेमजालैरविच्छिन्नास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ददर्शराक्षसेंद्रस्यरावणस्यनिवेशने ॥ ३५ ॥ शिबिकाविविधाकाराःसकपिर्मारुतात्मजः ॥ लतागृहाणिचित्राणिचित्रशालागृहाणिच ॥ ३६ ॥क्रीडागृहाणिचान्यानिदारुपर्वतकानिच ॥ कामस्यगृहकंरम्यंदिवागृहकमेवच ॥ ॥ ३७ ॥ ददर्शराक्षसेंद्रस्यरावणस्यनिवेशने ॥ समंदरसमप्रख्यंमयूरस्थानसंकुलम् ॥३८॥ ध्वजयष्टिभिराकीर्णंददर्शभवनोत्तमम् ॥ अनंतरत्ननिचयंनिधिजालंसमंततः ॥ धीरनिष्ठितकर्मांगंगृहंभूतपतेरिव ॥ ३९ ॥

जहाँ तहां छाई हुई देखी ॥ ३४ ॥ वह सेना सुवर्णकी कडियोंके जालका बख्तर पहने, प्रातःकालीन सूर्यके समान चमकती दमकती, राक्षसनाथ रावणके स्थानमें हनुमानजीने देखी ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकारकी पालकियें चित्र विचित्र लतायुक्त गृह, और चित्रपट शोभित गृह हनुमानजीने देखे ॥ ३६ ॥ विहार गृह और काठके बने हुये (नकली) क्रीडा पर्वत रमणीक रति करनेके सामान, और दिनको विहार करनेके गृह हनुमानजीने देखे ॥ ३७ ॥ और हनुमानजीने देखा कि रावणका गृह अतिश्रेष्ठ है, वह मन्दराचल पर्वतकी तलैटीकी समान मनोहर मोरोंके स्थानोंसे व्याप्तहै ॥ ३८ ॥ ध्वजा पताकाओंसे भूषित, असंख्य रत्न और ऋद्धि सिद्धिके समूहसे परिपूर्ण और वहांपर भयरहित स्थिरचित्त राक्षसलोग उन निधियोंकी रक्षामें नियुक्त थे, देखनेसे बोध होता था कि,

और वार २ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई कि, कदाचित् रामचन्द्र आजायँ. तिलक विसना हुआ व्याकुल चित्त बुद्धिमती जानकीजीको अपना सर्वनाश करनेके
निमित्तही रावण हरकर लेगया ॥ ४३ ॥ अनन्तर मनोहर दन्तवाली मन्द २ हास्य युक्त; जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहीं देखनेपर बन्धुजनोंके विर-
मलीनमुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई ॥ ४४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२
रावणको आकाशमें उडताहुआ देखकर जनककुमारी सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेके कारण और रोते
उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आर्तस्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं ॥ २ ॥ रे राक्षसाधम रावण ! हमको अकेली पाके

अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम् ॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसा
चारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥४४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०
आदिकाव्येऽरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ समुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥ दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी॥१॥रोषरोदनता
म्राक्षीभीमाक्षंराक्षसाधिपम् ॥ रुदतीकरुणंसीताह्रियमाणातमब्रवीत् ॥२॥ नव्यपत्रपसेनीचकर्मणानेनरावण ॥ ज्ञात्वाविरहितांयोमांचोरयित्वाप
लायसे ॥ ३ ॥ त्वयैवनूनंदुष्टात्मन्भीरुणाहर्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितोभर्तामृगरूपेणमायया ॥४॥ योहिमामुद्यतस्त्रातुंसोप्ययंविनिपातितः ॥
गृध्रराजःपुराणोऽसौश्वशुरस्यसखामम ॥५॥ परमंखलुतेवीर्यंदृश्यतेराक्षसाधम ॥ विश्राव्यनामधेयंहियुद्धेनास्मिजितात्वया॥६॥ईदृशंगर्हितंकर्म
कथंकृत्वानलज्जसे॥स्त्रियाश्चाहरणंनीचरहितेचपरस्यच॥७॥कथयिष्यंतिलोकेषुपुरुषाःकर्मकुत्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठंतवशौटीर्यमानिनः॥८॥

चोरी करके तू लिये भागाजाताहै अरे क्या इस नीचकर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरात्मन् ! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववालाहै इसी
कारणसे हमारे हरण करनेका अभिप्राय कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको छलसे दूर लेगया ॥ ४ ॥ और इस समय हमारी रक्षा करनेके
लिये जो तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीकोभी तैने मार डाला ॥ ५ ॥ हे राक्षसाधम ! इससेही जाना गया कि, तुझमें कुछ वीरता नहीं
तूने केवल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जीती नहीं गई. हाँ, राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तो एक बातथी ॥ ६ ॥ रे नीच
शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेका यह नीच निन्दनीय कार्य करके तू लज्जित नहीं होता ॥ ७ ॥ रे अपनेको शूर माननेवाले ! तूने जो यह अतिनिर्लज्ज और निन्दनीय

कार्य किया है सो इसकी सब पुरुष चरचा कर २ के तुझे बुरा कहेंगे ॥ ८ ॥ तूने जो अपनी शूरताई की और शारीरक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको
धिक्कारहै! तेरे इस बलकोभी धिक्कारहै! तेरे कुलके कलंकजनक ऐसे चारित्रपरभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करके शीघ्रताके साथ दौडा जाताहै। फिर
भला हम क्या कर सकें? हां यदि एक मुहूर्तभी तू खडा रहे, तो प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते
ही तू सेनासहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा ॥ ११ ॥ पक्षी जिस प्रकार वनमें लगीहुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकुमारोंके बा
णोंका स्पर्श सहन करनेकी किसी भाँति तुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १२ ॥ इसकारण हे रावण ! भली भाँति अपना हिताहित विचार करके सीधी तरहसे हमको छोडदे।
नहीं तो हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकडे जानेपर महाक्रोधित हो ॥ १३ ॥ यदि तू हमको न छोडदेगा तौ तेरा विनाश करनेके लिये यत्न करेंगे,

धिक्तेशौर्यंचसत्त्वंचयत्त्वयाकथितंतदा ॥ कुलाक्रोशकरंलोकेधिक्तेचारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किंशक्यंकर्तुमेवंहियज्जवेनैवधावसि ॥ मुहूर्तमपितिष्ठत्वं
नजीवन्प्रतियास्यसि॥१०॥नहिचक्षुःपथंप्राप्यतयोःपार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योपिसमर्थस्त्वंमुहूर्तमपिजीवितुम्॥११॥ नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंश
क्तःकथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः॥१२॥साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमांमुंचरावण॥मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम॥१३॥विधा
स्यतिविनाशायत्वंमांयदिनमुंचसि ॥ येनत्वंव्यवसायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥१४॥ व्यवसायस्तुतेनीचभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंती
भर्तारंविबुधोपमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम् ॥ ननूनंचात्मनःश्रेयःपथ्यंवासमवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युकालेयथामर्त्योवि
परीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपाशितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनि
शाचर ॥ १८ ॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणींघोरांरुधिरौघविवाहिनीम् ॥ १९ ॥

तू जिस आशयसे हमको हरण करके लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे नीच राक्षस! वह तेरा आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देवसमान अपने स्वामीको न देख
कर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुतकालतक प्राण धारण करनेको समर्थ न होंगी, हमको समझ पडताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥
॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जातीहै [illegible]

और महाभीषण गन्नरूप पत्रयुक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा । और उत्कृष्ट वैदूर्यमणिमय पत्र लगेहुए तपायेहुए सुवर्णके से फूल फल लगेहुए ॥ २० ॥ और
भी महत् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे । उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा अप्रिय कार्य करके नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥
जिसप्रकार विषका पीनेवाला बहुत देरतक नहीं प्राण रख सकता. रे निर्घृण रावण ! इन सब बातोंसे स्पष्टहै कि, तू कठिन कालकी फाँसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ हमा
महात्मा स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं; फिर तु कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही विना अपने भ्राताकी सहायताके एक
निमेष मात्रमें ॥ २३ ॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले, वही सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले महाबलवान् वीर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणों
समूहसे अपनी प्रिय भार्याके हरनेवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे. रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोकयुक्त होकर इसप्रकारसे व औरभी बहुत भांति

खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २० ॥ द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंटकैश्चिताम् ॥ नहित्वमीदृशं
कृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥ धारितुंशक्ष्यसिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणम् ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥ २२ ॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्म
ममभर्तुर्महात्मनः ॥ निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलोबली ॥ २४ ॥
नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमाविष्टाकरुणंविललापह ॥ २५ ॥ तदाभृशार्तांबहुचै
भाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचेष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिका
व्येऽरण्यकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥ तेषांमध्येविशालाक्षीकौ
शेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयुरितिभामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥ ३ ॥

और वचनके साथ करुणस्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ वह महाव्याकुल होकर अपने छुडानेकी चेष्टा करती हुई करुणा सहित विलाप करके अनेक वचन
कहने लगीं, उस समय पापचारी रावण अपने शरीरको कँपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिका
आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ जब रावण हरण करके लेचला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेवाला न
पाकर चली जाने लगीं । और जाते २ उन्होंने पर्वतके शृंगपर बैठेहुए प्रधान पांच बंदरोंको देखा ॥ १ ॥ तब उन बडे २ नेत्रवाली जानकीजीने सुवर्णके समान
आभा युक्त वस्त्र व कुछ गहने उतार उन बन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि, यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकते

वह जानकीजीका छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म घवडाहटके मारे रावणने नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कररहीथीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥ ४ ॥ पीली आंखोंवाले वानरश्रेष्ठोंने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोतीहुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान् मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढवाली और तेज विषवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाशमार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकोंके स्थान समुद्रको उतरगया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटाहुआ बाणं अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगन्माताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन

संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांविशालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरीम् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगींतीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षगतावाचःससृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥ एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणींमृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथाम् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥ तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्रीवःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥

होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेके समय यह दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता, यहींतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्ध भी ऐसाही कहने लगे । इस ओर रावण चेष्टारहित मूर्च्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लंकापुरीमें आया, वह सीताजीको नहीं लाया वरन् कहो अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुँचकर अपने परमसुन्दर रनवासमें रावणने

सीताजीको अपने रनवासमें स्थापन करके घोर दर्शना पिशाचनियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ १४ ॥ कि, तुम भली भांतिसे इनकी रक्षा करो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं देखने पावै. मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र, भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दी जाय यह मेरी आज्ञा है व जो कोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षा करनेवालियोंमें कह महा प्रतापवान् रावण ॥ १७ ॥ रनवाससे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेवाले आठ राक्षस बैठेथे ॥ १८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहांपर खर रहा करताथा उस जनशून्य जनस्थानको

यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणानिच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदेवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याच वक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥ सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥ नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छतसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रास्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रित्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥ २१ ॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ ततःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरंमहारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥२४॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मोपलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः॥२५॥

जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहांपर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्यवान् बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषणसहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआहै, और इसमेंही हम बडे धीर्यवानका धीरजभी लोप होगया । इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महावैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परमशत्रु रामके प्रति यह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्धमें उस महाशत्रुका वध नहीं करलेते, तबतक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनेवाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥

वह जानकीजीका छोडा हुआ वस्त्र व भूषण बन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म घबडाहटके मारे रावणने नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कररहीथीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥ ४ ॥ पीली आंखोंवाले वानरश्रेष्ठोंने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देखलिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोतीहुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान् मृत्युस्वरूप सीताजीको हरण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढवाली और तेज विषवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाशमार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकोंके स्थान समुद्रको उतरगया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटाहुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगन्माताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन

संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांविशालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥ विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरीम् ॥ ५ ॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगींतीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितःशैलान्सरांसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षयम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमतीयायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षगतावाचःससृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥ एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणींमृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथाम् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥ तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्चदशग्रीवःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥

होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्याकुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेके समय यह दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता, यहांतक इसके जीवनका शेष होगया । सिद्धगण भी ऐसाही कहने लगे । इस ओर रावण चेष्टारहित मूर्च्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लंकापुरीमें आया, वह सीताजीको नहीं लाया बरन् कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया । उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग सुशोभित हो रहे थे ॥ [illegible]२ ॥ वहां पहुँचकर अपने परमसुन्दर रनवासमें रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परमसुन्दरीको ले जाकर बैठा दिया ॥ १३ ॥ उस समय जैसा घोर [illegible]

सीताजीको अपने रनवासमें स्थापन करके घोर दर्शना पिशाचनियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ १४ ॥ कि, तुम भली भांतिसे इनकी रक्षा करो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं देखने पावै. मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र, भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दी जाय यह मेरी आज्ञा है व जो कोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझे इस तरह सब रक्षा करनेवालियोंसे कह महा प्रतापवान् रावण ॥ १७ ॥ रनवाससे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेवाले आठ राक्षस बैठेथे ॥ १८ ॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहांपर खर रहा करताथा उस जनशून्य जनस्थानको

यथानेनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणानिच ॥ १५ ॥ यद्यदिच्छेत्तदेवास्यादेयंमच्छंदतोयथा ॥ याच वक्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्यांतःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ १८ ॥ सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥ नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छतसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रा स्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रित्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥ २१ ॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धेनिह तंरामसायकैः ॥ २२ ॥ ततःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥ २३ ॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरंमहारि पोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥२४॥ तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामंशर्मोपलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः॥२५॥

जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहांपर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्यवान् बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषणसहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हम को बडा क्रोध हुआहै, और इसमेंही हम बडे धीर्यवानका धीरजभी लोप होगया । इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महावैरभाव उपस्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परमशत्रु रामके प्रति यह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्धमें उस महाशत्रुका वध नहीं करलेते, तबतक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होताहै, वैसेही खर दूषणके मारनेवाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥

तुम लोगजनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करते हैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी सावधानीसे वहांपर चले जाओ, और सदा उस रामचन्द्रको मार डालनेके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमने पहले संग्राममें अनेकवार तुम लोगोंके बलको जान लियाहै, बस इसी कारण से हमने तुम लोगोंको जनस्थानमें बिठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करके जनस्थानकी ओर गुप्तभावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परमहर्षित चित्तसे ग्रहण करके और उनको अपने रनवासमें टिका, रामचन्द्रजीसे महाशत्रुता करके मोहयुक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोतीतितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः ॥ कर्तव्यश्चसदा यत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥ २७ ॥ युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिञ्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥ २८ ॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्य राक्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसीतामुपलभ्यरावणःसुसंप्र हृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरामेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्यराक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदे हींकामबाणैःप्रपीडितः ॥ प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥ अपश्यद्राक्षसीमध्येसीतांदुःख परायणाम् ॥ ३ ॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥ मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृ ताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥ ५ ॥

रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महाबलवान् आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृतकृत्य समझता हुआ कि, अब हमें कोई कार्य करनेको शेष नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर जानकीजीका स्मरण करतेहुए कामबाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥ राक्षसपति रावणने उस घरमें प्रवेश करके दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके भारसे महापीडा पाय अतिशय दीनभावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई बैठीथीं, उस समय ऐसा बोध होताथा मानो नौका वायुके वेगसे कांपकर जलमें डूबीहुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे बिछुडकर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये बैठीथीं ॥ ५ ॥

राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीनहुई सीताजीकी इच्छा न रहनेपरभी बलात्कारसे उनको उस देवगृह सदृश दिव्यभवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर
अनेकप्रकार अटा अटारी और धवरहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमें हैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भाँतिके रत्नभी इस गृहमें हैं॥७॥उसके सब थंभ हाथीदांतके
बनेथे, सुवर्ण, स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परमचित्रित और देखनेमें मनके हरण करने वालेथे ॥ ८ ॥ वहांपर समस्त वंदनवारें तपायेहुए सुवर्णकी बनी हुईथीं,
और वहांपर निरन्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर बजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्णसे बनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ यह घर
हाथीदांत और चांदी निर्मित होनेके कारण अतिसुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय और भी बहुतसे घर वहां बनेथे जिनमें सुवर्णके

तांतुशोकवशांदीनामवशांराक्षसाधिपः ॥ सबलादर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम् ॥ ६ ॥ हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम् ॥ नानापक्षिगणैर्जुष्टं
नानारत्नसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा ॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥८॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचन
भूषणम् ॥ सोपानंकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः॥१०॥
सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥दशग्रीवःस्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम्॥११॥दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणो दर्श
यामाससीतांशोकपरायणाम् ॥ १२ ॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥ दशराक्ष
सकोट्यश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचरान् ॥ १४ ॥ तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषांभीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्य
ममकार्यंपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंचविशालाक्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥

जँगले लगेथे ॥ १० ॥ सब भूमिभाग सुधाधवलित और मणिसमूह चित्रित रहनेके कारण विचित्र शोभा देरहाथा, इस प्रकारका भवन रावणने सीताजीको
दिखाया ॥ ११ ॥ उस मंदिरमें जगह २ बावली और छोटी २ तलैयेंभी बनीथीं, जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे, दशग्रीव रावणने जानकीजीको यह सब
कुछ दिखाया ॥ १२ ॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेकी इच्छासे अपना वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहने लगा ॥ १३ ॥ कि,
हे जानकी ! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोडकर हमारे अधीनहैं ॥ १४ ॥ उन सब भयंकर कर्म करने वाले राक्षसोंके हम स्वामी हैं।
और हमारे इकलेही एक सहस्र दासहैं॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमें है हे विशालाक्षि ! हमारा जीवन भी तुम्हारे अधीन है; अधिक

क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली ! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियां है, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी ! हमने जो कुछ कहा; वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै, तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी, तुम्हारे कारण हम बहुतही संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर सौयोजन समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसीकोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहो ॥ २० ॥ तो फिर भला, दीन तपस्वी राज्यभ्रष्ट, पादचारी, अल्पप्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी? ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते ! हमही तुम्हारे योग्य पति हैं; तुम हमाराही भजन करो. हे भीरु ! यौवन सदा नहीं रहता इससे

यह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभवप्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेऽन्यथाबुद्ध्यारोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षितासमुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्यामिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्यसिरामेणमानुषेणाल्पतेजसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह॥२२॥दर्शनेमाकृथाबुद्धिंराघवस्यवरानने॥ कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीते मनोरथैः ॥२३॥ नशक्योवायुराकाशेपाशैर्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेर्ग्रहीतुंविमलाःशिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामि शोभने ॥ विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम्॥२५॥लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय ॥ त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवदेवाश्चापिचराचरम्॥२६॥

हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने ! अब तुम रामचन्द्रके देखनेकी आशा छोडो ! उनमें क्या शक्ति है जो वह मनोरथसेभी यहां पर आसकें ? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई महाप्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडना चाहै तो नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने ! समस्त भुवनोंमें हम ऐसा किसीको नहीं देखते कि, जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंमे रक्षित तुमको लेजासके ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लंकाके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे अज्ञाकारी दास हो जायँगे। और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो हमभी तुम्हारी आज्ञा के अधीन हो जाँयगे। सब देवतागण बरन स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही

नाश हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम अभिषेकके जलसे धौतदेहा होकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेसे अबको नाश होगये ॥ २७ ॥ अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो । हे मैथिलि ! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्य गन्ध ॥ २८ ॥ और दिव्यभूषण रक्खे हैं तुम उन सबको हमारे साथ भोगकरो । हे सुमध्यमे ! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥ २९ ॥ विमान सूर्यके समान प्रकाशमान हमारे यहां है कुबेरके साथ संग्राम करके उसको हम जीत लाये हैं, वह अतिविशाल रमणीयहै उसका वेग मनके वेगकी समानहै.॥ ३० ॥ सो हे सीते ! उस विमानपर चढकर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो । हे वरानने ! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके मारे मलीन होनेसे

अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच ॥ दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम् ॥ २७ ॥ यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥ इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिली ॥ २८ ॥ भूषणानिचमुख्यानितानिसेवमयासह ॥ पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥ २९ ॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे ॥ विशालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥३०॥ तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम् ॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥ ३१ ॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिवरानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥ ३२॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतीतामिवास्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥ ३३ ॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते ॥ ३४ ॥ आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥ प्रसादंकुरुमेक्षिप्रंवश्योदासोऽहमस्मिते ॥ इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६ ॥

अब शोभित नहीं होता, इस कारण तुम शोक न करो. जब रावणने इस प्रकारसे कहा तब पतिव्रताशिरोमणि सीताजी वस्त्रकी आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चन्द्रसमान वदनमंडल ढककर रोने लगीं. चिन्तासे उनका देह पीला पडगया, वह बहुत ही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे बोला कि, हे वैदेही ! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो तुम्हारे प्रति हम ऋषिगणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय प्रार्थना करनेको तैयार हुएहैं ऋषियोंने राक्षसविवाह बलात्कार ग्रहणसे लिखाहै यह लो हम अपने दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर चरणोंको दबाते हैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगट करनेमें और विलंब मतकरो, हम तुम्हारे वशवर्ती दास हो जायँगे, हमने कामके वशहोकर यह जो वार्ता कही देखो इसका कोई अंश निरर्थक

नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणने कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनकनंदिनी मैथिलीजीसे इस प्रकार कहकर मनमें समझा कि, यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आर० भाषाटीकायां पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनहीमन रावणको तृणसमान समझती हुई उत्तर देती हुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञासे सर्व संसारमें विख्यात थे, श्रीरामचन्द्रजी उनकेही पुत्र हैं ॥ २ ॥ यह भी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यात हैं, वही दीर्घबाहु विशाललोचन श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवता हैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहके समान हैं, वह महाद्युतिमान् और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न

नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमेतह ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० अर० पंचपंचाशः सर्ग ॥ ५५ ॥ सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता ॥ तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत ॥ १ ॥ राजा दशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः ॥ सत्यसंधःपरिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिपुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतंसपतिर्मम ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातःसिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥ ४ ॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वया वैधर्षितावलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहाबलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगाय था ॥ ६ ॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसुमहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥ सतेजीवतशेषस्यराघवोंतकरोबली ॥ पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥ ९ ॥

हुये हैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करने यहां आवेंगे ॥ ४ ॥ यदि हम उनके सन्मुख बलपूर्वक इस प्रकारसे खेंची जाती तब तो युद्धमें खरकी समान निहत होकर तुमकोभी रणभूमिसे शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमने जिन सब घोरतर महाबलवान् राक्षसोंकी वार्त्ता कही सो गरुडके निकट सर्पसमूह की समान रामचन्द्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज हो जायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिस प्रकार गंगाजीके किनारेको तोडती है वैसेही श्रीरामचन्द्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदन करेंगे ॥ ७ ॥ हे रावण। यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्य है, परन्तु रामचन्द्रके साथ यह बडा भारी वैर करके किसी प्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥ ८ ॥ यह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे । इससे यज्ञस्तम्भसे बंधे

हुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभ है॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंसे एक बारही तुझको देखें तो हे राक्षस ! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गया था ॥ १० ॥ जो चन्द्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश करसकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगई, इससे विदित होताहै कि, तुम्हारे लिये लंका नगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥ १२ ॥ तुमने जो पापकार्य किया है इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूने बिना विचारे भावके बिना बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग किया है ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान् स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपने वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास करते हैं ॥ १४ ॥ वह संग्रामस्थलमें बाणोंकी वर्षा करके तेरी देहसे बल, वीर्य, घमंड, व

यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धोयथारुद्रेणमन्मथः ॥ १० ॥ यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा ॥ सागरंशोषयेद्वापिसर्मांतांमोचयेदिह ॥ ११ ॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः ॥ लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति ॥ १२ ॥ नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति ॥ याहंनीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात् ॥ १३ ॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः ॥ निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्येवसतिदंडके ॥ १४ ॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥ १५ ॥ यदाविनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥ १६ ॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्षसाधम ॥ आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच ॥ १७ ॥ नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता ॥ द्विजातिमंत्रसंपूताचंडालेनावमर्दितुम् ॥ १८ ॥ तथाहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता ॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना ॥ १९ ॥ क्रीडंतिराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥ २० ॥

गर्व अहंकार अलग कर देंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जब कि, प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै, तब वह कालके वश होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें असमर्थ हो जाते हैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसाधम ! जब कि, तैंने हमारा अपमान किया है, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेका काल आ पहुँचा है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणों करके मंत्रसे पढी हुई यज्ञकी सामग्रीसे विभूषित यज्ञवेदी चंडालके छूने योग्य नहीं होती वैसेही हम भी तेरे स्पर्श करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १८ ॥ रे राक्षसाधम ! रे पापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति रखता हैं, इस कारण हम किसी प्रकारसे भी तेरे छूनेके योग्य नहीं हैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमलपुष्पोंके मध्यमें राजहंसके साथ नित्य क्रीडा करती हैं वह किस

प्रकारसे तृणोंके बीच बैठेहुए मुद्गर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालेंगी ॥ २० ॥ रे राक्षस ! यह देह स्वभावसेही संज्ञाहीन है इसको बांध, या इसपर आघात दे, जो तेरी इच्छा हो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तो हम अपने जीतेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेहीजी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावण से और कुछ न बोलीं. तब रावण सीताजीके कठोर और रोमहर्षण वचन सुनकर ॥ २३ ॥ सीताजीको डर पानेके लिये कहने लगा कि, हे मैथिली ! मेरे वचन सुनो मैं बारह महीनेतक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यमें यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तो रसोई करनेवाले हमारे प्रातः कलेवेके लिये तुमको

इदंशरीरंनिःसंज्ञंवंधवाघातयस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१ ॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेही क्रोधात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥ रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन ॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥ २३ ॥ प्रत्युवाचततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि ॥ २४ ॥ कालेनानेननाभ्येपियदिमांचारुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्चततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोजनाः ॥ २७ ॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥ सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥ २९ ॥ अशोकवनिकामध्येमैथिलीनीयतामिति ॥ तत्रेयंरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥ ३० ॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥ आनयध्वंवशंसर्वावन्यांगजवधूमिव ॥ ३१ ॥

टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानेवाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूप, घोरदर्शन, रक्तमांसभोजी राक्षसीगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोरदर्शन निशाचरीगण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेके अनुसार सीताजीको घेर लेती हुईं ॥ २८ ॥ यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक पग चलकर, उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढभावसे इनकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वनकी हथिनीको जिसप्रकार वशमें किया जाता है, तुम सबभी उसीतरहसे घोर गर्जन करके अथवा समझा

बुलाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणने इस भांति आज्ञा की, तब राक्षसियें सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मनवांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्षसमूह और सब काल मतवालेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनकी शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पडीहुई जनकदुलारी मैथिलीजी अशोक वनके मध्य राक्षसियोंके वशमें पडकर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रियोंमें हरिणी रहती है ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहांपर किसी भांतिका सुख न पातकर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर रमणिय स्वामी और देवरको सदा स्मरण करके और शोकसे सतानेके कारण चेतनारहित होकर जानकीजीने वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई ॥ ३६ ॥

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः ॥ अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरिगृह्यतु ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥ सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥३३॥ सातुशोकपरीतांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहताग्रस्तामैथिलीजनकात्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जिता ॥ पतिंस्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥ प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः ॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम् ॥ १ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसामहितायच ॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥ २ ॥ पतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता ॥ अपश्यंतीचभर्तारंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥ ३ ॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरीलंकातीरेनदनदीपतेः ॥ ४ ॥ कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम् ॥ दुःखंसंचिंतयंतीसात्यर्थंशःपरिदुर्लभा ॥ ५ ॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणांस्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥ ६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां षट्पंचाशः सर्गः ॥५६॥ जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजीने देवताओंके राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेके निमित्त औरराक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजीको लंकामें ले गयाहै ॥ २ ॥ वहां महाभाग्यवाली पतिव्रतधर्मयुक्त जो सदा सुखहीमें इतनी बडी हुई हैं अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिका दर्शनवाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंकापुरी है उसमें स्थित हैं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजी किस प्रकार जानेंगे कि, वहां निन्दारहित जानकीजी हैं बडे कष्ट और दुःखसे रामचन्द्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ ॥ भोजनादिके न करनेसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राणरक्षा करनेमें हमको बडा

सन्देहहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुखवाली जानकीका दर्शन कर लंकापुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥ ७ ॥ जब यह वचन ब्रह्माजीने कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपने साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तब इन्द्रने निद्रादेवीसे कहा कि, तू जाकर राक्षसोंको मोहित कर. निद्रादेवी इन्द्रके यह वचन सुनकर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई. इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकीसे बोले कि हे भद्रे ! मैं देवताओंका राजा इन्द्रहूं, हे सुन्दर हास्ययुक्त जानकी ! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त सहाय करनेको आयाहूं, हे जनककुमारी ! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सेनासहित रामचन्द्रजी सागर

सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम् ॥ प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तोथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम् ॥ आगच्छ न्निद्रयासार्द्धंभगवान्पाकशासनः ॥ ८ ॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय ॥ सातथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता ॥ ९ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं प्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥ १० ॥ आससादवनस्थांतांवचनंचेदमब्रवीत् ॥ देवराजोस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचि स्मिते ॥ ११ ॥ अहंत्वांकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यंकल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्य तिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामोहिताःशुभे ॥ १३ ॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥ एतदत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे ॥ क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशंकिता ॥ कथं जानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम् ॥ १६ ॥ देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ ॥ तानिदर्शयदेवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम् ॥ १७ ॥ सीता यावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः ॥ पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषेक्षणानिच ॥ १८ ॥

तर जायँगे. हे कल्याणी ! मेरीही मायाने इन राक्षसियोंको मोहित कियाहै ॥ १३ ॥ इसी कारण हे जानकी ! मैं यह हवि अन्न तुम्हें देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी ! मेरे हाथसे ये हवि भक्षण करनेसे तुमको क्षुधा और तृषा दशहजार वर्षतक भी न व्यापैगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तो डरतीहुई जानकी बोलीं कि, मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥ जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवताओंके राजा इन्द्र हो तो उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जानकीजीके वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक

लगना बंद होगया. देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण कियेहुए जो फूल मलीन न हों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहँचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और फिर रोतीहुई बोलीं, हे भगवन ! भाग्यसे महाबाहु रामचन्द्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंने सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघुकुलके बढानेहारी तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊँगी ॥ २२ ॥ सुहासिनी जानकीजीने वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचन्द्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदित की ॥ २३ ॥ और कहा कि, यदि मेरे महाबली

अरजोंवरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा ॥ तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्पिता ॥ १९ ॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्राघवंप्रति ॥ सहभ्रातामहा वाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः ॥ २० ॥ यथामेश्वशुरोराजायथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वामद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥ २१ ॥ तवाज्ञ याचदेवेंद्रपयोभूतमिदंहविः ॥ अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलवर्धनम् ॥२२॥ इंद्रहस्तादगृहीत्वातत्पायसंसाशुचिस्मिता ॥ न्यवेदयतभर्त्रेसाल क्ष्मणायचमैथिली ॥ २३ ॥ यदिजीवतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः ॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्व राननाजहौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनावभूव ॥ २५ ॥ सचापिशक्रस्त्रिदिवालयंतदाप्रीतोय योराघवकार्यसिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडे प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ ॥ राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुंरामस्य मैथिलीम् ॥ क्रूरस्वनोथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥ २ ॥

भर्त्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं वह यह पायस ग्रहण करैं ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि, रामचन्द्र शीघ्र आवेंगे, रामचन्द्रमें मन लगाती हुई ॥२५॥ वह इन्द्रभी उस समय रामचन्द्रकी कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीजीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे। यह सर्ग क्षेपकहै॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां क्षेपकः सर्गः ॥ ॥ उस ओर श्रीरामचन्द्रजी मृगरूपसे विचरण करने वाले कामरूपी निशाचर मारीचका संहार करके शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीजानकीजीको देखनेके लिये अतिवेगसे चले। इसी समयमें एक सियार उनकी पीठके पीछे

महाकठोर शब्द करनेलगा ॥ २ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनहीमनमें शंका करने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह सियार कर रहाहै, इससे तो ऐसा जान पडताहै कि, कोई अशुभ होगा । इस समय राक्षसोंने जानकीजीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जान बूझकर हमारे बोलके समान जो चिल्लाहटकीहै, यदि लक्ष्मणने उस बोलको सुना हो ॥ ५ ॥ बस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुनतेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्चयही राक्षसोंने मिलकर जानकीके वध करनेकी अभिलाषा की है और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृगरूप धारण करके हमको आश्रमसे बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर

मतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकयामासगोमायोःस्वरेणपरिशंकितः ॥ ३ ॥ अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशतेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥ ४ ॥ मारीचेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम् ॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥ ५ ॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहित्वाथमैथिलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति ॥ ६ ॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृगोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥ ७ ॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मीतियद्वाक्यंव्याजहारह ॥ ८ ॥ अपिस्वस्तिभवेदाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः ॥ ९ ॥ निमित्तानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामःश्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥

लाकर फिर हमारे बाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेके लिये,हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये ! यह कहकर उस राक्षसने प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तो चलेही आते होंगे; फिर जब वनमें आश्रमपर हम दोनों भाई न रहे तो कैसे कहैं कि, मंगल होगा । कारण कि, जनस्थानका नाश करनेके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देते हैं, आत्मवान श्रीरामचन्द्रजीने शृगालका शब्द सुनकर इसप्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे । मृगरूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचन्द्रजी जल्दीसे आश्रमको चले ॥ ११ ॥ और शंकितचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षीगण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ यह सब

मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बाँई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करने लगे, उन महाघोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने देखा तो ॥ १३ ॥ प्रभाहीन हुए लक्ष्मणजी चले आते हैं, देखतेही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपने भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करने लगे ॥ १५ ॥ क्योंकि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षससेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका बाँयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आर्तके समान श्रवणकठोर परिणाममधुर वचन कहने लगे कि, हे लक्ष्मण ! तुम सीताजीको त्यागकर जो यहां चले आये हो, यह तुमने अतीव निन्दाका कार्य किया है ॥ १७ ॥

ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥१४॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतं भ्राताद्दृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥१६॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥१७॥ सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥१८॥ विनष्टाभक्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥१९॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यंप्राप्नुयामहे ॥ जीवंत्याःपुरुषव्याघ्रसुतायाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंतेशकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्रलोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोभून्म्रियमाणएव॥२२॥

हे शुभदर्शन ! तुमने जो अकेली छोडा इससे क्या सीताका भला होगा ? कभी नहीं । हे वीर ! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ पगपगपर जिस प्रकारके अशकुन हो रहे हैं इससे यह ज्ञात होता है कि, यातो सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खागया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण ! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशलहैं क्या हम ऐसा देख पावेंगे ? हे पुरुषसिंह ! क्या जानकी सबप्रकार कुशलसे जीती हैं ? ॥ २० ॥ हे महाबलवान् ! यह मृगगण, सियार और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख करके महाभयंकर शब्द कर दशोंदिशाओंको देखते हैं मानो इनमें आग लगी है । ऐसे अशकुन देखकर किस प्रकार कह दें कि, राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं ? ॥ ॥ २१ ॥ यह मृगरूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको

फिर हमने बहुतही परिश्रम करके किसी भांति मार पाया, मरनेके समय उसने निज राक्षस मूर्त्ति धारण की ॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबराया हुआ है, और बाई आंखभी फड़क रही है। हे लक्ष्मण ! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातो उनको कोई हरण करके ले गया, या मार्गमें मरी पड़ी होंगी॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आर० भाषाटीकायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥५७॥लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन होरहे थे उनको सीताके विना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूँछने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आई थीं; और तुम जिनको छोड़कर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं ? ॥ २ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीन भावसे दंडकारण्यको आये और उस समय जो

मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टंचक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥ १ ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांतपनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥ ५ ॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैःप्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥ ६ ॥ सीतानिमित्तं सौमित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥ ७ ॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥ उपस्थास्यतिकौसल्याकच्चित्सौम्येनकैकयीम् ॥ ८ ॥

हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं ? ॥ ३ ॥ जिसके विना हम एक मुहूर्त्त भरभी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देवकन्याके समान प्राणसहाय जानकीजी कहां हैं ? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण ! हम उन तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभावाली जनकात्मजाके विना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी राजाई लेनेकीभी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५ ॥ हे वीर ! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीती हैं, क्या हमने जो चौदह वर्षतक वनमें रहनेकी प्रतिज्ञाकी है वह मिथ्या तो न होजायगी ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौटजानेपर कैकेयी क्या सफलमनोरथ और सुखी होगी ॥ ७ ॥ कैकेयी इस प्रकार अपने पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी

सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण! वैदेही यदि जीवित हैं, तब तो हम फिर आश्रमको चलते हैं, और वह शुद्धचारिणी यदि परलोकमें चली गई है, तो हमभी प्राण त्यागन करेंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुँचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी तबभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण! तुम बताओ कि, जानकी जीवित हैं? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी जानकीजीको राक्षसोंने तो नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी कुमारी हैं, बालिका हैं, और दुःख भोग करनेके अयोग्य हैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चय ही दुःखी हो शोच करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचने ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण!) कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दिया है ॥ १३ ॥ हम जानते हैं कि, हमारे बोलके समान वह बोल जानकी

यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण ॥ ९ ॥ यदिमामाश्रमगतंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुनःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥ १० ॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावातपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियोगेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥ १२ ॥ सर्वथारक्षसातेनजिह्मेनसुदुरात्मना ॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभयम् ॥ १३ ॥ श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥ १४ ॥ सर्वथातुकृतंकष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानांरक्षसांदत्तमंतरम् ॥१५॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥ १६ ॥ अहोऽस्मिव्यसनेमग्नःसर्वथारिपुनाशन ॥ किंत्विदानींकरिष्यामिशंकेप्राप्तव्यमीदृशम् ॥ १७॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः ॥ आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥ विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच ॥ विनिःश्वसञ्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम् ॥ १९ ॥

जीने सुनकर तुमको यहांपर भेजा है और तुमभी हमारे देखनेके लिये शीघ्रही यहांपर आयेहो ॥ १४ ॥ तुमने सीताजीको अकेली वनमें छोड यहां आकर … कष्टकर कार्य किया है। इससे निर्दयी राक्षसोंको हमारे कियेहुए अपकारका प्रतिकार करनेको तुमने अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मारडालनेसे मांसभ… राक्षसगण बहुतही दुःखित होगये हैं। उन घोरनिशाचरोंने निश्चयही जानकीको मारडाला होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हाय! शत्रुसूदन लक्ष्मण! … सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करें? हमको शंका होतीहै कि, यह विपद् अवश्य होनहारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीजीके लिये इस प्रका… चिंता करके लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥ क्षुधा, श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा उन्होंने शो…

चिनसे दीर्घ निःश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्यभावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहीं हैं यह आश्रम शून्य पडाहै ॥ ॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेके सब स्थान और वनवासके उठने बैठनेके स्थानमें ढूंढने लगे. परन्तु वहांभी जनकनन्दिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीके उठने बैठने और खेलनेके स्थानोंको विसूर २ स्मरण किया, स्मरण करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ जब इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसे बोले ॥ १ ॥ भाई ! तुम कैसे सीताजीको छोडकर यहां चले आये ? जब कि हम तुम्हारेही विश्वास पर सीताको वनके बीच छोड आये हैं ॥ २ ॥ यह देखतेही कि तुम सीताजीको

स्वमाश्रमंसंप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित ॥ एतत्तदित्येवनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडेऽष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः ॥ परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदं वचः ॥ १ ॥ तमुवाचकिमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥ दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः ॥ ३ ॥ स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे ॥ दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वांसीताविरहितंपथि ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥ ५ ॥ नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वाहमिहागतः ॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६ ॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम् ॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुतिंगतम् ॥ ७ ॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ८ ॥

त्यागकर यहां आयेहो, हमारा मन जो महाअनिष्टकी शंका करके व्यथित होता था वह हमारी शंका सत्यही सत्य हुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विना अकेला आता देखकर हमारा, हाथ वामनेत्र और हृदयका बायांभाग फडकने लगा ॥ ४ ॥ शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महादुःखितहो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ५ ॥ हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्याग करके यहां नहीं आये वरन् उनके पठाये हुयेही आपके निकट आये हैं ॥ ६ ॥ आपके बोलके समान बोल बनाकर जो किसीने (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होंने 'लक्ष्मण ! हमें बचाओ' यह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोते २ हमसे यह कहना आरम्भ किया कि

शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसे जानेको कहने लगीं, तब हमने उनको विश्वास दिलानेके लिये यह वार्त्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं दे
जो श्रीरामचन्द्रजीको भय उपजासके, इससे यह करुणाका वचन रामचन्द्रजीका नहीं, वरन् यह वचन किसी राक्षसने वा और किसीने कहा होगा इस कारण
संकटके रहैं ॥ १० ॥ हे सीते ! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकते हैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी "हमको बचाओ" यह नीच जनोचित वार्त्ता किसप्रकारसे कह
ते हैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारणवश रामचन्द्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण ! हमको बचाओ" यह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै
कुछभी सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ हे शोभने ! किसी राक्षसने त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै । इससे आप नीच स्त्रीजनोचित मनोवेदना त्यागकर दीजि
॥ १३ ॥ व्याकुल होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, न घबडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो संग्र

प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृता-
भवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥ १० ॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योभिधास्यति ॥ त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्रिदशानपि ॥ ११ ॥ किंनि-
मित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विस्वरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥ राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्त्राहीतिशोभने ॥ नभवत्या
व्यथाकार्याकुनारीजनसेविता ॥ १३ ॥ अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका ॥ नचास्तित्रिषुलोकेषुपुमान्योराघवंरणे ॥ १४ ॥ जातोवाजाय-
मानोवासंयुगेयःपराजयेत् ॥ अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः ॥ १५ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहितचेतना ॥ उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामि-
दंवचः ॥ १६ ॥ भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः ॥ विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे ॥ १७ ॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि ॥ क्रो-
शंतंहियथात्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे ॥ १८ ॥ रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि ॥ राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्तथैनंनाभिपद्यसे ॥ १९ ॥

श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसके आजके समयही क्या वरन् कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचन्द्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि
देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह वचन सुन आंसू त्यागकर रोते २ हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे
ऊपर तुम्हारा अत्यन्त पापभाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भांतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझी कि, तुम भरतके
इशारेसे यहां श्रीरामचन्द्रजीके साथ आयेहो, इसीसे रामचन्द्रजीका आर्त्तनाद करना सुनकरभी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम ह
मारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही ले लेनेके लिये रामचन्द्रजीके पीछे २ वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढते हो कि, कब रामचन्द्र कहींको जायँ, और हम इनको ह

करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीने इस प्रकार कहा, तब अतिक्रोधके मारे हमारे नेत्र लालहो आये, रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥ २० ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारका कहना आरंभ किया, तब रामचन्द्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि, हे सौम्य ! तुम जो जानकीको छोडकर यहां चले आये वह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है, उसको जानबूझ कर भी तुम जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंमे तुमभी उनको छोडकर यहांपर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए ॥ २३ ॥ तुमने सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञा

एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः ॥ क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गतः ॥२०॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंतापमोहितः ॥ अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः ॥२१॥ जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे ॥ अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतोभवान् ॥ २२ ॥ नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायद्यासिमैथिलीम् ॥ क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः ॥२३ ॥ सर्वथात्वपनीतंतेसीतयायत्प्रचोदितः ॥ क्रोधस्यवशमागम्यनाकरोःशासनंमम ॥२४॥ असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया ॥ मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसायकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गींतनुंत्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥२६॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्यसुदूरसुश्रवम् ॥ उपाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांड एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

का उल्लंघन किया इससे तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआ है ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूरतक लायाहै वह हमारे बाणसे मराहुआ पडाहै ॥ २५ ॥ हमने धनुष चढा खैंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृगतनु छोड विकल स्वर कर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीर धारण कियाहै ॥ २६ ॥ उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवणगोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

आश्रममें आनेके समय श्रीरामचन्द्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फडकने लगा, पग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कपरहा था इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेलगे कि, जाने सीता कुशलमेंहै अथवा नहीं ॥२॥ यह सोचते विचारते सीताके दर्शन करनेकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए कि आश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकताये ॥३॥ वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्णशालाके स्थान २ करके खोजनेलगे ॥४॥ रामचंद्रजीने पर्णशालामें गमन करके देखा कि वहां सीता नहीं हैं जानकी विन हेमंतऋतुके समागमसे ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्रीविहीन अवस्थामें पडी थी ॥५॥ वनदेवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट

भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्खलद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥ उपालक्ष्यनिमित्तानिसोशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसीतादर्शनलालसः ॥ शून्यमावसथंदृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥ ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा ॥ श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनीमिव ॥ ५ ॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम् ॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तंसंत्यक्तंवनदेवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णाजिनकुशंविप्रविद्धवृसीकटम् ॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनःपुनः ॥ ७ ॥ हृतामृतावानष्टावाभक्षितावाभविष्यति ॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥ ८ ॥ गतावि‍चेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताजलार्थंवानदींगता ॥ ९ ॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥ वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सगिरींश्चापिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥ ११ ॥

और विरक्त देखकर एकबारही छोडकर चलेगये, आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनेलगे॥७॥कि निश्चय जानकी हरीगई, या मृतक होगई अथवा किसी करके भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रही हैं या वनमें चली गई हैं ॥ ८ ॥ अथवा वह फूल फल चुनने के लिये कहीं वनमें गई हैं या जल लानेके लिये सरोवर या नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं न पाया, तब शोकके मारे उनके नेत्र लाल २ होगये उससमय वह उन्मत्तोंके समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे

दौड़कर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछने लगे कि हे कदम्ब ! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै ? यदि देखाहो तो उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो ॥ १२ ॥ हे बिल्व ! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन ! प्रिया तुमको अतिशय चाहतीथी, सो वह क्षीणांगी जनककुमारी जीवितहै या नहीं सो बताओ ॥ १४ ॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानता होगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्प फल सबही लगे हैं ॥ १५ ॥ और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति ! तुम सब वृक्षोंमें प्रधान हो और जान

अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशंससीतांशुभाननाम् ॥ १२ ॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥ १३ ॥ अथवार्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुनप्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयदिजीवतिवानवा ॥ १४ ॥ ककुभःककुभोरूंव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥ लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः ॥ १५ ॥ भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥ अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥ १७ ॥ यदितालत्वयादृष्टापक्वतालोपमस्तनी ॥ कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि ॥ १८ ॥ यदिदृष्टात्वयाजंबुजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे ॥ १९ ॥ अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम् ॥ कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया ॥ २० ॥

कीभी सब रमणियोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहां हैं सो बताओ * अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यार करतीथीं इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥ हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपने नामवाला कर दो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्वतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखा है और हमारे ऊपर कुछभी दया करते हो तब वह वरारोहा सीता कहां है ? सो हमको बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमने देखा है तो निःशंक चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम

* रागनी झंझोटी ताल एकताला । सीता बिनु देख कुटी सोचत रघुराई ॥ आस्थाई ॥ लक्ष्मण तुम कहा कौन दुकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओ चीन्ह लेगयो चढाई ॥ १ ॥ सिय बिन व्याकुल शरीर धनवा मनके धरत धीर धीर कौन हरै नीर दृग चले बहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवश राम भये द्रुमलतासों पूछनगये शोकविवश बोलत नहिं सब रहे मुरझाई ॥३॥ आगे गृध्र भेटभई ताने सकल बात कही तेहिका प्रभु मोक्ष दई सारद बरिणाई ॥ ४ ॥

पुष्पित होकर अत्यन्तशोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करती थीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तो कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम, नीप, महासाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचन्द्रजी उनसे कहते थे ॥२१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंके नीचे २ जाकर भ्रान्तचित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचन्द्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी मृग इत्यादि पशुओंसे पूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जानते हो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूंड समान आकारवाली उनकी जांघें हैं, यदि तुमने उनको देखाहो तो कहो ? इससे हे गजराज ! हमें बतादो कि, वह कहां है ? ॥ २४ ॥ हे शार्दूल ! उन चंद्रवदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखा हो तो हमारा विश्वास करके हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहीं है अर्थात् तुम इस बातसे न डरो कि, हम

चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा॥दाडिमानपितान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः॥२१॥बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा॥ पृच्छन्रामोवने भ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते॥२२॥अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम्॥मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत्॥२३॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्येविदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण॥२४॥शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥ ॥२५॥किंधावसिप्रियेनूनंदृष्टासिकमलेक्षणे॥वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे॥२६॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणामयि॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे॥२७॥पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि॥धावंत्यपिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम् ॥२८॥ नैवसानूनमथवाहिंसिता चारुहासिनी॥कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षितुमर्हति॥२९॥व्यक्तंसाभक्षितावालाराक्षसैःपिशिताशनैः॥विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ३०

तुम्हेंमार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जाती हो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लिया है तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिपकर हमसे नहीं बोलती हो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहते हैं कि, तुम खडी रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुम तो कभी हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थीं क्यों हमारी उपेक्षा करती हो ? ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहँचान लिया है, और यहभी हम देख रहे हैं कि तुम भागही रही हो इससे यदि तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखती हो तो लौट आओ और भागती न फिरो ॥२८॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमने जिसको देखाहै वह तुम नहीं हो, तुमको तो निश्चय ही किसीने मारडाला, यदि ऐसा न होता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९ ॥ स्पष्ट विदित होताहै कि, मांस खानेवाले राक्षसोंने हमारा वियोग पाईहुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥

अहो इनका वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडल समन्वित, पूर्ण चंद्रमाके समान वदन राक्षसों करके ग्रस्त होजाने पर निश्चयही प्रभाहीन होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूषणोंसे भूषित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशुद्धहै सो राक्षसोंने ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंने जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तो न जाने उन्होंने कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बांहें पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चय ही राक्षसोंने इधर उधर फेंकफांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इससे ही वह बन्धु बान्धव युक्त होकर भी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया ॥ ३४ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमने प्राणप्यारीको कहीं देखाहै

नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥३१॥ साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रैवेयकोचिता ॥ कोमलाविलपंत्या स्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥ ३२ ॥ नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौवेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहितावा लारक्षसांभक्षणायवै ॥ सार्थेनेवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोपश्यसेत्वंप्रियांक्वचित् ॥ हाप्रियेक्वगताभद्रेहासीते तिपुनःपुनः ॥ ३५ ॥ इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ क्वचिदुद्भ्रमतेयोगात्क्वचिद्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्वचिन्मत्तइवाभातिकांता न्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिचवेगेनभ्रमत्यपरिसंस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरी त्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकारमार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये ऽरण्यकांडेषष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

हा प्रिया ! हा सीते ! हा भद्रे ! तुम कहां गईं इन शब्दोंको रामचन्द्रजी वार २ कहतेथे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वारंवार विलाप करते २ रामचन्द्रजी वन २ में वेग सहित घूमने लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी २ सब वन तथा दिशा विदिशाओंमें घूमने लगते ॥ ३६ ॥ कभी रामचन्द्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी २ प्रियाके ढूँढनेमें तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरने और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते। और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारोंओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक २ स्थल ढूँढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाष पूर्ण नहीं हुआ। परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीके खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तो देखा कि, शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ तब और वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता कहां हैं ? इस आश्रमसे किस स्थान को चली गई हैं ? हे सौमित्रे ! प्रियाको किसने हरण किया, वा भक्षण किया ? ॥ ३ ॥ हे सीते ! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहिये था उतना उपहास होगया, अब अधिक न दुःखी करो । देखो ! हम महादुःखमें पडनेसे व्याकुल हो रहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरज दो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकने हमको

दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥१॥ अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥ उवाचरामःप्राक्रुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥२॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेशमितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षिताकेनवाप्रिया ॥३॥ वृक्षेणावार्ययदिमांसीतेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेहसितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥४॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायंत्यस्राविलेक्षणाः ॥५॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोकेमहाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमेपिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥७॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहागतः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनंभग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छसिवरारोहेमामोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥ त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११ ॥

ढक लियाहै ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चयही हमसे यह कहेंगे कि, हे राम ! हमने तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेको कहाथा, और तुमने भी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें वसेंगे ॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये ? स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है ! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेके योग्य हमको यहां छोड कहां जातीहो ? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्ति छोड देती है हे वरारोहे ! हे सुमध्यमे ! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे, श्रीरामचन्द्रजी सीताके दर्शनाभिलाषी होकर इस

प्रकार विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दल २ में फँसे हुए महागजकी समान बहुतही व्याकुल होगये. । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहने लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान् ! आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलेगा। हे वीर ! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित जो गिरवर है ॥ १४ ॥ इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्याराहै, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त होजातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखने न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखने गई हों ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तो न चली गई हों अथवा हम तुमको त्रासित करनेकी कामनासे

नददर्शसुदुःखार्तोराघवोजनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२ ॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणो राममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३ ॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इमंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवापिसंप्रातामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामा वालीनास्यात्काननेक्वचित् ॥ १६ ॥ जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमांचपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥ वनंसर्वंविचिनुवो यत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दाल्लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे॥१९॥तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ॥२०॥तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥२१॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत्॥नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वतेशुभाम् ॥२२॥

इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रही हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह ! वह यह जाननेके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पा लेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप तोभी यही मानते हो कि जानकी इसी वनमें हैं तब तो इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये ॥ १८ ॥ जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधानचित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढने लगे ॥ १९ ॥ वन, गिरि, तालाव, एक २ करके दोनों भाइयोंने सीताको ढूंढनेके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कँगूरों, चट्टान, व शिखर व सब रजी २ खोजनेपर जानकीजीके दर्शन न हुए. ॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे भाई ! इस पर्वत पर प्यारी

जनककुमारीको दृष्टि नहीं आतीं ॥ २२ ॥ लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्यमें विचरण करतेहुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्तहो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता
रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णुजीने जिसप्रकार बलिको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेही जनककुमारी
सीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अति दीनतासे बोले ॥ २५॥ हे महाबुद्धिमान्! सारा वन फिरे
फूले कमल कमलाकर सरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकी
जीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचन्द्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ एक मुहूर्त भरतक

ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥
यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वामहीमिमाम् ॥ २४ ॥ एवमुक्तस्तुवीरेणलक्ष्मणेनसराघवः ॥ उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥
वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरिश्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नहिपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥ एवंसवि
लपन्रामःसीताहरणकर्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोऽभवत् ॥ २७ ॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिः
श्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनिःश्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामासत
तोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजलिः ॥ ३० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥ अपश्यंस्तांप्रियांसी
तांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकषष्टितमःसर्गः॥६१॥सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपह
तचेतनः ॥ विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥

विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वे बुद्धिहीन और चैतन्य रहित होगये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर
गरम लम्बे २ श्वास लेकर विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीने वारंवार श्वास ले हा प्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसू भर
बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने
बुझाने लगे ॥ ३० ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उनके मुखसे निकलेहुए वचनोंका अनादर करके प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करने लगे ॥ ३१ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायामेकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥ महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके दर्शन न पा करके

शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन न पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करके कामवाणसे पीडित हो विलाप पुनः दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये ! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय अशोक शाखा समूहद्वारा अपना शरीर ढक कर हमा शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमने उनको कदलीसे छिपा रक्खा है सो हम उनको देख रहे हैं तुम अ उनको नहीं छिपा सकती हो ॥ ४ ॥ हे भद्रे ! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करती हो, परन्तु हमको पीडन करके और अधिक उपहास करनेका प्रयोजन नहीं है ॥५॥ विशेष करके आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता हे प्रिये ! यह तो हम जानते हैं कि; स्वभावसेही तुम परिहासप्रिया हो ॥६॥ परन्

पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥ त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥ आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ कदलीकांडसदृशौकदल्यासंवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कर्णिकारवनंभद्रेहसंतीदेविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशीलंपरिहासप्रियंप्रिये ॥ ६ ॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षितावाहृतापिवा ॥ ७ ॥ नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रतिलक्ष्मण ॥ एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांरजनीचरैः ॥ हाममार्येक्वयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥ हासकामाद्यकैकेयीदेविमेद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनिर्यातोविनासीतामुपागतः ॥ १० ॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमंतःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइतिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्यति ॥ ११ ॥

हे विशालाक्षी ! यह पर्णशाला सूनी पडी है इस कारण आओ। हे लक्ष्मण ! निश्चय होता है कि, सीताको राक्षसोंने भक्षण कर लिया अथवा वह उनको हरण कर ले गये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देखकरभी हमारे निकट नहीं आती. हे लक्ष्मण ! इस परये मृग यूथगण रोदन करते हैं ॥ ८॥ यह भी मा पही कह रहे हैं कि, राक्षसोंने सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छे शीलवाली साध्वी ! हा वरवर्णिनी सुमुखि ! हा आर्या ! तुम कहां गई हो ? ॥९॥ अब सी करके रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयी देवी सफल मनोरथ हुई, क्योंकि अब वह देखेंगी कि, सीता सहित गये थे और आये सी रहित ! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपने रनवासमें प्रवेश करेंगे ? सब लोग हमको वीर्य, रहित और निर्दयी कहकर निन्दा करेंगे ॥ ११ ॥

सीताजीके बिना मंग होनेसे निश्चयही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी. कारण कि, जब हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी
॥ १२ ॥ कुशल पूछेंगे तो किसप्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे ? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकी
विनाशसे संतप्त हो मोहके वश हो जायँगे । पिता दशरथजीही धन्य हैं ! क्योंकि वे स्वर्गमें वास करते हैं । अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जा-
॥ १४ ॥ अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके विना तो हम स्वर्गकोभी शून्य समझते हैं; इस कारण हे लक्ष्मण ! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अ-
योध्यामें चले जाओ ॥ १५ ॥ हम जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं हैं । तुम हमारी ओरसे भलीभाँति भरतजीको गाढ आलिं-

कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥ १२ ॥ कुशलंपरिपृच्छंतंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम् ॥ विदेहराजो
नूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥ १३ ॥ सुताविनाशसंतप्तोमोहस्यवशमेष्यति ॥ " तातएवकृतार्थःसतत्रैववसतादिति " अथवानगमिष्यामिपुरींभरत
पालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरींशुभाम् ॥ १५ ॥ नत्वहंतांविनासीतांजीवेय
हिकथंचन ॥ गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥ १६॥ अनुज्ञातोऽसिरामेणपालयेतिवसुंधराम् ॥ अम्बाचममकैकेयीसुमित्राचत्वया
विभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्यामाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥ १८ ॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्र
सूदन ॥ विस्तरेणजनन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९॥ इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्म
णोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरोबभूव ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

कर कहना ॥ १६ ॥ कि, रामचन्द्रजीने यह आज्ञा की है कि, तुमहीं इस राज्यका पालन करो । हे विभो ! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ अ-
कौसल्याजीसे इनसेंसे सबसे हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८
हे शत्रुके मारनेवाले ! और मेरी माताजीसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्त भी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुके-
शीसीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे । तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पडगया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर हो-
॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी प्रिया विन हो शोक मोहसे आतुर होनेके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे २ श्वास लेते हुये, रोते २ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हम समझते हैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहीं है, देखो एकके पीछे एक इस प्रकार लगातार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको बेधे डालते हैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमने इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म किये हैं आज उनका फल मिलरहाहै । इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहे हैं ॥ ४ ॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आती हैं

सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥ १ ॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नं शोके निमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥ २ ॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥ ३ ॥ पूर्वंमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि ॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥ ४ ॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगःपितुर्विनाशोजननीवियोगः ॥ सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि ॥ ५ ॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥ सानूनमार्याममराक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः ॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥ तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचंदनस्य ॥ वृतौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥ ८ ॥

तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देती हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! वनमें आकर सीताके साथ रहनेसे वह सबही दुःख छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियोगसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुए अग्निके समान वही दुःख फिर प्रबल होगये हैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको

अब हम इस शरीरसे उनको न भेंट सकेंगे । उनका मुखमंडल घूँघरवाले बालोंके बीचमें शोभित, और सुन्दर, सुमधुर, सुकोमल, और साफ चिकना सँवारा हु- मो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुके मुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाके समान निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलग होगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रता प्रियाकी वह ह- गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी सो रुधिरपान करनेवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान किया होगा ॥ १० ॥ हमारे न हो- निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ किया होगा, तो उस समय वह बडे नेत्रवाली सीताने निश्चयही कुररीकी समान विलाप कि- होगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण ! हम वह हास्यमुख उदारस्वभाववाली सीता प्रथम हमारे साथ इस शिलातलपर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें क-

तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥ ९ ॥ तांहारपाशस्यसदोचितां ग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः ॥ रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराहृत्यविकृष्- माणा ॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥ ११ ॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा ॥ कांतस्मितालक्ष्म जातहासात्वामाहसीताबहुवाक्यजातम् ॥ १२ ॥ गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम् ॥ अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैव किन्नीयातिहिसाकदाचित् ॥ १३ ॥ पद्माननापद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपं- जानि ॥ १४ ॥ कामंत्विदंपुष्पितवृक्षखंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिविभेतिभीरुः ॥ १५ ॥ आ- त्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्वगताहृतावाशंसस्वमेशोकहतस्यसर्वम् ॥ १६ ॥

थीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आती है कि कदाचित् वह इस नदीके पर चली गईहों । परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमलदलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल ले- चली गई हैं ? यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेने नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष- शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेको गई हैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती, क्योंकि उनका डरपोक स्वभ- अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेमे वह बहुत डरतीथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृताकृतको जानते हैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं.

कानन्में ...कर हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो जिसकी तुम्हारे ज्ञान मार्गमें विदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा यहीं मार्गमें फिर रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिशास्त्रमें स्थित हो धीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुस्तर कार्य करनेंमेंभी कभी नहीं घवडाते॥ १९ ॥ बडे पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय

...लोकेषुनास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृताहृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहं रामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्येस्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तु विमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तंरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामास धृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्त स्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वाराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामि तीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥

समझकर न गिना परन्तु एक बारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० अर० भाषाटीकायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रामचन्द्रजी हमसे इस मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ कि, सीता कमल फूल लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारोंओर जग २ करके ढूँढभाल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चलीगई हैं ॥ ४ ॥

सो उन सूक्ष्म मध्यमस्थान वालीका पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचन्द्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥ ५ ॥ श्रीराम चंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहां खडे होकर पूछने लगे कि सीता कहां है ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंने तथा गोदावरी नदी किसीने भी श्रीराम चन्द्रजीको यह न बताया कि मारे जानेके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर ले गयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच भूतोंने व प्राणियोंने गोदावरी नदीसे कहा कि रामचन्द्रजीसे सीताको बताओ, और शोच करते हुये रामचन्द्रजीने भी पूछा परंतु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेका कारण यह हुआ कि, रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेके मारे भयसे गोदावरीनदीने श्रीरामचन्द्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब

नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥ ५ ॥ रामःसमभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुप स्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणवधार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरीनदी ॥७॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशं सचास्मैप्रियामिति ॥ नचसाह्यवदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥८॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्माणिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहींसानदीनशशंसह ॥ ९ ॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्शितः ॥१०॥ एषागोदावरीसौम्यकिंचिन्नप्रतिभाषते ॥ किंनु लक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥ सर्वंव्य पानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता ॥ ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेहीमप्यपश्यतः ॥ १३ ॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजनस्था नमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥ सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते ॥ एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥ १५ ॥

गोदावरीने सीताजीके दर्शनसे निराश किया तब श्रीरामचन्द्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन ! यह गोदावरी तो कुछ भी उत्तर नहीं देती परंतु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीते हुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतीथीं वह वैदेहीजी कहां गई ? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेसे रात्रि हमको बडी जान पडेगी अब हम मन्दाकिनी नदी जटास्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे ! जिससे कि सीताजीको देखें । हे वीर ! यह मृगगण हमको बार २ देखते हैं ॥ १५ ॥

कारणसे शोकहत हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें विदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा कहीं मार्गमें टिक रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिशास्त्रमें स्थित हो अदीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमेंभी कभी नहीं घवडाते॥ १९ ॥ वडे पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय

लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृताहृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहं रामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्येस्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तु विमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तंरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामास धृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्त स्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वाराममब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामि तीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥

समझकर न गिना बरन वह एक वारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० अर० भाषाटीकायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रावणकी हममें दृढ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ॥ १ ॥ कि, सीता कमल फूल लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारोंओर जरा २ करके ढूँढभाल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सबही घाटोंपर ढूँढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चलीगई हैं॥ ४ ॥

सो उन सूक्ष्म मध्यमस्थान वालीका पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचन्द्र और भी दीन व संतापसे मोहितहो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहां खडे होकर पूछने लगे कि सीता कहां है ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंने तथा गोदावरी नदी किसीने भी श्रीरामचन्द्रजीको यह न बताया कि मारे जानेके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर ले गयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच भूतोंने व प्राणियोंने गोदावरी नदीसे कहा कि रामचन्द्रजीसे सीताको बताओ, और शोच करते हुये रामचन्द्रजीने भी पूछा परंतु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेका कारण यह हुआ कि, रावणका रूप और उस दुरात्माके कार्योंका स्मरण करनेके मारे भयसे गोदावरीजीने श्रीरामचन्द्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब

नहितांवेश्मि रामगमसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दीनः संतापमोहितः ॥ ५ ॥ [illegible] रामः [illegible] सीतेत्येवमब्रवीत् ॥ ६ ॥ भूतानि राक्षसेन्द्रेण [illegible] ॥ [illegible] गोदावरी नदी ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ ८ ॥ [illegible] ॥ ९ ॥ [illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ॥ १२ ॥ [illegible] ॥ १३ ॥ [illegible] ॥ १४ ॥ [illegible] ॥ १५ ॥

ताय [illegible] किया तब श्रीरामचन्द्रजी सीताके वियोगसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ॥ १२ ॥ [illegible]

चाहताथा परन्तु रावणके [illegible]

॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष पल्लव [illegible]

यह सब हमारी चद्रमुखी सीताको नहीं बताते तो हम [illegible]

इधर उधर देखते २ श्रीरामचंद्रजीने पृथ्वीपर देखा जहां कि राक्षसके [illegible]

उधर दौड़ती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेसे जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके [illegible]

कारणसे शोकहत हमको बतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें विदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षनी सीताने प्राण दिये हैं या वह किसीसे हरी गई हैं अथवा कहीं मार्गमें टिक रही हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब नीतिशास्त्रमें स्थित हो अदीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साहयुक्तहो जानकीजीको ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमेंभी कभी नहीं घबडाते॥ १९॥बडे पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय

लोकेषुसर्वेषुननास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृताहृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतीवतंशोकविधेयदेहं रामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्येस्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तु विमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तंरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामास धृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥१॥ अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता ॥ एवमुक्त स्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥ २ ॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्यारामम‌ब्रवीत् ॥ ३ ॥ नैनांपश्यामि तीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥ कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥ ४ ॥

समझकर न गिना बरन वह एक वारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० अर० भाषाटीकायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥ रावणकी हममें दृढ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने लगे दीन भावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ॥१॥कि, सीता कमल फूल लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं ? जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर॥२॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारोंओर जरा २ करके ढूँढभाल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सभही घाटोंपर ढूँढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंने न सुना । हे आर्य ! जाने कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चलीगई हैं॥४॥

...लक्ष्मणजीसे ऐसा कह ॥ २८ ॥ बहुत सारे झरने जिसमें झररहे ऐसे ... सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीने ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामच
गसुन्दरीको देखाहै ? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै ? सामनेवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने क्या उन सर्वा
उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै ॥ ३० ॥ जब इस पर्वतने इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर
वाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ हे पर्वत ! जबतक हम तुम्हारे शृंग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्ण
जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो मानों यह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचन्द्रजीको बताना

अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्लक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८॥ उवाचरामोधर्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम् ॥ कच्चित्क्षितिभृतां नाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥ २९ ॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥ क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतां दर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे॥३२॥ ततोदाशरथीरामउवाचशिलोच्चयम् ॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३॥ असेव्यःसर्वतश्चैवनिस्तृणद्रुमपल्लवः ॥ इमांवासरितं चाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥ यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥ एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनि ष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावंत्याइतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृतायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसी तायाराक्षसस्यच ॥ ३७ ॥

चाहताथा परंतु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ ३२ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले कि तुम हमारे बाणानलकी अनंत अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष पल्लवादि जल जानेसे कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तो हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचंद्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥ ३५ ॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचंद्रजीने पृथ्वीपर देखा जहां कि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचंद्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेसे जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बने देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीराम

इनके संकेतोंसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहते हैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कहे उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी उन मृगोंसे बोले॥ १६॥ हे मृगो ! सीता कहां हैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए॥ १७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखने लगे ॥ १८ ॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर, चिघडते, और फिर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥ १९ ॥ मृगगणोंकी यह धावमान होने और शब्दोंकी दशा देख लक्ष्मणजीने उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया ॥ २० ॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपने बडे भ्राता रामचन्द्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव ! जब आपने

वक्तुकामाइवहिमेइंगितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेण तेमृगाःसहसोत्थिताः ॥ १७ ॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनराधिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥ १९ ॥ पुनर्नदंतोगच्छंतिलक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥ २० ॥ उवाचलक्ष्मणोधीमाञ्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत् ॥ क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥ २१ ॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुगच्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥ २२ ॥ यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम् ॥ एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ ॥ २४ ॥ वसुंधरायांपतितपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिंनिपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥ २५ ॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकानने ॥ मन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७ ॥

इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं ? तब यह सब एका एक उठ खडे होकर ॥२१॥ दक्षिण दिशाकी ओर पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥ २२ ॥ क्योंकि कदाचित् आपही सीता वहां मिलजायँ अथवा उनकी प्राप्तिका कोई उपाय मिल जावे, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले ॥ २३ ॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाई वन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले ॥ २४ ॥ आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडे हैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ २५ ॥ बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण! हम जानते हैं कि यह वही पुष्पहैं ॥ २६ ॥ जो हमने वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपने अंगोंमें धारण कियेथे, यह

पडाहै ॥ ४७ ॥ जो जगह २ पटकने व दे मारनेसे टूट गयाहै। यह किसीके रथके लम्बे २ बाँणभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडे हैं जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै। बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ४९ ॥ देखो! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडा है। देखो यह किसी पुरुषराक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन! किस कारणसे अतीव कठिनहृदय कामरूप निशाचरगणोंके सहित हमारा पहलेसे शतगुण अधिक वैर होगया? तुम देखलेना कि इससे उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किन्तु जब इस महाअरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेभी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीयशक्तिसम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेमें

अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहतावाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौविध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥ पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः ॥ ५० ॥ वैरंशतगुणंपश्यममतेर्जीवितान्तकम् ॥ सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ ५१ ॥ हृतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी ॥ नधर्मस्त्रायते सीतांह्रियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः ॥ ५५ ॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण ॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥ संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥

समर्थ होगा? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञानयुक्त समस्त लोकोंके कर्ता मुझ परमदयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानते हैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हितकार्य करते हैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करते हैं परन्तु हम सीताका उद्धार न करसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्यरहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोषरूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इससे अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥ चन्द्रमाकी चांदनीको मिटाय, महासूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककरतेहैं ॥ ५७ ॥

चन्द्रजीने बडा क्रोध किया ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु और बहुत सारी मालायें यहां पर टूटी पडी हैं ॥ ३९ ॥ हे भइया ! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णबिन्दुसम विचित्रित रक्तबिन्दुसमूह छिटक रहे हैं यह सीताका वो रुधिर नहीं है ॥ ४० ॥ हे भइया, लक्ष्मण ! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांटचूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होनेमे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्तामणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वीपर

भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णंबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशंसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥ मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तंसीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरं राक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥ धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगुलिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ ४५ ॥ भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरश्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाःकस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥

टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! या तो यह धनुष राक्षसोंका है वा देवताओंका है प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्यमणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २ टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाकासमन्वित दिव्यमालाशोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य ! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुखवाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडे हैं । फिर दीप्तिमान् अग्निके समान अतिदेदीप्यमान समरमें स्वामीका प्रकाश करनेवाला [illegible]

पडाहै ॥ ४७ ॥ जो जगह २ पटकने व दे मारनेसे टूट गयाहै । वह किसीके रथके लम्बे २ बाँणभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण ! टूटे फूटे पडे हैं जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होताहै । बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ४९ ॥ देखो ! चाबुक और बाग हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पड़ा है । देखो यह किसी पुरुषराक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ५० ॥ हे शुभदर्शन ! किस कारणसे अतीव कठिनहृदय कामरूप निशाचरगणोंके सहित हमारा पहलेसे शतगुण अधिक वैर होगया ? तुम देखलेना कि इससे उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५१ ॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया या भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किन्तु जब इस महाअरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गई और उस समय धर्मनेभी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीयशक्तिसम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेमें

अपविद्धश्चभग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥ ४८ ॥ कस्येमेनिहतावाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौविध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥ पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः ॥ ५० ॥ वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितान्तकम् ॥ सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ ५१ ॥ हतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी ॥ नधर्मस्त्रायते सीतांह्रियमाणांमहावने ॥ ५२ ॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥ मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः ॥ ५५ ॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण ॥ अद्यैवसर्वभूतानांरक्षसामभवायच ॥ ५६ ॥ संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥ ५७ ॥

समर्थ होगा ? ॥ ५३ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञानप्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता मुझ परमदयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानते हैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हितकार्य करते हैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करते हैं परन्तु हम सीताका उद्धार न करसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्यरहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! विचार करके देखो ! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोषरूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥ चन्द्रमाकी चांदनीको मिटाय, महासूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीककरतेहैं ॥ ५७ ॥

चन्द्रजीने बडा क्रोध किया ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चाकित होते हुये श्रीराम चन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णविन्दु और बहुत सारी मालायें यहां पर टूटी पडी हैं ॥ ३९ ॥ हे भइया ! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णविन्दुसम विचित्रित रक्तविन्दुसमूह छिटक रहे हैं यह सीताका वो रुधिर नहीं है ॥ ४० ॥ हे भइया, लक्ष्मण ! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांटचूंट उनको खाडाला ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होनेसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्तामणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वीपर

भग्नंधनुश्चतूणीचविकीर्णंबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशंसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥ ३९ ॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥ मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तंसीतायाद्वयोर्विवदमानयोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरं राक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥ धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥ ४३ ॥ राक्षसानामिदंवत्स सुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगुलिकाचितम् ॥ ४४ ॥ विशीर्णंपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥ ४५ ॥ भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरच्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥ ४६ ॥ भीमरूपामहाकायाःकस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥ ४७ ॥

टूटा हुआ पडाहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! या तो यह धनुष राक्षसोंका है या देवताओंका है प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्यमणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २ टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाकासमन्वित दिव्यमालाशोभित छत्र किसका भूमि पर पडाहै ॥ ४५ ॥ हे सौम्य ! इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुखवाले गधे भी ॥ ४६ ॥ महा भयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडे हैं । फिर दीप्तिमान् अग्निके समान अतिदेदीप्यमान समरमें स्वामीका प्रकाश करनेवाला ध्वजायुक्त किसीका युद्धमें काम देनेवाला रथभी

क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक ॥ ६७ ॥ हमारे बाणजालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर इन समस्त लोकोंको मर्यादा शून्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हमको न देंगे ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस सब जगतका विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कहकर क्रोधमे श्रीरामचन्द्रजीकी आँखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीने चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कसकर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि जैसे पूर्व

मद्बाणनिपतिष्यंतिवार्णाचैःशकलीकृताः॥निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः॥६८॥हतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारूपां हिवैदेहींनदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९ ॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौतनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥ संदधेधनुषिश्रीमान्रामः परपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथाकालोयथाविधिः ॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम् ॥ ७५ ॥ पुरेवमेचारुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिनाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धार करके सर्पसदृश घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उस धनुष पर चढाया । और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकेगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्ता निन्दा रहित मिथिलराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित कर डालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे बाणसमूहसे समस्त आकाश व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियोंके गमनागमन रोके देते हैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहोंकी चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाश होनेसे, सब जगह गाढ़ा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैलशिखर मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड़ जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको न देदेंगे ॥ ६२ ॥ तो हमारा पराक्रम

नैवयक्षानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ किन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥ असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥ ६० ॥ विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम् ॥ ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम् ॥ ६१ ॥ त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रेममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥ आकर्णपूर्णैरिपुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोपप्रयुक्तानांविशिखानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥ द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥६६॥ भविष्यंतिममक्रोधात्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥

देखना. हे लक्ष्मण ! इसी मुहूर्तमें व हमारे पराक्रमको देखें कि, इस समय आकाशमेंभी कूदकर कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे धनुषसे छूटेहुये शरजालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महाव्याकुल मर्यादाशून्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सबभाँतिसे भ्रान्त और विनष्ट होजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खैंच छोडे हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोप और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावेगा अधिक

क्या कहैं, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक ॥ ६७ ॥ हमारे बाणजालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर इन समस्त लो…
मर्यादा शून्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हम…
देंगे ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संत…
करेंगे ॥ ७० ॥ यह कहकर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामचन्द्रजीने चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट क…
बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि जैसे…

यद्वयानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः॥निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः॥६८॥हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः ॥ तथारू…
दिवेदर्शनंदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९ ॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वा…
यताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत् ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्र…
…भीतनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरामोनिष्पीड्यकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥ संदधेधनुषिश्रीमान्रा…
…॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथाकालोयथाविधिः ॥ नित्यंनप्रतिहन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥
थाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ ७५ ॥ पुरेवमेचारुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशै…
याम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

…म रुद्रजी त्रिपुर वध करनेको तैयार हुएथे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धार करके सर्पसदृश…
…नायक ॥ ७३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उस धनुष पर चढाया । और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७४ ॥ हे लक्ष्मण ! …
…ु, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं…
…सकेगा ॥ ७५ ॥ सुदन्तयुक्ता निन्दा रहित मिथिलराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् …
…कर डालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होगा ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे बाणसमूहमे समस्त आकाश व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियोंके गमनागमन रोक देते हैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहोंकी चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाशहोनेसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैलशिखर मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता और गुल्म विध्वंस होजांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६१ ॥ हम तीनों लोकोंका नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको न देदेंगे ॥ ६२ ॥ तो हमारा पराक्रम

नैवयक्षानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ किन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥ असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलोक्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितनिशाकरम् ॥ विप्रनष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥ ६० ॥ विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाणजलाशयम् ॥ ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम् ॥ ६१ ॥ त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममेश्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रेममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥ आकर्णपूर्णैरिपुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ ममरोपप्रयुक्तानां विशिखानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥ द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥६६॥ भविष्यंतिममक्रोधात्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि ॥ ६७ ॥

देखना. हे लक्ष्मण ! इसी मुहूर्तमें व हमारे पराक्रमको देखें कि, इस समय आकाशमेंभी कूदकर कोई न बच सकेगा ॥ ६३ ॥ हे लक्ष्मण ! आज हमारे चापके मुखसे छूटेहुये शरजालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महाव्याकुल मर्यादाशून्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सबभाँतिसे भ्रान्त और विनष्ट होजांयगे ॥ ६४ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खैंच छोडे हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं करसकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६६ ॥ जब हमारे क्रोधमे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावेगा अधिक

...आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान
व सरित् सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोई भी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको हरण
कियाहै इस समय उस जनका खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र
वन पर्वत ढूँढ़ेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूँढिये ॥ १४ ॥ जबतक कि आपकी
स्त्रीके हरनेवालेको न पावैंगे, और इस प्रकार शान्तभावसे ढूँढनेपरभी इन्द्रादि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य

कोतुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृता
सीतातमन्वेपितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मद्द्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंचविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधा
वीराःपद्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदा
स्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनयेनसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेन्द्र ॥ ततःसमु
त्सादयहेमपुंखैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसंतप्तं
विलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभि
पीडयन् ॥ २ ॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥
राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसदृश सुवर्णपंखवाले
शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोक संतप्त और महामोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया
॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्तभरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मानु
ष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बड़े २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तो यही

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो सांवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंको जीतनेवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्तलोकको

तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम् ॥ लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तकमिवानलम् ॥१॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वं युगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्टपूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः ॥ नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥ चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यनापराधेनलोकान्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥६॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसिक्तो रुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतः पदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥१०॥

हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआयुक्त और परिच्छदसहित रथ किसका है, और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुदखुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआहै दो जनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहांपर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ राजा लोग चराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होते हैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शर

न्त्र और परम गति है ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान
व सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोई भी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते। हे राजन् ! जिसने सीताको हरण
कियाहै इस समय उस जनका खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र
वन पर्वत ढूंढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी वाल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूँढिये ॥ १४ ॥ जबतक कि आपकी
सीता हरनेवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्तभावसे ढूँढनेपरभी इन्द्रादि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य

कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृता
सीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मद्द्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंचविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधा
घोराःपद्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदा
स्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनयेनसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेन्द्र ॥ ततःसमु
त्सादयहेमपुंखैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसंतप्तं
विलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभि
पीडयन् ॥ २ ॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥
राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसदृश सुवर्णपंखवा
शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोक संतप्त और महामोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया
॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्तभरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मा-
नुष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बडे २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तो यहीं

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो सांवर्तकप्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ और प्रलयका लमें समस्त जगत् दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करतेहुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंको जीतने वाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्तलोकको

तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम् ॥ लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तकमिवानलम् ॥१॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ दग्धुकामंजगत्सर्वं युगांतेचयथाहरम् ॥२॥ अदृष्टपूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥ पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः ॥ नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥ चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनित्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यनापराधेनलोकान्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥६॥ केनवाकस्यवाहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥ ७ ॥ देशोनिर्वृत्तसंग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविमर्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥ ८ ॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम् ॥ नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि ॥ ९ ॥ युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधाधिपाः ॥ सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥१०॥

हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआयुक्त और परिच्छदसहित रथ किसका है, और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुदखुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआहै दो जनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहांपर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहीं है ॥९॥ राजा लोग नरवरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाववाले होते हैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शर

॥

ण्य और परम गति हैं ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दान
व सरित् सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोई भी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन् ! जिसने सीताको हरण
कियाहै इस समय उस जनका खोज करना आपका कर्तव्य हुआहै ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र
वन पर्वत ढूंढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये ॥ १४ ॥ जबतक कि आपकी
स्त्रीके हरनेवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्तभावसे ढूंढनेपरभी इन्द्रादि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य

कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागराःशैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः ॥ येनराजन्हृता सीतातमन्वेषितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मद्द्वितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः ॥ समुद्रंवाविचेष्यामःपर्वतांश्चवनानिच ॥ १३ ॥ गुहाश्चविविधा घोराःपद्मिन्योविविधास्तथा ॥ देवगंधर्वलोकांश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभार्यापहारिणम् ॥ नचेत्साम्नाप्रदा स्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः ॥ कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि ॥ १५ ॥ शीलेनसाम्नाविनयेनसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेन्द्र ॥ ततःसमु त्सादयहेमपुंखैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ तंतथाशोकसंतप्तं विलपंतमनाथवत् ॥ मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥ ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः ॥ रामंसंबोधयामासचरणौचाभि पीडयन् ॥ २॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा ॥ राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥ ३ ॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीपतिः ॥ राजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥

दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्रसदृश सुवर्णपंखवाले
शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोक संतप्त और महामोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया ॥
॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्तभरतक उनको समझाने बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विध धर्मानु
ष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बडे २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उससे तो यही

ज्ञात होताहै कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बँधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तो अल्पप्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप अपने चित्तको सँभालिये । विपद अग्निके समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करतीहै किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करके भी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआ था ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वसिष्ठजीने एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये और एक दिनमेंही विश्वामित्रसे वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर ! जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करने योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमान होना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ जो सूर्य चन्द्रमा जगतके नेत्र

यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठप्राणिनःकस्यनापदः॥संस्पृशंत्य ग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥ ६ ॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रेणसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षियोवसि ष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्यपुनर्हतम् ॥८॥ याचेयंजगतोमातासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोश लेश्वर ॥ ९ ॥ यौधर्मौजगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहाबलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥ शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वंव्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायाम पिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथान्यःप्राकृतस्तथा ॥ १३ ॥ त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरा मानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यासमनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥ १५ ॥

और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे अति महत भूत और देवतालोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीरधारी प्राणियोंकी क्या गिनती है ? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहें इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इससे हे नरसिंह ! आप अब व्यथित न हूजिये ॥ १२ ॥ हे रघुनंदन ! यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगईहों तोभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ हे वीर ! आपकी समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्यगण सचराचर बडीभारी विपद पडने परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप भलीभाँति विचार करके यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये । आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे

... पुनापुन ... जानते हैं ॥ १५ ॥ जिनके गुन और दोष जबतक प्रगट दृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके फलोंके ... ... आशा नहीं होसकती और उनका जानना विना किया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनेही प्रथम हमको अनेक बार इसप्रकारका उपदेश दियाहै और आपको उपदेश देनेमें तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी बुद्धिको देवता लोगभी नहीं ढूंढ सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकमें इसप्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुवर! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेका क्या प्रयोजनहै ? आप उसी अपने शत्रुको

अदृष्टगुणदोषाणामधृतानांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेणक्रियांतेषांफलमिष्टंप्रवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिको नुत्वामपिसाक्षाद्बृहस्पतिः ॥ १७ ॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यंचमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ १९ ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्षभ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥ सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्सक्वागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेनपश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ४ ॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराःकंदराणिच ॥ ५ ॥

जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ लक्ष्मणजीके इसप्रकार अतिशय सारगर्भ सुन्दर वचन कहने पर सारके ग्रहण करनेवाले महाबाहु रामचन्द्रजीने उनको ग्रहण किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शांतकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ हे वत्स ! हम इस समय कहां जांय क्या करें और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवें! सो तुम इसका विचार करो ॥ ३ ॥ तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥

पत्थरोंकी चट्टानें और अनेक जातिवाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूँढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीने बडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाले बडे भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेही जान

गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥ तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधा
बुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥७ ॥ आपत्सु न प्रकंपंतेवायुवेगैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरं
संधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभंमहाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्र
वीत् ॥ १० ॥ अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमास्तेसीतांयथा
सुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥१२॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रुद्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३॥
तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदशरथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्रा
णारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्वयाविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥ १६ ॥

कीको भक्षण कर लियाहै, बस यह ठीकही ठीक जान पडताहै यह राक्षस गृध्र बना वनमें घूमताहै ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताको भक्षण करके यथासुखसे विश्राम कर रहाहै । इस कारण हम सीधे चलनेवाले अग्निके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर कोधित हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कँपाते हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥१४॥ आयुष्मान् तुम औषधिकी समान जिनको इस महावनमें खोजते हो, वह देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणने हर लिये हैं ॥१५॥ हे रघुनंदन ! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें न रहने पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ

तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह ज
हमने देखाहै ॥ १८ ॥ उस समय हमने सीताजीको छुड़ानेके लिये सन्मुखहो युद्ध करके उसके रथ और छत्रको तोड डाला ॥ और यह सारथीभी
और बाण टूटे हुये पड़े हैं यह उसकेही हैं और रामचन्द्रजी ! यह उसकाही संग्राममें काम देनेवाला रथहै जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथीभी
है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै बूढे होनेके कारण जब हम लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने खड्गसे हमारे पंख काट डाले ॥
और वह सीताजीको लेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करके मारेही गयेहैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥
श्रीरामचन्द्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयके प्रिय वचन सुनतेही महाधनुषको त्याग करके आलिंगन करलेते हुए ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो

सीतामभ्युपपन्नोऽहंरावणश्रणेप्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥१७॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेराम-
सांग्रामिकोरथः ॥ १८ ॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥ सीतामादायवैदेहीमुत्पप-
हारावणम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम् ॥ गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः ॥२१॥
निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः ॥ द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्य
दुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णम-
पिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहती
प्राप्ताव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

गिरकर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करने लगे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल ए
एकांतमें पड़े बारंबार ऊँची श्वास लेते हुए देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये वनमें वास हुआ, सीता
गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात क
हम दुःखके संतापसे शांति पानेके लिये तल्हीन तल्हीन महासागरभी उतरें ! तो वह सरितस्वामी समुद्रभी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एकबार
जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हम सा अधिक मंदभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतना बडा दुःखका जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली ग

पत्थरोंकी चट्टानें और अनेक जातिवाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां वहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूँढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीने वडा कोप करके पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाले वडे भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेही जान

गुहाश्चविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥ ६ ॥ तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधा बुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥७ ॥ आपत्सु न प्रकंपंतेवायुवेगैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥ ८ ॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरं संधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभंमहाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितंभूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंरामोलक्ष्मणमब्रवीत ॥ १० ॥ अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमास्तेसीतांयथा सुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥१२॥ इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्गृध्रंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रुद्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥ १३॥ तंदीनदीनयावाचासफेनंरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदशरथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्वयाविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनवलीयसा ॥ १६ ॥

कीको भक्षण कर लियाहै, वस यह ठीकही ठीक जान पडताहै यह राक्षस गृध्र बना वनमें घूमताहै ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताको भक्षण करके यथासुखसे विश्राम कर रहाहै । इस कारण हम सीधे चलनेवाले अग्निके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कँपाते हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥ १४ ॥ आयुष्मान् तुम औषधिकी समान जिनको इस महावनमें खोजते हो, वह देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणने हर लिये हैं ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन । महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें न रहने पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ

हमने देखाहै ॥ १६ ॥ उस समय हमने सीताजीको छुटानेके लिये सन्मुखहो युद्ध करके उसके रथ और छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचन्द्रजी ! यह उसकाही संग्राममें काम देनेवाला रथहै जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथीभी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै बूढे होनेके कारण जब हम लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने खड्गसे हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और वह सीताजीको लेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करके मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयके प्रिय वचन सुनतेही महाधनुषको त्याग करके आलिंगन करलेते हुए ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वीमें

सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणेप्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥१७॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेगमभग्नः सांग्रामिकोरथः ॥ १८ ॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥१९॥ सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥ २० ॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम् ॥ गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः॥२१॥ निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः ॥ द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममालक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्ता मयाव्यसनवागुरा ॥ २६ ॥ अयंपितुर्वयस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥

गिरकर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करने लगे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकांतमें पडे वारंवार ऊँची श्वास लेते हुए देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं ! हम इस दुःखके संतापसे शांति पानेके लिये तलहीन तटहीन महासागरभी उतरें । तो वह सरितस्वामी समुद्रभी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एकवारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हम सा अधिक मंदभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतना बडा दुःखका जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज

हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यहभी हमारे भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ❀ ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके सहित पिताकी समान स्नेह दिखातेहुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिरमें डूबे गृध्रराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहां गई है" यह कहकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्रसे कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न

इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुपंचपस्पर्शपितृस्नेहंनिदर्शयन् ॥२८॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अरण्यकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥ २ ॥ अतिखिन्नःशरीरेऽस्मिन्प्राणोलक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥ जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहर्तुंपुनः ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यांरावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधंतुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥ कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥

करके हमारेही लिये राक्षससे मारे जाकर अब प्राणत्याग करते हैं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! इनका बोल धीमा पडगया और दृष्टिहीन हो आई है और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इनकी देहमें टिक रहे हैं ॥ ३ ॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेकी शक्ति हो तो सीताहरणका वृत्तान्त और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणने किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया और हमने उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशिसदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहा था ॥ ६ ॥

❀ सवैया ॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परयो क्षिति खिन्न दुखारी ॥ राघव दीन दयालु कृपालु को देख दुखी करुणा भइ भारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरि वारी ॥ बार हि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसों झारि ॥ १ ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि देखत नैननसों जल ढरि ॥ दुख हो जाते हैं सीताविथाके औ याकी सनेहकथाको बिचारि ॥ छोड चले देहि हेतु हमें हमें मोह तिनहि मैं सिरारि ॥ यों कहि राम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटानसों झारि ॥ २ ॥

उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप और कर्म किसप्रकारकाहै ? हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछते हैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लडखडाती वाणीसे विलाप करते व पूछतेहुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणने वायु और दुर्दिन (जब कि आकाशमें बादल आजाते हैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये; तब निशाचर हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चलागया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकते हैं और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देते हैं, मानो सब वृक्ष अपने शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहे हैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें सीताको हर

कथंवीर्यःकथंरूपःकिंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥७॥ तमुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवया राममिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसंकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातपक्षौ छित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीरकृतमूर्धजान् ॥११॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः ॥ विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥१२॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थसोऽबुधत् ॥ झषवद्बडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥ नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति ॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामंप्रत्यनुभाषतः ॥ आस्यात्सुस्रावरुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम् ॥ १५ ॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥ १६ ॥

लेगयाहै; उस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपना बहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिल जातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंदहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिल जातीहै, सो रावण इसको नहीं जानताहै, हे राम ! इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेसे मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै, तुमभी श्रीजानकीजीको प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेको तुम समर्थ होगे ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेवाले सावधानचित्त मरनेके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांसयुक्त रुधिर बहनेलगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुने

रावण विश्रवाका पुत्र, और कुबेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये ! बोलिये ! इसप्रकारसे कहने लगे उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरणयुगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वतसमान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको माराहुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १९ ॥ राक्षसोंके बसनेयोग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥ २० ॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे, वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं, हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहीं है ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! देखो ये गृध्र हमारे कैसे

ब्रूहिब्रूहीतिरामस्य ब्रुवाणस्यकृतांजलेः ॥ त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहायसम् ॥ १७ ॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥
विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले ॥ १८ ॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यताम्राक्षंगतासुमचलोपमम् ॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ १९ ॥ बहू
निरक्षसांवासेवर्षाणिवसतासुखम् ॥ अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः ॥ सोऽयमद्य
हतःशेतेकालोहिदुरतिक्रमः ॥ २१ ॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥ गृध्रराज्यंपरित्य
ज्यपितृपैतामहंमहत् ॥ ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥ २३ ॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः ॥ शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनि
गतेष्वपि ॥ २४ ॥ सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥ यथाविनाशोगृध्रस्यमत्कृतेचपरंतप ॥ २५ ॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममहा
यशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथायंपतगेश्वरः ॥२६॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्षामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥२७॥

उपकारी हैं, सीताजीका उद्धार करनेमें तैयार होकर बली रावण दुरात्मा करके यह मारे गये हैं ॥ २२ ॥ और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करके इन गृध्रराजने प्राण छोडे हैं ॥ २३ ॥ हम जानते हैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनेवाले साधु देखे जाते हैं सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षि आदि तिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जाते हैं ॥ २४ ॥ हे सौम्य ! हमारेही लिये इन गृध्रने प्राण छोडे हैं इसलिये इनकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हम को दुःख हुआहै ॥ २५ ॥ महा यशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करने और पिताजीका सखा होनेसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसेही हैं॥२६॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काष्ठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे

हे लक्ष्मण ! यह जटायु पक्षियोंके राजा, और घोर कर्म करनेवाले राक्षसके हाथसे मारेगये हैं, हम इनको चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे पराङ्मुख न होनेवाले, और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंकी जो गति होती है ॥ २९ ॥ हे महाबलवान गृध्रराज ! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठगतियोंको प्राप्त होवो ॥ ३० ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकारसे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चितामें चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महायशस्वी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वधकर उनका मांस ले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह कियाथा । वहां आ जटायुको पिंड देनेके लिये तृण

नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥ यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपराव र्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥ २९ ॥ मयात्वंसमनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितां दीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥ ३१ ॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारो हीननुतस्तारतंद्विजम् ॥ ३२ ॥ रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३३ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्य स्यकथयंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥ ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंचक्रतुस्तस्मैगृध्रराजाय तावुभौ ॥ ३५ ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतुस्तदा ॥ ३६ ॥ सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदु ष्करंकर्मरणेनिपातितः ॥ महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यांगतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७ ॥

लाये ॥ ३२ ॥ और उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्गप्राप्ति होनेके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेलगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनोंजन गोदावरीनदीपर जाकर जटायुके लिये तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करके शास्त्रमें कहीहुई विधिके अनुसार जटायुको जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्कर कार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्र

तीके दायने मंत्रका [illegible] दान हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादिक्रिया समाप्त करके पक्षिश्रेष्ठ जटायुके प्रति पितृ बुद्धि स्थापित कर [illegible] और सीताजीके खोजनेमें मन लगा कर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें प्रवेश करतेहुए ॥ ३८ ॥ त्यार्ष श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषाटीकायामष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों [illegible] सीताजीको ढूंढने जाते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी [illegible] दक्षिण कोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेके कारण वह

कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततोमनोवनंसुरेन्द्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽरण्यकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ कृत्वैवमुदकंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥ तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभिश्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ३ ॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्महारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥ ४ ॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौजसौ ॥ ५ ॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैःपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥ दिदृक्षमाणौवैदेहींतद्वनंतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥ ७ ॥ ततःपूर्वेणतौगत्वात्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौंचारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रममंतरे ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपादपम् ॥ ९ ॥

चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा ॥ ३ ॥ उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडे वेगसे महावनमें होकरके चले ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे जाते २ जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्चनामक घनें वनमें पहुँचे ॥ ५ ॥ यह वन अतिशय दुर्गम देखनेमें बहुत सारे मेघोंकी समान घटाघना था, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेसे मानों वह सब भाँतिसे हर्षपूरितथा और मृग व पक्षीभी उसमें बहुत थे ॥ ६ ॥ दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखित हो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते २ शान्तिके वश स्थान २ पर खडे हो जाने लगे ॥ ७ ॥ फिर वह पूर्वकी ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंगमुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महाभयंकरथा और भयंकर स्वभाववाले

पातालकी समान गहरी एक गिरिगुफा देखी, इस गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ ...
वाली और विकृत वदन एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेमें अति भयंकरीथी, खाल अति कडीथी थोडे पराक्रमियोंको वडा भय देनेवाली भयंकर क्रूरतायुक्त लम्बा पेट तीक्ष्ण डाढें वडी विकराल ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकर था वडे २ मृगोंको वह भक्षण करती, रूप वडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंने देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहने

ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ पातालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥ आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपां राक्षसींविकृताननाम् ॥११॥ भयदामल्पसत्त्वानांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥१२॥ भक्षयंतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्तमूर्धजाम् ॥ अवैक्षेतांतुतांतत्रभ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरंस्यावहेत्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥१४॥उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगुह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रियः॥१५॥नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितःखड्गमुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्तारिसूदनः ॥१७॥ कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतंप्रदुद्रावराक्षसीघोरदर्शना ॥१८॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा ॥ आसेदतुरमित्रघ्नौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥ १९ ॥

लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसने लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ और वह राक्षसी उनको चिपटाकर कहनेलगी कि, हे नाथ ! हमारा अयोमुखी नाम है, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारोंपर और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥ १६ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले लक्ष्मणजीने इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काटडाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक व स्तन काट डाले गये तब वह घोर दर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्लाकर शब्द करतीहुई जहाँसे आईथी वहां को दौडी ॥ १८ ॥ जब वह वहांसे भाग गई तो महातेजवान् शत्रुओंके मारनेवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेगसहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥

यहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोडकर तेजसे प्रदीप्यमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ हे भ्रातः ! हमारा
बांया हाथ जल्दी २ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आते हैं ॥ २१ ॥ इससे हे आर्य ! आप सज करके तैयार होरहें;
और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि, भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी । क्योंकि यह अतिभयानक
वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महातेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूँढ रहेथे कि इतनेहीमें एक
विपुल शब्द मानो उस वनको विध्वंस करता हुआ होने लगा ॥ २४ ॥ उस वनमें एकाएकी प्रचण्ड पवन चलने लगा और इस वायुके चलनेसे वृक्ष परस्पर टकराने
लगे । उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता हुआ उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह

लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥२०॥ स्पंदतेमेदृढंबाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्य
निष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये॥२१॥तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनंमम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसंतिसंभ्रमम् ॥२२॥ एषवंचुलकोनामपक्षी
परमदारुणः॥ आवयोर्विजयंयुद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥ २३ ॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वंतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥
संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गीसहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायं
राक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरोग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥ रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महा
गिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तनितनिस्वनम् ॥ २८ ॥ अग्निज्वालानिकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुले
नायतेनच ॥ ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शिना ॥ महादंष्ट्रोपपन्नंतंलेलिहानंमहामुखम् ॥ ३० ॥

जाननेके लिये अभिलाषी होकर इधर उधर देखतेथे कि चौडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देखपडा ॥ २६ ॥ उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्ध था,
वह श्रीरामचन्द्रजीके आगे आनकर खडा होगया, उसका मस्तक और गर्दन नहींथा शरीर बहुत बडाथा, मुख पेटमें था ॥ २७ ॥ रुवें भालेके समान तीखे, और सीधे थे
आकार उसका महापर्वतकी समान ऊँचाथा स्वर मेघके गर्जनेकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा ॥ २८ ॥ और
उसका एक नेत्र माथेमें था वह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी २ धूमिली पलकें उसपर थीं और वह नेत्र बडाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उसका दूसरा नेत्र
छातीमें था वह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखाईदेता था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे दांतोंकी पंक्तियां थीं वह उस मुखसे मानो

वीलेही लेगाया होठ चाटरहाथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोसकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको भक्षण करता चला आताथा ॥ ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बांहोंमे विविधप्रकारके मृग, पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथपोंको पकडता और अपने मुखमें छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीका जानाथा, वह उसीको रोकेहुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीने घूमकर एक कोश पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोरदर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कबन्ध दिखाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीवजन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेसे ठीकही वह कबन्ध ग्रास लेताथा ॥ ३४ ॥ फिर महाबलवान कबन्धने दोनों बडी २ बाँहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथही

भक्षयंतंमहाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकुर्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥३१॥ कराभ्यांविविधान्गृह्यऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयूथपान् ॥ ३२ ॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥ ३३ ॥ महांतंदारुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥ ३४ ॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥ जग्राहसहितावेवराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥ खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवोनैवविव्यथे ॥ बाल्यादनाश्रयाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥ ३७ ॥ उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमांविवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥ मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्त्वापलायस्वयथासुखम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यचकाकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रमांराम राज्यस्थःस्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥

ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजवान महाबलवान्, महाबाहु वह दोनों भ्राता कबन्धसे खैंचे जाकर अवश होगये ॥ ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो स्वभावसेही धैर्यवान् और शूरता सम्पन्न थे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेके कारण एक साथही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघवनंदन बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर ! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुये हैं ॥ ॥ ३८ ॥ इसकारण एकमात्र हमकोही देकर छूट जाइये । और हमें इसराक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥ काकुत्स्थ राम ! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इससमय यही

प्रार्थना है कि आप राज्यपदपर प्रतिष्ठित होकर सदाही हमको स्मरण करते रहाकीजियेगा. जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथा भीत न हूजिये तुमसरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं, दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानवश्रेष्ठ कबन्ध कहने लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो ? ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा यहांपर क्या कार्यहै और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो ॥ ४४ ॥ हम भूखे होकर यहांपर टिक रहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुए तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा

मास्मत्रासंवृथावीरनहित्वादृग्विपीदति ॥ एतस्मिन्नंतरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥४२॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥ ४४ ॥ इमंदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः ॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता ॥ कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण॥४८॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रव्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४९ ॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे॥ कालाभिपन्नाःसीदंतियथावालुकसेतवः ॥५०॥ इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशादाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमःस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे एकोनसततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥

जीवित रहना दुर्लभ है. दुरात्मा कबन्धके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि हे सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इससे निश्चयही प्राण संहार होनेकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहेहैं ॥ ४७ ॥ अबतो यह महादुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आशा त्याग करें । लक्ष्मण ! सब प्राणियोंमें कालका बडा वीर्य दिखलाई देताहै ॥ ४८ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण ! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेमें कालको कुछभी डर नहीं है ॥ ४९ ॥ कालके वश हो बडे शूरवीर अस्त्रशस्त्रोंके जाननेवाले पुरुषभी रेतसे बनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान् महायशस्वी दश

पर्यन्त बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामेकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाँहोंकी फांसीमें बँधाहुआ वहां खड़ा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रियश्रेष्ठ ! दोनों जन ! हम भूखे हुए हैं, विधाताने तुम दोनोंको चेतनारहित करके हमारे खानेको भेजदिया है इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो ॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रमप्रकाश करनेमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनोंको पकडे हुआ है इसकारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतःकिंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचेतनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिसमापन्नोविक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशुबाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोः क्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥ ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ ॥ अच्छिदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः ॥ ८ ॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामोवेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥ ९ ॥ सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंगगांचदिशश्चैवनादयञ्जलदोयथा ॥ १० ॥

इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४ ॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकीही सहायतासे सब लोकोंको सर्वप्रकारसे जीत अब हम तुमको मारनेके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन् ! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टारहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुतही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहबाय उनको भक्षण करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंने खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें कन्धेपरसे काटडालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी दाहिनी भुजा और वीरवान् लक्ष्मणजीने उसकी बाईं भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥ जब बाहें काट डाली गईं तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर

गर्द करके गगनमण्डल और दशों दिशाओंको अपने शब्दसे भर देता हुआ गिरपडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजाओंको कटाहुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे द्रवाहुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि, तुम कौनहो ? ॥ ११ ॥ जब कबन्धने इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभलक्षणयुक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबन्धसे रामचन्द्रका परिचय देतेहुए बोले ॥ १२ ॥ यह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीरामनामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हैं हमारा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ मँझली जननी कैकेयी करके इनकी राज्यप्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे ॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेके समय इन देवतुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढते २ हम लोग

मनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वाशोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतौवीरौकोयुवामितिदानवः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ शशं
नतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्यमहाबलः ॥ १२ ॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनामजनैःश्रुतः ॥ तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥
मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ मयासहचरत्येपभार्ययाचमहद्वनम् ॥ १४ ॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने ॥ रक्षसापहृताभार्या
यामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवाकबंधसदृशोवने ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुल
क्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीतस्तदिंद्रवचनंस्मरन् ॥ १७ ॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम् ॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवा
भ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥ विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आदि०
अरण्यकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ पुरारामममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिपुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥

यहांपर आये हैं ॥ १५ ॥ और तुम कौन हो ? जो कबन्धकी समान वनमें घूमते हो। तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं और अतिशय दीप्तयुक्त वदनमंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीने ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करताहुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आपलोग दोनोंही पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं । आप अच्छी तरहसे तो आये, आज भाग्यसेही हमने आप लोगोंको देखाहै और आपने जो हमारे बन्धनरूप हाथ काटडाले सो यहभी हमारे बडे सौभाग्यकी बातहै इसमें कुछ सन्देह नहींहै ॥ १८ ॥ जिसभाँतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहते हैं आप श्रवण करें ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकाण्डे भाषाटीकायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी ! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिंतनीय

ऐश्वर्य महाबल व पराक्रमयुक्त और तीनों लोकोंमें विख्यात था ॥ १ ॥ और सूर्य चन्द्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमाराभी रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनों लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषिलोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे महर्षिजी विविधभांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि, हमने अपने रूपके गर्वमे उनको धिक्कारा और कोपित कराया तब उन्होंने हमारी ओर देख अति घोरशाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूपभी हमाराहीसा कुरूप होजायगा, जब हमने क्रोधयुक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इनका निवारण कब होगा ॥ ५॥ तब शापके अन्त होनेके लिये उन्होंने कहा कि, जिस समय श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे हाथ

यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥ २ ॥ ऋषीन्वनगतान्राममत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिःकोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवंघोरशापाभिधायिना ॥ ४॥ एतदेवंनृशंसंते रूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःक्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥ इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांविभ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥९॥ इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्यबाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥ १० ॥ सक्थिनीचशिरश्चैवशरीरेसंप्रवेशितम् ॥ समयायाच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥

काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त करलोगे, सो हे लक्ष्मण! हम श्रीमान् दनुके पुत्रहैं ॥ ७ ॥ संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है कि आगे हमने अत्युग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ और जिससे हमने गर्वित होकर विचारा कि, इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तो हमने दीर्घायु पाली है ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमने इन्द्रको ललकारा तब उन्होंने अपना सौ धारका वज्र हमारे ऊपर छोड़ा जिसके लगनेसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाहीभी परन्तु उन्होंने हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥

वरन् केवल उन्होंने इतनाही कहा कि, जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमने उनसे कहा कि, आपका वज्र लगनेसें हम शिर कनपटी मुख आदि अंगोंसे रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घ कालतक जीवन धारण करने में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीने कहा कि, बहुत अच्छा अब तेरी बाहैं एक योजन लंबी हो जायँगी और दीर्घकालतक जीवितभी रहोगे ॥ ॥ १३ ॥ यह कहकर उन्होंने हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुखभी बना दिया तबसे हम अपने बडे दोनों हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड २ मुखमें डाललेतेहैं॥ १४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करते थे, इन्द्रजीने फिर यहभी कहा था कि, जब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ॥ १५॥

पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिमभाब्रवीत् ॥ अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः ॥ १२ ॥ वज्रिणाभिहितःकालंसुदीर्घमपिजीवितुम् ॥ सए वमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥ १३ ॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौतीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥१४॥ सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षयामिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः ॥ १५॥ छेत्स्यतेसमरेबाहूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ अनेनवपुषाताता तवनेस्मिन्राजसत्तम ॥ १६ ॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणंसाधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपैष्यति ॥ १७ ॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेह न्यासकृतश्रमः ॥ सत्वंरामोऽसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ १८॥ शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्षिणा॥अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्यामिनरर्षभ ॥ ॥ १९ ॥ मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोग्निना ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः ॥ २० ॥

समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देखलेतेहैं उस २ को ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा अपना ऐसाही विचारः रखतेहैं कुछ विशेष श्रमभी नहीं करतेथे, सो इस समय हमने सत्य २ जाना कि, श्रीरामचन्द्रजी आपही हैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मारसकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीने जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे रामचन्द्रजी ! और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता परन्तु हे नरश्रेष्ठ ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९॥ अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम आपको एक मित्र बतावेंगे,जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रने महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा तो ॥ २०॥

...... रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जनस्थानसे सुखपूर्वक बाहर चले गयेथे, तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उस राक्षस रावणका केवल नाममात्र जानते हैं परन्तु उसका रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते केवल शोकसे आर्त हुये अनाथकी समान इसी भाँतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम हमारे ऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दाँतोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोर कर तुमको ॥ २४ ॥ एक गढा खोद हे वीर ! हम उसमें तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगयाहै, सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तो इससे हमारा बडा मंगल हो जायगा.

दंडं जगाद चनं लक्ष्मणस्य च पश्यतः ॥ रावणेनहताभार्यासीताममयशस्विनी ॥ २१ ॥ निष्क्रांतस्यजनस्थानात्सहभ्रात्रायथासुखम् ॥ नाममात्रं तुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥ २२ ॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शोकार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥ २३ ॥ कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्तताम् ॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥ धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रेमहतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवा यत्रवाहृता ॥ २५ ॥ कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमुक्तस्तुरामेणवाक्यंदनुरनुत्तमम् ॥ २६ ॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजानामिमैथिलीम् ॥ २७ ॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येराम तत्परम् ॥ २८ ॥ अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव ॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेणराघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥ किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रांतवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षिप्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६ ॥ अच्छा बोलनेवाला श्रीरामचन्द्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनेलगा, हमको अभी दिव्यज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि, जानकी कहांहै ॥ २७ ॥ परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतावेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जो कि रावणको जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसने आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो विना भस्म हुये हम किसी प्रकारसेभी उसको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ हे राम ! पहले हममें बडा विज्ञानथा सो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया और हम अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जबतक सूर्य भगवान्के घोडे थककर

अस्ताचलको न चले जायँ, क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथाविधि भस्म कर दीजिये ॥ ३१ ॥ हे महावीर रघुनंदन! जब यथाविधि आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव हे वीर! आप उस अच्छीरीतिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी बडीभारी सहायता करैगा ॥ ३३ ॥ हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहीं है जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमाहै ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे भाषाटीकायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ जब कबन्धने उन दोनों वीरशिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्र

दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन ॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवेत्स्यतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्यवृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रम ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्परिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अरण्यकांड एकसप्ततितमःसर्गः ॥७१॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिताभिःसमंततः ॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसापच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यंमहाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजोंवरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमानेभास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥ सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत् ॥ शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥ ७ ॥

व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने बडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके चारोंओरसे अग्नि लगादी तब चिता भलीभाँतिसे जलने लगी ॥ २ ॥ तब कबन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर अग्निसे धीरे २ जलने लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जलकर रहगई तब महाबलवान् कबंध उसीसमय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआँरहित अग्निके समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांतियुक्त शरीरसे वेगमें भर आनंदसहित उसी समय आकाशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंसयुक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी शरीरकी प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें

लगा कि हे रघुनंदन! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त करसकेंगे वह रीति ठीक २ सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, याने, आसन द्वैधीभाव और समाश्रय यह जो छैः युक्ति व उपायहैं सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब बातोंका विचार करते हैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहींहोती ॥ ८ ॥ सो इनमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करते हैं सो इस समय आप कोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेका प्रयोजन हुआ है, क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे वनमें जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं। और इसी कारणसे आपके ऊपर आपकी स्त्रीका हरणस्वरूप महादुःखभी आनकर पडाहै ॥ ॥ ९ ॥ इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेसे जिसका परिवारभी बहुत हो, उससे अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमने भलीभांतिसे सोच विचारकर देख लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥

गमपड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते ॥ परिमृष्टोदशांतेनदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहिरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तं त्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकार्यःससुहृत्सुहृदांवर ॥ अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन् ॥ १० ॥ श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवो नामवानरः ॥ भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना ॥ ११ ॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते॥ निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः॥ १२॥ वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः॥सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान्॥ १३॥दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः॥भ्रात्राविवासितो वीरराज्यहेतोर्महात्मना॥ १४॥सतेसहायोमित्रंचसीतायाःपरिमार्गणे ॥ भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः ॥ १५॥ भवितव्यंहितच्चापिनतच्छ क्यमिहान्यथा॥कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः॥ १६॥गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम्॥वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाद्यराघव ॥ १७॥

॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानर है उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालिहै; उस वालिने क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकालदियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूकपर्वतपर अपने चार वानरोंके सहित रहताहै यह ऋष्यमूक पर्वत चारोंओर पंपातक शोभित हो रहाहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महावीर्यवान, महातेजस्वी, महादीप्तिमान, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननेवाला, धारणशक्तियुक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान् और महाबलपराक्रमयुक्तहै परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिने घरसे निकालदियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढने भालनेमें आपका सहायक और मित्र होगा। सो आप अब शोक करनेमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेटसकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हे वीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान् सुग्रीवके पास जाकर उससे मित्रता करलीजिये, हे रघुनंदन! इसी समय

गाप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क वह कृतज्ञ है कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेवालाहै, वीर्यवान् भी है और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै सो आपभी उसके क करदेंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेवाला सुग्रीव सफलमनोरथ हो आपका कार्यभी अवश्य करदेगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्यभगवान्से उत्पन्न हुए इससे वह साधारण वानर नहीं है और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है ॥ २० ॥ वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर कारण दुःखित है, इससे आप अस्त्र शस्त्र अग्निके समीप धरकर ऋष्यमूक पर्वतपर बैठे हुए उस वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये, हे राघव

अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥१८॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तः
यद्युवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥ २० ॥ भास्करस्
रसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ संनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥ कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्-
न्स्न्यानिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनैपुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतप-
सहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदीर्विपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥ २४ ॥ अन्विष्यवानरैःसार्धंपत्नींतेधिगमिष्यति ॥ वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयि-
तिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥

वानरश्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपिकुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भलीभांतिसे नरमांसके खानेवाले राक्षसोंकेभी लोकमें जासकताहै हे राघव ! लोकमें ऐसा स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले रघुनंदनजी ! सहस्रकिरण सूर्य भगवान्‌की किरणें जहांतक पडती हैं, उतने जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥ समस्त जगत्‌में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनंदन ! वह सुग्री पापकर आपसे मिला देगा कारण कि, वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजी

रावणके घरमें हुई तो वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देगा ॥ २६ ॥ अनाथा निंदा रहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करती हों, कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ कबन्ध इसप्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय बताकर फिरभी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! यही वहांका कल्याणदायक मार्गहै जिधर यह फूले हुए मनोहर वृक्ष लग रहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं ॥ २ ॥ उन वृक्षोंमें जामुन, चिरोंजी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके हैं ॥ ३ ॥ और धवई, नागकेशर, अगेथू, तिलक,

नमेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्यति ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ दर्शयित्वातुरामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधः पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥ प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥ जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥ ३ ॥ धन्वनानागवृक्षाश्चतिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथ ॥ तदतिक्रम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्रवाः ॥ ७ ॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवा सुखम् ॥ ९ ॥ फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवराञ्शैलाञ्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥

किलदार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कँदैल यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं ॥ ४ ॥ हरे २ अशोक, नीचके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम २ वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥ ५ ॥ अमृत समान फल खाते पीते हुए दोनों चले जाओ, हे काकुत्स्थ ! उस फूले वृक्षद्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जायँगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा, जिसमें सब कालमें फलें ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं ॥ ७ ॥ उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्ररथ वनकी समान विद्यमान रहती हैं, वह सब वृक्ष फलभारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥ वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहांपरभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह

वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों भ्राता पर्वतोंपर होते हुए इस वनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, (कंकर) और फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम ! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच, कुरर आदि पक्षी ॥ १२ ॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं माराहै ॥ ॥ १३ ॥ हे श्रीरघुनन्दन ! आप स्थूलशरीरवाले घीके पिंडकी समान इन पक्षियोंको और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहांपर भक्षण कीजिये ॥ ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिनके पंख नहीं होते और बडे शरीर जिनके होते हैं, त्वक् और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर

ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथः ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशैवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्र हंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥ वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्ररामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

और अग्निमें भूनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग विहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मलहै जिसके पीनेसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे २ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुए आते हैं ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीलेपीले भी बहुतसे वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये सन्ध्याके समय विचरते आप देखेंगे ॥ २० ॥

वृक्ष आपको देंगे, इस भाँतिसे दोनों भ्राता पर्वतोंपर होते हुए इस वनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, (कंकर) और बिछलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम ! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच, कुरर आदि पक्षी ॥ १२ ॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं माराहै ॥ ॥ १३ ॥ हे श्रीरघुनन्दन ! आप स्थूलशरीरवाले घीके पिंडकी समान इन पक्षियोंको और रोहित, चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहांपर भक्षण कीजिये ॥ ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिनके पंख नहीं होते और बडे शरीर जिनके होते हैं, त्वक् और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर

ततःपुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथः ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशैवलाम् ॥ ११ ॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्र हंसाःप्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥ वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्ररामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥ १५ ॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिव नर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥ २० ॥

और अग्निमें भूनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग विहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मलहै जिसके पीनेसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावैंगे और बडे २ बन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेवाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुए आते हैं ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! फिर पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीले भी बहुतसे बन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये सन्ध्याके समय विचरते आप देखेंगे ॥ २० ॥

और रघुनंदन वहांपर ...

... आदिक वृक्षहैं ॥ २१ ॥ ... और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥ २१ ॥ और रघुनंदन वहांपर ... कारण कि
... जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जायँगे और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक ... पहरनेवाला वहांपर कोई पुरुष नहीं रहता ॥ २२ ॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरते हैं कारण कि
... फूल रहे हैं परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेवाला वहांपर कोई पुरुष नहीं रहता ॥ २२ ॥ वह सब शिष्य ऋषिलोग अपने गुरुजीके लिये वनके फल फूल लेने जाते
... मतंग ऋषिके चेले जो ऋषिलोगहैं, वह एकाग्रचित्त होकर वहां रहतेथे ॥ २३ ॥ वही स्वेदबिन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे पुष्प होगये हैं
... बोझके मारे थकजानेपर उनके शरीरसे जो पसीनेकी बूंदें पृथ्वीपर गिर पडती थीं ॥ २४ ॥ यद्यपि सब ऋषिलोग वहांसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु
हे रघुनन्दन ! ऋषिलोगोंके पसीनेकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह सब पुष्प अविनाशी होगये हैं ॥ २५ ॥

... उत्पलानिचफुल्लानिपंकजानिचराघव ॥ नता
... ॥ सुमनोभिश्रितांस्तत्रतिलकान्नक्तमालकाः ॥ २१ ॥ मतंगशिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः ॥ २३ ॥
...कंनपंपायांद्रक्ष्यसिशोकंविहास्यसि ॥ नचवैम्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ स्वेदबिंदुस
निकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैम्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव ॥ तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ स्वेदबिंदुस
...ागमितमानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्रपेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः ॥ २४ ॥ तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतपसातदा ॥ त्वांतुधर्मेस्थि
...ानिनविनश्यंतिराघव ॥ २५ ॥ तेषांगतानामद्यापिदृश्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥२६॥ आश्रमस्थानमतुलं
...नित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥ दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥२७ ॥ ततस्तद्राम पंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ मतंगवनमित्येव
गुह्यंकाकुत्स्थपश्यसि ॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥
विश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥

... वाली शबरी नामक तपस्विनी परिचारिका श्रमणी वहांपर रहतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप साक्षात् देवताओंकी समान सब लोगोंके नमस्कार करने
... जो चिरजीवी धर्मपरायण श्रमणी आपको अवलोकन करके स्वर्गको चली जायगी ॥ ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जायँगे तब महर्षि
... पांके आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवेगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आश्रम काननको नहीं
... सकते ॥ २९ ॥ इसीकारणसे यह वन मतंगवनके नामसे प्रसिद्ध हुआहै. हे रघुनंदन ! वह वन देवताओंके नंदनवनकी समान रमणीयहै ॥ ३० ॥

उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहार कर सकैंगे और पंपाके सामनेही वृक्षसमूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वत है ॥ ३१ ॥ इस कठिनसे आरोहण करनेके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनायागयाथा ॥ ३२ ॥ उस उदारपर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं जागनेपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षसलोग उसके शयन करनेके समय उसको पकडकर वहीं संहार करदेते हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए

नानाविहगसंकीर्णंरंस्यसेरामनिर्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥ ३१ ॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारो ब्रह्मणाचैवपूर्वंकालेभिनिर्मितः ॥ ३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोधिगच्छति ॥ ३३ ॥ यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥३४॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदःश्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥३५॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंतिपृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः॥३६॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम्॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥ ३८ ॥ रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥ ३९ ॥ शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचास्याःप्रवेशनम् ॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहाञ्शीतोदकोह्रदः ॥ ४० ॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः ॥ तस्यांवसतिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥ ४१ ॥

मेघवर्ण वेगयुक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे ॥ ३६ ॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ३७ ॥ पंपासरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करते हैं। हे श्रीरामचंद्रजी ! वहांपर आप रीछ, गैंडे, व्याघ्र और नील मणिवत् कोमल कान्तिवाले ॥ ३८ ॥ कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेवोगे; हे श्रीरामचन्द्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमानहै ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहती है इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता उस गुफाके पूर्वद्वारपर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारेपर बहुतसे मूल व फलोंसे युक्त अनेक २ भांतिके रमणीक वृक्ष लगे हैं और वहांपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करते हैं ॥ ४१ ॥

और वह सुग्रीवजी कभी २ उस पर्वतके शिखरपरभी बैठे रहते हैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होने लगा, उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीने देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि, अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ. उसने भी दोनों भाइयोंसे कहा आप अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त जाइये ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥ ४५ ॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूप प्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने लगा कि, आप सुग्रीवके साथ मित्रतास्थापन कीजिये॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमः सर्गः॥ ७३॥

कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यापितिष्ठति॥कबंधस्त्वनुशास्यैवंतावुभौरामलक्ष्मणौ॥४२॥स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान्॥ तंतुखस्थंम हाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ॥४३॥प्रस्थितौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके॥गम्यतांकार्यसिद्धयर्थमितितावब्रवीत्सच॥४४॥सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यक बंधःप्रस्थितस्तदा॥४५॥सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरसर्वदेहः॥निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यंकुरुष्वेतितदाभ्युवाच॥४६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे त्रिसप्ततितमःसर्गः॥७३॥तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने॥आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरा त्मजौ॥१॥तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान्॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ॥२॥कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवासंरघुनंदनौ॥ पंपायाःप श्चिमंतीरंराघवावुपतस्थतुः॥३॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम्॥ अपश्यतांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम्॥४॥तौतमाश्रममासाद्यद्रुमै र्बहुभिरावृतम्॥ सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपेयतुः॥५॥तौदृष्ट्वातुतदासिद्धासमुत्थायकृतांजलिः॥ पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः॥६॥

जब कबंध इसप्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्मणजी कबन्धका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपासरोवरकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वादयुक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयनगोचर होने लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारेपर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीने देखा ॥ ४ ॥ और उस विविध वृक्षसमूहसे समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करके शबरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥

और यथा विधिसे पाद्य आचमनीयभी शवरीने दिया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शवरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि, तुमने सुख व विघ्नोंको तो जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तो तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने ! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तो भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तो सदा सुख रहताहै ? हे चारुभाषिणी ! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तो तुम्हें फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार पूछा तो सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शवरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥ आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरुगणोंकी पूजा भलीभाँतिसे होगई ॥ ११ ॥ और तपस्याभी सार्थक होगई. हे पुरुषोत्तम ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सबके अन्तरात्मा हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक

पाद्यमाचमनीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जिताविघ्नाःकच्चित्तेवर्धतेतपः ॥ कच्चित्ते नियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रूषासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥ शशंसशवरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता ॥ १० ॥ अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभविष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥ १२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्येनमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिषम्॥ ॥ १४॥ तेचाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ॥ आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौमित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावराँल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ मयातुसंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७ ॥

प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य ! हे मान देनेवाले ! हे शत्रुघाती ! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेसे हम पवित्र होगई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १३ ॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देवविमानोंमें चढकर इस आश्रमसे स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महाभाग्यवान् धर्मात्मा महर्षिलोक स्वर्ग जानेके समय हमसे कह गये कि, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्यजनक आश्रममें आवेंगे॥ १५॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना; उनके दर्शन करनेसेही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम ! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कहगयेथे, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तभीसे हमने विविध भाँतिके भले भले

फल ढूंढकर ॥ १७ ॥ आपकी सेवाके लिये धर रक्से हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शवरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारण कि, श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें विचारलिया कि, यह परमात्माकोभी भलीभांति जानती है यह समझ उससे कहा कि, हमने कवन्धने तुम्हारे महात्मोंका प्रभाव और आचारका माहात्म्य॥१९॥ श्रवण किया था सो तुम यदि उचित समझो तो हम प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन॥२०॥ शवरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दिखाकर कहने लगी कि, मृग और पक्षियोंसे परि पूर्ण काले बादरकी समान श्यामरंगका यह वन देखिये॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन ! इस वनका नाम मतंगवन प्रसिद्ध है. हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे

तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशवर्याशवरीमिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमवहिष्कृताम् ॥ दनोः सकाशात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥ १९ ॥ श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥ २० ॥ शवरी दर्शयामासतावुभौतद्वनंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यंमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानोगुरवोमे महाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोपहारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः॥२३॥ तेषांतपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्रभा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागतान्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५ ॥ कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानिकृतानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

गुरु लोग मंत्र पूजित यज्ञ करनेके लिये वेदके मंत्रोंमे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थलनामक वेदीहै; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम पूजनीय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित भययुक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर ! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके तपोबलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रहीहै ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलसी होकर स्नान करनेको जानेमें सामर्थ्यहीन होगये, तब उनके चिन्ता करनेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये ॥ २५ ॥ हे रघुनंदन ! ऋषिलोगोंने स्नान करके यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अबतक नहीं सूखे हैं ॥ २६ ॥ उन्होंने देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये नीले कमलोंके सहित यह जो समस्त पुष्प देवताओंको चढायेथे सो वह अबतक नहीं मुरझाये हैं ॥ २७ ॥

आप सब वन देख चुके और जो बात श्रवण करनेके योग्यथी वह श्रवणभी करचुके अब हमने इस देहके छोडनेका अभिलाष कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मामहर्षियोंके निकट जानेका हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित शबरीकी यह धर्मयुक्त वार्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि, यह बडे आश्चर्यकी बातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी दृढव्रतवाली शबरीसे बोले कि, हे भद्रे ! तुमने हमारी पूजा भलीभाँतिसे की अब तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहांपर चली जाओ ※ ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकारसे आज्ञा दी तब जटा, चीर और कृष्णमृगचर्मके वस्त्र पहरीहुई शबरी अपने शरीरको अनलमें आहुति दे ॥ ३२ ॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्गमें गमन करनेके समय उसके आभरण मालायें व चन्दनादि सुगन्धित लगानेके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उस कालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी, और वह दीप्तिमान् विद्युत्की समान उस स्थानको प्रकाशित करनेलगी ॥ ३४ ॥ उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षिगण जिस स्थानोंमें विराजमानथे श्रमणीभी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्रउस पुण्यलोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे भाषाटीकायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहंगंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशबरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छकामंयथासुखम् ॥ ३१ ॥ इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनांबरा ॥ अनुज्ञातातु रामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह ॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्यांबरधरा तत्रबभूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥३४॥ यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्येऽरण्यकांडे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

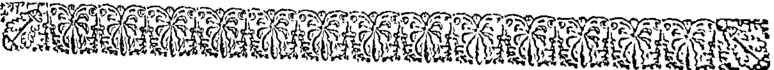
※ भामिनि जो तैं नेह लगायो ॥ मुक्त भई सब आश पाशते मक्तलोक पठवायो ॥ युगयुग कीरति चलिहै तेरी कियो प्रभुवेन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिके रैनको पाप नशायो ॥ यों बलदेव प्रसाद वई प्रभु वेद विरद अस गायो ॥

जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीराम चन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित चिन्तना करने लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षिगणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परमहितकारी अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य ! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्ययुक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्रलोग वैरभाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेकप्रकारके पक्षीभी वास करते हैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमने यथाविधानसे स्नान और पितृलोगोंको तर्पणभी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभभी नष्ट होगये और कल्याणभी होगया. हे लक्ष्मण ! इससे हमारा मन इससमय बहुतही प्रफुल्ल होरहाहै ॥ ५ ॥ और हे नरव्याघ्र ! इस समय हमारा हृदयभी शुभभावसे पूरित है सो अब

दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यास्वेनतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम् ॥ हितकारिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनानाविहगसेवितः ॥ ३ ॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥४॥ प्रनष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भविष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसतिधर्मात्मासुग्रीवोंशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥ तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापित्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥

ही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासरपर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकटही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसते हैं ॥ ७ ॥ नित्य वालीके भयसे भीत चारों वानरों सहित वहांपर रहते हैं हम चारों वानरोंके सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको वहांपर देखने चलेंगे ॥ ८ ॥ कारण कि, सीताजीको खोजना हमारा कार्य है वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले ॥ ९ ॥ कि, हमारा मनभी शीघ्रता करता है इसकारण जल्दी चलिये यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले ॥ १० ॥ और वहांसे चलकर

दोहा–रघुनंदन संकटहरन, विघ्न विनाशन आप । ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
गुणसागर नागर परम, नरतनु धारि खरार । लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
जो नर नित सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय । ते विनु श्रम संसारके, पार भये सुख पाय ॥
भक्तन हितकारण धरो, प्रभुने मनुज शरीर । ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
कृपा अनुग्रह अस करो, रहैं तुम्हारे ध्यान । प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि २ ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद । सो सब भाषामें कियो, बुध ज्वालापरसाद ॥
पढहिं सन्तजन कृपा करि,सुमिरहिं लक्ष्मणराम । यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥



इदं श्रीवाल्मीकियरामायणारण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां
क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
संवत् १९६७, शके १८३२.

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽरण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ॥